उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02

समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड : एक

शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई - 1 5
शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई - 2 26
शिक्षा दर्शन

इकाई - 3 71
भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्रा	आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डा0 रामेन्द्र गुप्ता	एसोसियएट प्रोफेसर, डी0वी0 कालेज, उरई जालौन (इकाई-1,2,3)
प्रो0 सुमित्रा सिंह	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई- 7,8,9,10,11,12)
प्रो0 सुषमा पाण्डे	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई-4,5,6)
डा0 बुद्ध प्रिय	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (इकाई- 13,14,15)

सम्पादक

प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0उषा मिश्रा	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ० जी० एस० शुक्ल	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-UP-978-93-83328-04-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशकः कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज, मुद्रित वर्ष—2024

मुद्रकः सिग्नस ईन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा0 लि0, लोढ़ सुप्रिमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

B.Ed.SE-02 : समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड–एक शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई–3 भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

खण्ड–दो विविधता का अवबोध

इकाई–4 विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई–5 खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई–6 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

खण्ड–तीन समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई–8 गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे – भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्तजनों के संदर्भ में

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

खण्ड–चार शैक्षिक आयोग एवं नीतियाँ

इकाई–10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियाँ : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992), निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई–12 कार्यक्रम, योजनाएँ, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियाँ

खण्ड–पाँच शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई–13 शिक्षा की चुनौतियाँ और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई–14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई–15 सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

खण्ड–एक : शिक्षा के दार्शनिक आधार

खण्ड परिचय

दर्शन शिक्षा का प्रमुख आधार है। दर्शन के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन, विद्यालय व्यवस्था आदि को एक निश्चित् रुप प्रदान किया जाता है। इस प्रकार दर्शन शिक्षा के दिशा को निर्धारित करता है। दर्शन को समझे बिना शिक्षा के स्वरुप को समझना असम्भव है। प्रस्तुत खण्ड में तीन इकाईयां हैं–

इकाई–1, शिक्षा और शिक्षा के अभिकरणों से सम्बन्धित है। इसमें शिक्षा के सम्प्रत्यय, विषयक्षेत्र एवं शिक्षा के अभिकरणों–विद्यालय, परिवार, समाज और संचार माध्यमों के सम्बन्ध में विवेचना की गई है।

इकाई–2 शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में है, इसके अन्तर्गत पाश्चात्य दर्शनों–आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, यथार्थवाद, प्रयोजनवाद, अस्तित्ववाद तथा मानवतावाद का विवेचन किया गया है।

इकाई–3, भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध में है। इसके अन्तर्गत भारतीय दार्शनिकों, टैगोर, गांधी, अरविन्द और कृष्णमूर्ति के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों तथा समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनके प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत खण्ड एवं इकाईयों का उद्देश्य विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण उभारने के साथ, शैक्षिक समस्याओं पर दार्शनिक दृष्टि से अध्ययन और समाधान प्रस्तुत करने की योग्यता का विकास करने से है।

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शिक्षा का अर्थ, स्प्रत्यय और परिभाषा

1.4 शिक्षा की प्रकृति

1.5 शिक्षण और सीखना

1.6 शिक्षा और शिक्षाशास्त्र

1.7 शिक्षाशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु

1.8 शिक्षा के रुप

1.9 शिक्षा के अभिकरण

1.10 सारांश

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है और यह कार्य मनुष्य के जन्म से प्रारम्भ होकर जीवन पर्यन्त चलता है। प्रस्तुत इकाई में शिक्षा का अर्थ, सम्प्रत्यय और परिभाषा, शिक्षा की प्रकृति; शिक्षण और सीखने में अंतर, शिक्षा और शिक्षाशास्त्र में अन्तर, शिक्षाशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु; शिक्षा के रुप एवं शिक्षा के अभिकरणां पर सारगर्भित प्रकाश डाला गया है।

1.2 उद्देश्य

वर्तमान इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

1. शिक्षा का अर्थ, सम्प्रत्यय और परिभाषा से परिचित हो सकेगें।
2. शिक्षा की प्रकृति को जान सकेंगे

3. शिक्षण और सीखना में विभेद कर सकेंगे।
4. शिक्षा और शिक्षाशास्त्र के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
5. शिक्षा शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु को बता सकेंगें
6. शिक्षा के रूपों में भेद कर सकेगें।
7. शिक्षा के अभिकरणों के महत्व को समझ सकेंगे।

1.3 शिक्षा का अर्थ, सम्प्रत्यय और परिभाषा

शिक्षा को वैदिक युग से ही प्रकाश का स्रोत माना गया है जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा–निर्देश देती है। भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधिवत निर्वाह के लिए शिक्षा की महती आवश्यकता को सदा से स्वीकार किया गया है। सुभाषित रत्न सन्दोह में कहा गया है कि 'ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र हैं जो उसे समस्त तत्वो के मूल को जानने में सहायता करता है तथा सही कार्यों को करने की विधि बताता है।

ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थ विलोकक्षम्।

तजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्रयेऽवि।।

शिक्षा द्वारा प्राप्त एवं विकसित की गयी वुद्धि ही मनुष्य की वास्तविक शक्ति होती है। यह मनुष्य के सर्वांगीण विकास का मूल साधन है।

शिक्षा एक प्रक्रिया है जो मनुष्य के साथ आजीवन चलती रहती है तथा इसके शारीरिक, मानसिक बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उत्थान में माध्यम बनकर सहायता करती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि होती है तथा उसके व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है और यह कार्य मनुष्य के जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। सर्वप्रथम बालक की शिक्षा उसके घर–परिवार से शुरू होती है। माता ही उसकी प्रथम शिक्षिका (गुरू) होती है। चार–पांच वर्ष की अनौपचारिक शिक्षा के पश्चात् वह विद्यालयी शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षक के सम्पर्क में आता है। घर–परिवार मित्रों, समाज के सदस्यों व अन्य माध्यमों से वह कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। इस प्रकार शिक्षः समाज में अनवरत् रूप से चलने वाली एक गतिशील प्रक्रिया हैं।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ भी यही है। 'शिक्षा' शब्द हिन्दी भाषा का है तथा हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है। 'शिक्षा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की "शिक्ष्" धातु से है। "शिक्ष" का अर्थ होता है "सीखना" तथा प्रेरक के रूप में प्रयुक्त

होने पर इसका अर्थ "सिखाना" भी हो जाता है। इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया।

शिक्षा शब्द का अंग्रेजी भाषा के शब्द (Education) पर यदि हम विचार करते हैं तो भी उसका अर्थ इसी से मिलता जुलता निकलता हैं। 'एजूकेशन' (Education) शब्द की प्रादुर्भाव/उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एजुकेटम' (Educatum) शब्द से हुई है और एजूकेटम 'शब्द उसी भाषा के 'ए' (E) तथा 'ड्यूको' (Duco) दो शब्दों से मिलकर बना है। 'ए' का अर्थ है अन्दर से और 'ड्यूको' का अर्थ है आगे बढ़ाना। इसलिए एजूकेशन का अर्थ हुआ 'बालक की जन्मजात शक्तियों को बाहर की ओर निकालना। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ बालक की अन्तर्निहित शक्तियों या गुणों को विकसित करके उनकी सर्वांगीण विकास करने की क्रिया से है।

कुछ विद्वानों ने 'शिक्षा' शब्द के अलग–अलग शाब्दिक अर्थ बतायें है जिसे निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

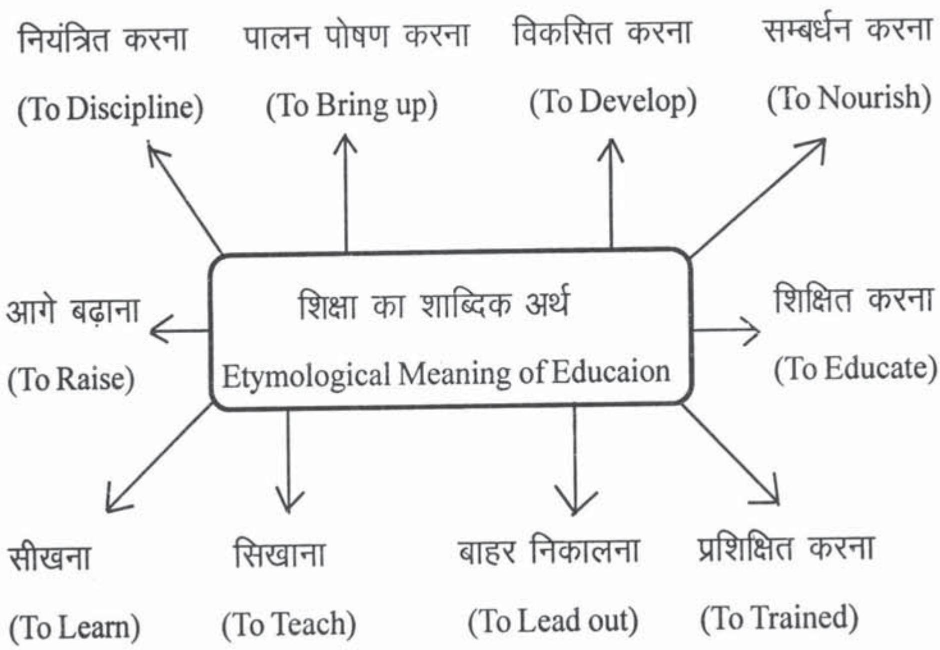

आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों द्वारा शिक्षा को प्रक्रिया रूप में स्वीकार किया जाता है और शिक्षा प्रक्रिया के परिणाम को अब ज्ञान, कौशल एवं व्यवहार परिवर्तन के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

इस शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को परिभाषित करने में दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, वैज्ञानिकों एवं अन्य ने अपनी महति भूमिका अदा की है और इन सबने शिक्षा को अपने–अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

1.3.1 शिक्षा का दार्शनिक सम्प्रत्यय

दार्शनिकों का विचार केन्द्र मुनष्य होता है ये मनुष्य के वास्तविक स्वरुप को जानने और उसके स्वरूप का अन्तिम उद्‌देश्य निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं मानव जीवन के अन्तिम उद्‌देश्य की प्राप्ति का साधनमार्ग निश्चित करने में भी दार्शनिकों की रूचि होती है और इन सभी के ज्ञान एवं प्रशिक्षण के लिए वे शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार दार्शनिकों की दृष्टि से 'शिक्षा मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्‌देश्य की प्राप्ति का साधन होती है।'' मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्‌देश्य के सम्बन्ध में अलग–अलग दार्शनिकों की अलग–अलग विचारधारा है। जगत् गुरु शंकराचार्य की दृष्टि से–

''सः विद्या या विमुक्तये'' अर्थात् शिक्षा वह है जो हमें मुक्ति दिलाये।

भारतीय मनीषी स्वामी विवेकानन्द मनुष्य को जन्म से ही पूर्ण मानते थे और शिक्षा द्वारा अपने अन्दर समाये इस पूर्णता को जानने योग्य बनाने पर बल देते थे। इनके अनुसार

''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।''

डॉ0 राधाकृष्णन का मानना था कि मानव के अन्दर मानवीय गुणों का जब तक अच्छी प्रकार से समावेश नहीं होगा तब तक अच्छे समाज के निर्माण की कल्पना नही की जा सकती। इनके अनुसार–

''शिक्षा को मानव–निर्माती और समाज निर्माती होना चाहिए। इस कार्य को किये बिना शिक्षा हीन और अपूर्ण है।''

युगपुरुष महात्मागांधी ने मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, इन तीनों के सर्वांगीण विकास करने पर समानरुप से बल दिया है। इनके अनुसार– ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वांगीण एव सर्वोत्तकृष्ठ विकास से है।''

पाश्चात्य दार्शनिकों में सुकरात ऐसे प्रथम दार्शनिक है जिन्होंने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताया है कि

''शिक्षा का अर्थ सार्वभौम वैद्य विचारों को बाहर लाना अर्थात प्रकाश में लाना है, जो प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में अदृश्य है।''

प्लेटो ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

''शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर ओर आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य हैं।''

प्लेटो के शिष्य अरस्तु थे परन्तु दोनों के विचारों में भिन्नता थी क्योंकि प्लेटो गणितज्ञ था और अरस्तु जैव विज्ञानी **(Bio-logist)**। अरस्तु का विश्वास था कि उचित शारीरिक एवं मानसिक विकास होने पर ही मनुष्य आत्मा की अनुभूति कर सकता है। अरस्तु के अनुसार "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का सृजन ही शिक्षा है।"

पेस्टालॉजी **(Pestalozzi)** ने शिक्षा का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है कि "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, सामन्जस्य पूर्ण और प्रगतिशील विकास है।"

फ्रोवेल **(Froebal)** ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है– "शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियां बाहर प्रकट होती है।"

भौतिकवादी दार्शनिक लौकिक जीवन को ही सत्य मानते हैं इनकी दृष्टि से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है और सुखपूर्वक जीने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य शरीर और मन से स्वस्थ और इन्द्रिय भोग के साधनों से सम्पन्न हो। ये सभी कार्य वे शिक्षा द्वारा करना चाहते हैं। भौतिकवादी चार्वाकों के अनुसार– शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है।"

प्रकृतिवादी दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर भी भौतिक सुखों की प्राप्ति करने के पक्ष में हैं और इनकी दृष्टि से यह तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने अन्तः और बाह्य पर्यावरण में समन्वय स्थापित करे। इनके अनुसार–"शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तियों का बाह्य जीवन से समनवय स्थापित करना है।"

प्रयोजनवादी दार्शनिक मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानते हैं और यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य में वर्तमान समाज में अनुकूलन करने और भविष्य के समाज का निर्माण करने की क्षमता का विकास करना चाहिए। प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन डीवी के अनुसार– "शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है जो उनमे अपने पर्यावरण पर नियंत्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।"

1.3.2. शिक्षा का समाजशास्त्रीय सम्प्रत्यय

समाजशास्त्रियां का विचार केन्द्र समाज होता है। ये व्यकित को उसके समाज के सन्दर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में ही देखते–समझते हैं। शिक्षा को ये व्यक्ति और समाज के विकास का साधन मानते हैं।

भारतीय समाजशास्त्री भैरव नाथ झा के अनुसार–

"शिक्षा एक प्रक्रिया है और एक सामाजिक कार्य है जो कोइ समाज अपने हित को लिए करता हैं।"

पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध शिक्षा समाजशास्त्री ओटावे महोदय ने शिक्षा के स्वरूप और कार्य दोनों को समाहित करते हुए कहा है कि–

"शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया व्यक्तियों और सामाजिक समूहों के बीच की अन्तःक्रिया है जो व्यक्तियों के विकास के लिए कुछ निश्चित उद्देश्यों से की जाती है।"

1.3.3 शिक्षा का राजनैतिक सम्प्रत्यय

राजनीतिशास्त्रीयों का विचार केन्द्र राज्य और उसका शासनतंत्र होता है। ये व्यक्ति और समाज दोनों को राज्य और उसके शासनतंत्र के सन्दर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में देखते समझते हैं। शिक्षा को ये राष्ट्र निर्माण का साधन मानते हैं। राष्ट्र का निर्माण होता है श्रेष्ठ नागरिकों से और श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण होता है शिक्षा द्वारा। इनके अनुसार–

वास्तविक शिक्षा वह है जो श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करती है।

1.3.4 शिक्षा का मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्यय

मनोविज्ञानियों का विचार केन्द्र मनुष्य का वाह्यस्वरूप और उसका अन्तःकरण दोनों होते हें। वाह्य स्वरूप में वह उसकी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मोन्द्रियों का अध्ययन करता है और अन्तःकरण में चित्त (मन, बुद्धि और अहंकार) का अध्ययन करता है। मनोविज्ञानियों के अनुसार–

शिक्षा का अर्थ है मनुष्य की बाह्यइन्द्रियों और अन्तःकरण का प्रशिक्षण।

1.3.5 शिक्षा का वैज्ञानिक सम्प्रत्यय

वैज्ञानिकों का विचार केन्द्र भौतिक जगत एवं उसकी वस्तुएं तथा क्रियाएं होती हैं। ये किसी भी वस्तु अथवा क्रिया को क्रमबद्ध, आनुभाविक (Empirical) एवं वस्तुनिष्ठ ढंग से देखते हैं। शिक्षा को ये मनुष्य की शक्तियों के बाह्य जीवनानुकूल विकास के साधन रूप में स्वीकार करते हैं। हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार– "शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तायों का वाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है।"

1.3.6 शिक्षा का सही सम्प्रत्यय

शिक्षा के सम्बन्ध में दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों राजनीतिशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों के अलग–अलग विचार है। यदि हम इन सब के दृष्टिकोणों पर विचार करें तो निम्नलिखित तथ्य उभरकर निकलते हैं–

– शिक्षा एक उद्देश्य परक है।

– शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है।

– शिक्षा अविरल, गतिशील और विकास की प्रक्रिया है

शिक्षा के कार्यो के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास करती हैं।

– शिक्षा व्यक्ति के ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि करती है।

– शिक्षा मानव व्यवहारों को परिमार्जित करती है।

– शिक्षा मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाती है

शिक्षा की उपर्युक्त प्रकृति एवं कार्यों के आधार पर हमें इसे निम्नलिखित रूप में परिभाषित करना चाहिए–

"शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली एक सोउद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।"

शिक्षा की यह परिभाषा सबसे उपयुक्त एवं अपने में पूर्ण है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी – अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

1. शिक्षा के अर्थ से आप क्या समझते हैं?

____

____

____

2. शिक्षा का सम्प्रत्यय क्या है?

____

____

____

1.4 शिक्षा की प्रकृति

जिस प्रकार शिक्षा का अर्थ अलग–अलग विचारकों एवं विद्वानों के अनुसार अलग–अलग हैं उसी प्रकार शिक्षा की प्रकृति के विषय में भी विद्वानों के मत भिन्न–भिन्न है। इन सबके दृष्टिकोणों से शिक्षा की प्रकृति निम्नलिखित हैः

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है–

चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह अपना जीवन समाज में ही व्यतीत करता है। इसके लिए उसका सामाजिक विकास किया जाना आवश्यक है। ताकि वह समाज में अपना पूर्ण साभन्जस्य स्थापित कर प्रेम सद्भाव, सहयोग, सत्य अहिंसा एवं ईमानदारी के साथ रह सके परन्तु यह उचित शिक्षण द्वारा ही सम्भव है। अतः शिक्षा की प्रकृति एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में है।

2. शिक्षा एक निरन्तर प्रक्रिया है–

मनुष्य का जैसे ही इस धरा पर जन्म होता है वह कुछ न कुछ हर क्षण सीखना प्रारम्भ कर देता है और मृत्यु से पूर्व तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। इसलिए इसे जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। अतः शिक्षा की प्रकृति निरन्तर प्रक्रिया के रूप में है।

3. शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है

समाज में परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा में भी परिवर्तन होता रहता है। शिक्षा और समाज का साथ–साथ चलना आवश्यक है। जब–जब समाज में परिवर्तन होता है तब–तब शिक्षा में परिवर्तन होना आवश्यक है। ऐसा नही हो सकता है कि समाज आगे निकल जाय और शिक्षा पिछे रह जाय। समाज के आवश्यकतानुसार शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा एक सी कभी नहीं रहती। इसलिए शिक्षा को गतिशील प्रक्रिया कहा गया है। अतः शिक्षा की प्रकृति गतिशील है।

4. शिक्षा विकास की प्रक्रिया है

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्यों की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामन्जस्यपूर्ण विकास में सहयोग देती है। व्यक्ति की वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करती है, उसे वातावरण से सामन्जस्य स्थापित करने में सहयोग देती है, उसे जीवन और नागरिकता के कर्तव्यों और दायित्वों के लिए तैयार करती है और उसके व्यवहार, विचार और दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो समाज, देश और विश्व के लिए हितकर व विकासोन्मुख होता है। अतः शिक्षा की प्रकृति विकास की प्रक्रिया है।

5. शिक्षा बहुमुखी प्रक्रिया है

शिक्षा के अंग अथवा घटक के विषय में शिक्षाविद् एक मत नही है। अंग्रेज शिक्षाशास्त्री जान एडम शिक्षा के दो अंग मानते थे–एक प्रभावित होने वाला (शिक्षार्थी) और दूसरा प्रभावित करने वाला (शिक्षक) द्विमुखी प्रक्रिया (Bipolar Process)। अमरीकी शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी (Jonh Dewey) एवं अंग्रेज विद्वान रायबर्न ने शिक्षा को त्रिमुखी प्रक्रिया (Tripolar Process) के रूप में प्रस्तुत किया। परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप अति व्यापक हो गया है शिक्षा अब शिक्षक, षिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं रह गयी है ओर न ही अब शिक्षा विद्यालय की चाहर दीवारी में केन्द्रित रह गयी है। शिक्षार्थी, शिक्षक, पाठ्यचर्या, शिक्षणविधि के अतिरिक्त शिक्षोपकरण, प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, मापन एवं मूल्यांकन तथा अन्य संचार साधन भी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार से सम्बद्ध हो गये हैं। इस प्रकार अब शिक्षा को बहुमुखी प्रक्रिया (Multipolar Process) के रूप में माना जा रहा है। अतः शिक्षा की प्रकृति बहुमुखी है।

1.5. शिक्षण और सीखना Teaching and Learning

शिक्षण : शिक्षण अंग्रेजी के शब्द Teaching का हिन्दी पर्याय है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसमें सीखाने वाला शिक्षक और सीखने वाला छात्र दोनो ही सक्रिय होकर अन्तःक्रिया करते रहते हैं। इसमें शिक्षक विभिन्न विधियों, युक्तियों और साधनों द्वारा छात्रों को अधिक सक्रिय बनाते हुए सीखने की परिस्थितियों का निर्माण करता है और छात्रों की क्रियाओं में हस्तक्षेप न करके उनकी सृजनात्मक क्षमताओं के विकास की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है तथा उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन करने का प्रयत्न करता है।

एन.एल.गेज (N.L. Gage) के अनुसार "शिक्षण एक प्रकार का पारस्परिक प्रभाव है जिसका उद्देश्य है दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाना।"

जेम्से एम. थाइन (James M. Thyne) के अनुसार– "समस्त शिक्षण का अर्थ है सीखने में वृद्धि करना।"

क्लार्क (Clark 1970) के अनुसार "शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके प्रारूप तथा संचालन की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे छात्रों के व्यवहारों में परिवर्तन लाया जा सके।"

विद्वानों ने शिक्षण की व्याख्या भिन्न–भिन्न रूपों में की है और इसे परिभाषित भी भिन्न रूपों में किया है। शिक्षण की इन सब व्याख्याओं और परिभाषाओं एवं आज

शिक्षण का जो वास्तविक स्वरूप और कार्य है उन सबके आधार पर हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि–

शिक्षण वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सीखाने वाला सीखने वालों के लिए विभिन्न विधियाँ, युक्तियों और साधनों द्वारा सीखने की सृजनात्मक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं और सीखने वाले इनकी सहाता से सीखते हैं और अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाते हैं।

सीखने को सामान्यतः ज्ञान एवं कौशला के अर्जन के रूप में देखा–समझा जाता हैं। विद्वानों ने इसकी व्याख्या भी भिन्न–भिन्न रूपों में की है और परिभाषित भी भिन्न भिन्न रूपों में किया है किन्तु वर्तमान में जो सीखने की प्रक्रिया का वास्तविक स्वरूप है उसके आधार पर इसे निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं;

"सीखने का अर्थ है अनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षण अथवा अध्ययन द्वारा नये–नये तथ्यों को जानना और नयी–नयी क्रियाओं को करना और इन्हें आत्मसात करना तथा आवश्यकता पड़ने पर इनका प्रयोग करना। सीखने का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक सीखने वालों के व्यवहार में इस प्रकार का परिवर्तन न हो जाय।"

शिक्षा, शिक्षण और सीखने में अन्तर

शिक्षा, शिक्षण और सीखने के सम्प्रत्ययों में निम्नलिखित अन्तर है–

1. शिक्षा एक बृहत् सम्प्रत्यय है इसके तीन पक्ष है सिद्धान्त (उद्देश्य एवं विषयवस्तु), क्रिया (शिक्षण) और परिणाम (सीखना)। स्पष्ट है कि शिक्षण शिक्षा का क्रियात्मक पक्ष है और सीखना परिणामात्मक।

2. शिक्षा के उद्देश्य समाज द्वारा निश्चित होते हैं ये व्यक्ति और समाज दोनों के विकास से सम्बन्धित होते हैं जबकि शिक्षण और सीखने के उद्देश्य तदनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी। दूसरे शब्दों में शिक्षा सदैव विकासोन्मुख होती है। परन्तु शिक्षण और सीखना विकासोन्मुख भी हो सकते हैं और अधोगामी भी।

3. शिक्षा द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं परन्तु शिक्षण और सीखना इस विकास में सहायक भी हो सकते हैं और बाधक भी। किसी समाज के सदस्य जो कुछ व्यक्ति एवं समाज के हित में सीखते–सिखाते हैं वह उसके विकास में सहायक होता है और जो कुछ प्रतिकूल सीखते सीखाते हैं वह बाधक होता है।

4. उपर्युक्त तीन भिन्नताओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षण और सीखने की प्रक्रियाएं निहित होती हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं कि जहाँ शिक्षण और

सीखने की प्रक्रियाएं हो वहां शिक्षा भी हो। किसी समाज में लोग उन क्रियाओं को भी सीखते–सीखाते हैं जो उनकी शिक्षा परिधि में नहीं आती है। जैसे झूठ बोलना, चोरी करना आदि।

5. शिक्षा और शिक्षण में तीन तत्वों का होना आवश्यक होता है–सीखाने वाला, सीखने वाला और सीखने–सीखाने की सामग्री परन्तु सीखने के लिए यह आवश्यक नही है कि सीखाने वाला हो ही, लोग बिना किसी की सहायता के स्वानुभव और स्वाध्याय द्वारा भी सीखते हैं।

उत्तम शिक्षा की पहचान व्यक्ति और समाज की प्रगतिशीलता होती है, उत्तम शिक्षा की पहचान उत्तम सीखना होता है और उत्तम सीखने की पहचान अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन होता है।

1.6 शिक्षा और शिक्षा शास्त्र (Educational & Educational Subject)

शिक्षा प्रक्रिया को अंग्रेजी में एजूकेशन (Education) तथा 'शिक्षाशास्त्र' विषय को भी अंग्रेजी में एजूकेशन (Education) नाम से प्रायः सम्बोधित किया जाता है जबकि ये दोनों भिन्न सम्प्रत्य है इनके अन्तर को समझने के लिए हमें इन दोनों सम्प्रत्ययों को अलग–अलग समझना होगा।

शिक्षा का सम्प्रत्य

"शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली एक सोउद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियां का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।

शिक्षाशास्त्र का सम्प्रत्यय

वर्तमान समय में शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं कार्यो की विस्तृत व्याख्या करने तथा उसकी समस्याओं के समाधान खोजने का नवीन प्रयत्न मुख्य रूप से दर्शनशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है। इस नवीन प्रयत्न ने एक नये अनुशासन (विषय) को जन्म दिया है जिसे शिक्षाशास्त्र कहते हैं। शिक्षाशास्त्र में उन सभी विचारों एवं प्रयोगों का वर्णन एवं व्याख्या भी होती है जिन्होंने समय–समय पर शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावित किया है। इसके साथ–साथ इसमें इस पर भी विचार किया जाता है कि बदलते हुए समाज में

शिक्षा के उद्‌देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों का क्या स्वरूप होना चाहिए। शिक्षाशास्त्र में शिक्षा की समस्त समस्याओं जैसे कि शिक्षा के सम्प्रत्यय, शिक्षा के उद्‌देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षणविधियों, शिक्षक, शिक्षार्थी, अनुशासन, विद्यालय इत्यादि पर विचार किया जाता है और उनके समाधान ढूढ़े जाते हैं।

वर्तमान में शिक्षाशास्त्र का अपना अध्ययन क्षेत्र है और अपनी अध्ययन एवं शोध की विधियाँ भी हैं। अब शिक्षाशास्त्र को इण्टर कालेज से लेकर पोस्ट ग्रेजूएट स्तर पर एक स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। शिक्षा शास्त्र को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है–

शिक्षाशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं उसके विभिन्न अंगों तथा समस्याओं का दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

3. शिक्षा की प्रकृति क्या है?

____

____

____

4. शिक्षण और सीखने में अन्तर बताइये ।

____

____

____

5. शिक्षाशास्त्र के सम्प्रत्यय पर प्रकाश डालिये।

____

____

____

1.7 शिक्षाशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु

किसी विषय के अध्ययनक्षेत्र और उसकी विषयवस्तु इन दोनों में थोड़ा अन्तर होता है। अध्ययन क्षेत्र का अर्थ उस सीमा से होता है जिस सीमा तक किसी विषय का अध्ययन किया जा सकता है और विषयवस्तु का अर्थ उस सीमा से होता है जिस सीमा तक अध्ययन किया जा चुका होता है।

शिक्षाशास्त्र का अध्ययनक्षेत्र बहुत व्यापक है। इस व्यापक क्षेत्र में हमने अब तक जो कुछ सोचा–विचारा है वह उसकी विषयवस्तु है। शिक्षाशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र एवं विषय वस्तु को सामान्यतः निम्नलिखित भागों में बांटा जाता है–

1. शिक्षा दर्शन –
2. शैक्षिक समाजशास्त्र
3. शिक्षा मनोविज्ञान
4. शिक्षा का इतिहास
5. तुलनात्मक शिक्षा
6. शैक्षिक समस्याएं
7. शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन
8. शिक्षण कला एवं तकनीकी
9. अध्ययन के अन्य विशिष्ट क्षेत्र

1.8 शिक्षा के रूप

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है ओर अपने व्यापक अर्थ में यह निरन्तर हर समय और हर स्थान पर चलती रहती है। शिक्षा के अनेक रूप हैं परन्तु यहाँ उसके कुछ मुख्य रूपों का वर्णन प्रस्तुत है।

औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा **(Formal, Informal and Non Formal Education)**

व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप होते हें– औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा।

1.8.1 औपचारिक शिक्षा (Formal Education)

इस प्रकार की शिक्षा मुख्य रूप से विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलती हैं। इस शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ सभी निश्चित

होते.हैं। यह योजनाबद्ध होती है और इसकी योजना बड़ी कठोर होती है। इसमें सीखने वालों को विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय की समय–सारिणी के अनुसार कार्य करना होता हैं। इसमें परीक्षा लेने और प्रमाण पत्र प्रदान करने की व्यवस्था होती है।

औपचारिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह व्यक्ति में ज्ञान और कौशल का विकास करती हैं, उसके आचरण को उचित आधार प्रदान करती है और उसे किसी व्यवसाय अथवा उद्योग के लिए योग्य बनाती है। यह समाज की दार्शनिक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक माँगों की पूर्ति करती है और उसके लिए विशेषज्ञ तैयार करती है। शिक्षक, वकील, वैद्य, डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक और तकनीशियन ये सब औपचारिक शिक्षा द्वारा ही तैयार होते हैं।

यह शिक्षा बहुत ही व्यय साध्य होती है क्योंकि जो इसकी व्यवस्था करते हैं उन्हें भी अधिक समय और धन व्यय् करना होता है इसलिए बहुत से छात्र इसे बीच में ही छोड़ देते हैं, जिससे इसमें अपव्यय और अवरोधन देखने को मिलता है। इस शिक्षा को कई स्तरों में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक स्तर पर परीक्षा होती है और प्रमाणपत्र दिये जाते हैं और उन्हीं के आधार पर उन्हें सरकारी तथा गैरसरकारी नौकरियां प्राप्त होती हैं। यह शिक्षा प्रायः परीक्षा प्रधान होती है। उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त शिक्षा को औपचारिक शिक्षा कहा जाता है।

1.8.2 अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education)

इस प्रकार के शिक्षा में कोई भी योजना नहीं बनायी जाती है न ही कोई उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियाँ। इस प्रकार की शिक्षा आकस्मिक रूप से सदैव चलती रहती है। इसे औपचारिकेतर शिक्षा के नाम से भी जानते हें इस प्रकार की शिक्षा मुख्य रूप से घर, परिवार और समाज में चलती है। यह शिक्षा औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के साथ–साथ भी चलती है। परिवार और समुदाय के बीच रहकर हम जो कुछ सीखते हैं अनौपचारिक शिक्षा की कोटि में आता है।

अनौपचारिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मनुष्य के जीवनभर चलती है। भाषा और आचरण की शिक्षा का प्रारम्भ अनौपचारिक रूप से ही होता है।

1.8.3 निरौपचारिक शिक्षा (Non-Formal Education)

एक ऐसी शिक्षा जो न तो औपचारिक शिक्षा की भाँति विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की सीमा में बांधी जाती है और न ही अनौपचारिक शिक्षा की भांति आकास्मिक रूप से चलती है, निरौपचारिक शिक्षा कही जाती है। इस शिक्षा के उद्‌देश्य

पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ प्रायः निश्चित होते हैं परन्तु औपचारिक शिक्षा की भांति कठोर नहीं होते। इसकी योजना बहुत लचीली होती है। इसका मुख्य उद्देश्य सामान्य शिक्षा का प्रसार ओर सतत शिक्षा की व्यवस्था करना होता है। इसकी पाठ्यचर्या सीखने वालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। इसका आयोजन भी सीखने वालों के लिए सुविधाजनक स्थानों जैसे विद्यालय–भवन, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, धर्मशालाओं एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों एवं प्रांगणों में किया जाता है। इस शिक्षा योजना में परीक्षा लेना और प्रमाणपत्र देना भी अनिवार्य नहीं होता। कुछ योजनाओं में निरीक्षण के आधार पर प्रमाण पत्र दिये जाते हैं। विद्यालयों से बाहर की प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च स्तर की खुली शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा ये सब निरौपचारिक शिक्षा के ही विभिन्न रूप हैं।

निरौपचारिक शिक्षा के द्वारा उन बच्चों को शिक्षित किया जाता है जो औपचारिक अथवा विद्यालयी शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते और उन प्रोढ़ौं को शिक्षित किया जाता है जो या तो अपने बचपन में पढ़ नहीं पाते या जो प्राथमिक शिक्षा के ही किसी स्तर पर पढ़ना छोड़कर किसी कार्य में लग जाते हैं। इस शिक्षा के द्वारा कम व्यय से अधिक व्यक्तियों को समान्य शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

1.9 शिक्षा के अभिकरण (Agencies of Education)

जिस–जिस संगठनों, संस्थाओं अथवा स्रोतों से बालक शिक्षा प्राप्त करता हे वह सभी शिक्षा के अभिकरण कहे जाते हें यानि शिक्षा के अभिकरण से तात्पर्य उन विभिन्न संगठनों, संस्थाओं अथवा स्रोतों से है जिनसें बालक शिक्षा ग्रहण करता है। परिवार, समाज, विद्यालय, सिनेमा एवं जनसंचार माध्यम इत्यादि शिक्षा के अभिकरण के रूप में जाने जाते हैं।

(i) परिवार (Family)

अनौपचारिक अभिकरणों में परिवार का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। बालक के जन्म के उपरान्त उसे उठना, बैठना, खाना–पीना, चलना एवं बोलना आदि सीखाने का कार्य परिवार का होता है। इसमें माता का स्थान प्राथमिकता पर है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि माता के व्यवहार का प्रभाव पिता की शिक्षा से भी अधिक पड़ता है। प्रेम, स्नेह, सहयोग, आदर एवं सम्मान परिवार के आधार हैं। इस आधार पर बालकों में एक अच्छी शिक्षा को दिशा दी जाती हैं और बालक स्वतंत्र रूप से अपने सामर्थ्य के अनुसार सीखता चला जाता हैं। बालक को सभ्य, सुसंस्कृत एव संस्कारिक बनाने का प्रथम प्रयास परिवार से ही दृष्टिगत होता है। महामना पंडित

मदन मोहन मालवीय कहा कहते थे कि "मैने बचपन में जो कुछ सीखा था वही मेरी असली शिक्षा है।" महात्मा गांधी ने अपनी माता से धार्मिक आचरण की सही शिक्षा प्राप्त की थी। जीजाबाई ने ही शिवाजी में वीरता की भावना भर दी थी इसलिए सभी महापुरूषों ने माता का ऋण स्वीकार किया है। माता को भारतीय साहित्य में आदि गुरू कहा गया है।

पेस्तालाजी, फ्रोवेल और मान्टेसरी ने घर को शिक्षा का सर्वोत्तम स्थल माना है। पेस्तालाजी के अनुसार "घर बच्चे की पहली पाठशाला है। फ्रोवेल के अनुसार–"माताएं आदर्श अध्यापिकाएं हैं।" मान्टेसरी ने विद्यालय को "बचपन का घर" कहकर पुकारा है। निश्चय ही परिवार बालक का सबसे पहला विद्यालय है अतः इसके महत्व को कम नहीं किया जा सकता। परन्तु चिन्ता इस बात की है कि आर्थिक विसंगतियों की वजह से अधिकांश परिवारों का वातावरण शैक्षिक रूप नहीं ले पा रहा है जिससे कि बालकों की शिक्षा प्रारम्भ में ही प्रभावित हो जाती है फिर भी परिवार को विशेष रूप से माता–पिता को यथा–सम्भव निम्न कार्य करने का प्रयास करना चाहिए–

1. बालक के शारीरिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।
2. बालक के मानसिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।
3. बालक के सामाजिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।
4. बालक में रचनात्मक शक्ति के विकास में सहयोग करना चाहिए।
5. सुखमय एवं आनन्दमय वातावरण बनाये रखने का पूर्णतया प्रयास कराना है।

(ii) समाज (Society)

अनौपचारिक शिक्षा के अभिकरण में समाज का अपना विशिष्ट स्थान है। बालक जब चार या पाँच वर्ष की आयु से अधिक आयु का होने लगता है तो उसका संसार अब परिवार तक सीमित न रहकर धीरे–धीरे बढ़ने लगता हैं, अब उसका परिचय गांव, क्षेत्र, समुदाय व राष्ट्र आदि से होने लगता है। वह इधर सभी से प्रभावित होने लगता है और तरह–तरह के ज्ञान से भी अवगत होता चला जाता है। छोटे आयु में वह समाज से अपनी देखभाल करवाता है किन्तु बड़ा होकर वह समाज की सेवा भाव में जुट जाता है एवं अन्य कई तरह के सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने लगता है। वह इन सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों से तरह–तरह का ज्ञान अर्जित करता है। समाज बालक को सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों का अच्छी तरह अवलोकन कराता है और उसे योग्य नागरिक बनाने का प्रयास करता है। मनोवैज्ञानिकों का भी मानना है कि "समाज बालकों से छोड़–छाड़ कर उन्हें चालाक बना देता है।

अतः शिक्षा संस्था के रूप में समाज का अपने में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है एवं निम्नलिखित शैक्षणिक कार्यो में सहयोग करता है–

1. समाज के विभिन्न अंगों जैसे परिवार, समुदाय, राज्य एवं राष्ट्र आदि से परिचय कराना एवं उनके आपसी सम्बन्धों का ज्ञान देना।
2. समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों का ज्ञान देना।
3. सदस्यों की सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं, आदर्शों एवं विश्वासों का ज्ञान देना।
4. विभिन्न सामाजिक क्रियाकलापों से परिचित कराना।
5. अच्छी सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कार से अवगत कराना।
6. समाज सेवा के सुअवसर प्रदान करना।
7. सामाजिक पर्वो एवं उत्सवों में सहर्ष भाग लेने की प्रेरणा देना।
8. सामाजिक पुनर्रचना की प्रेरणा देना। इत्यादि

(iii) स्कूल (School)

स्कूल शिक्षा का एकमात्र औपचारिक अभिकरण है। वर्तमान में स्कूल का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब बालक की आयु लगभग चार वर्ष की हो जाती है तो उसे विधिवत् स्कूल में प्रवेश करा दिया जाता है। स्कूल ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ पर स्पष्ट पाठ्यक्रम द्वारा निश्चित समय में सुनियोजित शिक्षा प्रदान की जाती है। स्कूलों का मुख्य उद्देश्य सर्वांगीण रूप से शिक्षा प्रदान करना ही है। स्कूलों की स्थापना शिक्षा देने के उद्देश्य से ही की जाती है। स्कूलों में शिक्षा योजनाबद्ध रूप से दी जाती है और यह शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक होती है। स्कूली शिक्षा प्राप्त कर बालक किसी व्यवसाय अथवा उद्योग के लिए याग्य बनता है। वह समाज की दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मांगों की पूर्ति करता है और विशेषज्ञता हासिल करता हे। स्कूल बालकों को शिक्षा प्रदान कर उन्हें वकील, शिक्षक, वैद्य, डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक और तकनिशियन आदि बना देता है। स्कूली शिक्षा प्राप्त कर ही बालक सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरी प्राप्त करता है। स्कूल ही सभ्यता व संस्कृति के संरक्षक हैं। किन्तु वर्तमान में गम्भीर चिन्ता का विषय यह है कि अधिकांश स्कूल अपने उक्त कार्यों एवं लक्ष्यों से भटक गये हैं और उसे व्यवसाय समझ बैठे हैं और अपने उत्तरदायित्वों को

भूल गये है जो समाज की उन्नति में पूर्णतया बाधक सिद्ध हो रहे हैं। किन्तु इससे स्कूलों का महत्व कम नहीं होता।

आज स्कूल को अपने उत्तरदायित्वों को अच्छी तरह पालन करने की आवश्यकता है। क्योंकि स्कूल के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं–

1. स्कूल बालकों को आदर्श नागरिक बनाने का प्रयत्न करता है एवं समाज में अपने स्थान को आदर्श समझकर उचित शिक्षा प्रदान करता है।
2. स्कूल सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षक होता है, यह संस्कृति एवं सभ्यता को संरक्षित कर भावी पीढ़ी को प्रदान करता है।
3. स्कूल सामाजिक पुनर्रचना का दायित्व निर्वहन अच्छे से करता है।
4. स्कूल समाज को एक अच्छी शिक्षा व दशा देता है।
5. स्कूल एक अच्छे विशेषज्ञ प्रदान करते हैं।
6. स्कूल आदर्श नागरिक बनाने हेतु सदा तत्पर रहता है।
7. स्कूल व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर उसके जीवनयापन के सुन्दर ढंग से परिचित कराता है।

(iv) जनसंचार माध्यम (Communication Media)

शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों में जनसंचार माध्यमों का बहुत बड़ा योगदान है आधुनिक सूचना संचार एवं प्रौद्योगिकी के युग में तरह–तरह के जनसंचार माध्यमों का विकास हो जाने से व्यक्ति के अन्दर निश्चित रूप से ज्ञान–विज्ञान के भण्डार में बढ़ोत्तरी एवं विकास हो रहा है जनसंचार माध्यमों जैसे समाचार–पत्र पत्रिकाएं, रेडियो, दूरदर्शन, पत्राचार पाठ्यक्रम, स्कूल दूरदर्शन, बीडियो आडियो रिकार्ड्स, सिनेमा एवं शैक्षणिक उपग्रह शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हो रहे है। इन संचार माध्यमों पर शिक्षा की दृष्टि से विचार करना उपयुक्त है।

(i) समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं (Newspapers and Magazines)

वर्तमान में देश में हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक तरह की समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं का संपादन हो रहा है। इन सब के माध्यम से बालक या व्यक्ति अनेको प्रकार के ज्ञान एवं विज्ञान से अवगत होकर अपने शैक्षिक भण्डार में वृद्धि कर अपने व्यवहार में परिवर्तन कर रहा है। देश विदेश तक की सूचनाएं घर–घर इसके माध्यम से पहुँच रही है। ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी, धर्म, साहित्य, स्वास्थ्य, योग एवं अध्यात्म इत्यादि जैसी कई महत्वपूर्ण जानकारियां घर बैठे समाचार पत्र एवं

पत्रिकाएं प्रदान कर ज्ञान भण्डार को आलोकित कर रही है। शिक्षा का यह अनौपचारिक अभिकरण दिन–प्रतिदिन व्यक्ति को ज्ञात या अज्ञात रूप से शिक्षा देने में सफल सिद्ध हो रहा है।

(ii) रेडियो (Radio) –

रेडियो एक अच्छा श्रव्य उपकरण है। भारत में इसका संचालन आकाशवाणी केन्द्रों से किया जाता है आकाशवाणी छात्रों के लिए विविध प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण की व्यवस्था करता है। इन कार्यक्रमों से छात्र ज्ञान प्राप्त कर शैक्षिक रूप से लाभान्वित होता है शहर के अतिरिक्त दूरदराज ग्रामीण क्षेत्रों में बैठा हुआ छात्र भी इन कार्यक्रमों से लाभ उठा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि आकाशवाणी अपने कार्यक्रमों की योजना बनाते समय शैक्षिक दृष्टिकोण अपनाये और नवयुवकों एवं छात्रों के लिए उपयोगी कार्यक्रमों की व्यवस्था करे।

(iii) दूरदर्शन (Television)

शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों में जनसंचार के रूप में दूरदर्शन एवं श्रव्य–दृश्य उपकरण है। दूरदर्शन का जाल पूरे भारत भर में फैला हुआ है इसके माध्यम से केवल सामान्य कार्यक्रम ही नहीं वरन् विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रम भी प्रसारित किये जाते हैं। यह विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रम स्कूली विषय पाठ्यक्रम से सम्बद्ध होते हैं और अनेको भाषाओं हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत में भौतकी विज्ञान, रसायन विज्ञान, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा अध्यापक शिक्षा से सम्बद्ध कार्यक्रम प्रायः प्रसारित किये जाते हैं। ज्ञान, विज्ञान व तकनीकी शिक्षा के अतिरिक्त समाज–शिक्षा, भारतीय संस्कृति, शैक्षिक समस्याओं एवं शैक्षिक मूल्यों से युक्त कार्यक्रम भी सामान्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रसारित होते है। इन सभी से बालक ज्ञान सीखता है और दूरदर्शन के माध्यम से देखकर सीखा हुआ ज्ञान काफी हद तक स्थायी भी होता है। अतः दूरदर्शन शिक्षा का एक सशक्त अभिकरण है।

(iv) पत्राचार पाठ्यक्रम (Correspondence Course)

शिक्षा का यह सशक्त निरौपचारिक (Non-Formal) अभिकरण है इस अभिकरण के माध्यम से छात्र या व्यक्ति अपनी रूचि एवं आवश्यकता के अनुसार किसी भी क्षेत्र विषय में शिक्षा प्राप्त करता है। वर्तमान में अधिकांश महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय अपने यहाँ पत्राचार पाठ्यक्रम चलाते हैं और छात्र शैक्षिक लाभ उठाते हैं। यह पाठ्यक्रम छात्र की सुविधानुसार शिक्षा प्राप्त करने में सहायता करता है। अच्छी शिक्षा छात्र प्राप्त कर सके इस हेतु यह पाठ्यक्रम शैक्षिक सामग्री की व्यवस्था

स्वयं उपलब्ध कराता है। कम व्यय में अच्छी एवं सुगम शिक्षा प्रदान करने का यह एक अच्छा शैक्षिक अभिकरण है।

(v) विडियो तथा आडियो रिकार्ड्स (**Video and Audio Records**)

इसके माध्यम से दृश्य एवं श्रव्य रिकार्ड तैयार किये जाते हैं जिसमें छात्र को सचित्र दिखाकर एवं तथ्यों को सुनाकर शिक्षा प्रदान की जाती है। सन् 1972–73 में एन. सी.ई.आर.टी. द्वारा एक कार्ययोजना संचालित की गयी जिसे शैक्षिक परियोजना के नाम से जानते है। राज्य एवं केन्द्र सरकारें इस योजना को संचालित करने में सहभागी हैं इस योजना का एक उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा दृश्य एवं श्रव्य रिकार्ड तैयार कर शिक्षा प्रदान की जाती है। इससे शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर गुणात्मक सुधार की सम्भावना हैं। अनेक प्रकार की वीडियो फिल्मों द्वारा भी शिक्षा प्रदान करने में सहायता मिलती है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी –अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिये।

6. औपचारिक शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

----

7. शिक्षा के प्रमुख अभिकरण कौन कौन से हैं ?

1.10 सारांश

शिक्षा को वेदिक युग से ही प्रकाश का स्रोत माना गया है जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा–निर्देश देती है। वास्तव में शिक्षा मानव की अन्तर्निहित शक्तियों या गुणों को विकसित कर उसका सर्वांगीण विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अलग–अलग दृष्टिकोणों जैसे–दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक सम्प्रत्ययों के अनुसार शिक्षा को परिभाषित किया गया है। इन सभी सम्प्रत्ययों के सार रुप में– शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कलाकौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है, और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।''

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है एक निरन्तर प्रक्रिया है, एक गतिशील प्रक्रिया है, एक विकस की प्रक्रिया है और एक बहुमुखी प्रक्रिया है।

शिक्षा शास्त्र की विषय वस्तु एवं अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत–शिक्षा दर्शन शैक्षिक समाजशास्त्र, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा का इतिहास, तुलनात्मक शिक्षा, शैक्षिक समस्याएं, शैश्क्ि प्रशासन एवं संगठन, शिक्षण कला एवं तकनीकी के साथ–साथ नए विशिष्ट क्षेत्र जैसे शिशुशिक्षा, बाल शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, शिक्षक–शिक्षा आदि विषय आते हैं।

शिक्षा के तीन रुप–औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं निरौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत ही शिक्षा के सभी अभिकरण जैसे परिवार, समाज, विद्यालय एवं जनसंचार माध्यम आते हैं जो व्यक्ति को जीवन पर्यन्त शिक्षा लेने को चरितार्थ करते हैं।

1.11 अभ्यास के प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक रुपों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए तथा किसी एक शिक्षा के अभिकरण के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा के रुप एवं शिक्षा के अभिकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

3. शिक्षा के औपचारिक अभिकरण एवं अनौपचारिक अभिकरणों का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरणों से आप क्या समझते हैं?
5. शिक्षा के सक्रिय और निष्क्रिय अभिकरणों के बारे में अपने विचार लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6. जो कथन सत्य है उनके लिए सत्य और जो असत्य है उनके लिए असत्य लिखिए–

   i) परिवार का अनौपचारिक अभिकरण है।

   ii) विद्यालय शिक्षा का औपचारिक अभिकरण है।

   iii) धर्म शिक्षा का औपचारिक अभिकरण है।

   iv) वर्तमान में टेलीविजन निरौपचारिक शिक्षा का प्रमुख साधन है।

उत्तर 6. (i) सत्य 6 (ii) सत्य 6. (iii) असत्य 6 (iv) सत्य

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षा एक प्रक्रिया है जो मनुष्य के साथ आजीवन चलती रहती है तथा इसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उत्थान में माध्यम बनकर सहायता करती है।
2. शिक्षा प्रकाश का स्त्रोत माना गया है जो मानव को सही दिशा निर्देश देती है।
3. शिक्षा की प्रकृति के विषय में विचारकों के अलग अलग विचार हैं।
4. शिक्षण शिक्षा का क्रियात्मक पक्ष है। और सीखना परिणामात्मक ।
5. नवीन सम्प्रत्यय के अनुसार शिक्षाशास्त्र अनुशासन है।
6. अनौपचारिक माध्यमों द्वारा दी गई शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा है।
7. स्कूल, जनसंचार के माध्यम, रेडियो, दूरदर्शन आदि

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड, सुनीता (2007), *शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग*, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. चौबे, एस.पी. एवं चौबे, अखिलेश (2007), *शिक्षा के दार्शनिक समाजशास्त्रीय आधार*, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
3. माथुर, एस.एस. (2009), *उभरते भारतीय समाज में शिक्षक*, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–2

4- Bhatia, Kamla and Bhatia Baldev (1991), *The Philosophical and sociological Foundations & Education,* Dooba House, Naisark, Delhi.

शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई की रूपरेखा –

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रकृतिवाद
2.4 आदर्शवाद
2.5 प्रयोजनवाद
2.6 यथार्थवाद
2.7 अस्तित्ववाद
2.8 मानवतावाद
2.9 सारांश
2.10 अभ्यास प्रश्न
2.11 वोध प्रश्नों के उत्तर
2.12 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

दर्शन शास्त्र द्वारा उठाये हुए विभिन्न प्रश्नो के उत्तर विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से दिये गये है। इन विभिन्न प्रकार के उत्तरों को इनकी कुछ विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण दर्शन शास्त्र को विभिन्न सम्प्रदायो में विभाजित कर देता है। ऐसा विभाजन दर्शन शास्त्र के अध्ययन में सुविधा प्रदान कर देता है किन्तु यह याद रखना चाहिए कि सम्प्रदायो में विभाजन कृत्रिम ही रूप होता है। किसी भी दार्शनिक के सम्पूर्ण विचार एक सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही आ जायें ऐसा नही है। उसके अधिक महत्वपूर्ण विचारो के आधार पर ही उसकी विचार ध ारा को किसी एक विशेष सम्प्रदाय के अन्तर्गत वर्णन किया जाता है। दार्शनिक विचार धाराओ का विभाजन जिनका उल्लेख बहुदा किया जाता है, इस प्रकार है प्रकृतिवाद, आदर्शवाद, प्रयोगवाद अथवा प्रयोजनवाद, यथार्थवाद, अस्तिकवाद तथा मानवतावाद। इस इकाई में हम इन सभी दर्शनों का विस्तार से अध्ययन करेगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि –

1. विभिन्न शिक्षा दर्शनों के अर्थ एवं उनकी परिभाषा को स्पष्ट कर सकेगें।
2. विभिन्न शिक्षा दर्शनों के मूल सिद्धान्तो से अवगत हो सकेगें।
3. विभिन्न शिक्षा दर्शनों की विशेषताओं को तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा व मूल्य मींमांसा के सन्दर्भ में बता सकेगें।
4. शिक्षा में विभिन्न दर्शनों के योगदान का उल्लेख कर सकेगें।
5. विभिन्न शिक्षा दर्शनों के अन्तर को समझ सकेगे।

2.3 प्रकृतिवाद (Naturalism)

पाश्चात्य दार्शनिक विचार धारा के अन्तर्गत प्रकृतिवाद सबसे पुरातन है। इसके बीज हमें ईसा से छठी शताब्दी पूर्व ही मिल जाते हैं। उस समय थेल्स नामक दार्शनिक ने इसका सर्वप्रथम प्रतिपादन किया। प्रकृतिवादी विचारधारा के समर्थकों में अरस्तू, काम्टे, बेकन, हॉब्स, लेमार्क, रूसो, हर्वर्ट स्पेन्सर, हक्सले तथा सेमुअल बटलर आदि प्रमुख हैं।

2.3.1 प्रकृतिवाद का अर्थ एवं परिभाषा :

प्रकृतिवाद प्रकृति को सर्वप्रधान मानता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार सृष्टि में प्रकृति के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं है। वे प्रकृति को ही पूर्ण शक्तिमान मानते हैं और उसी के नियमों तथा कार्य–कारण सम्बन्ध में विश्वास रखते हैं। उनका मत है कि प्रत्येक वस्तु प्रकृति से ही पैदा होती है और उसी में विलीन हो जाती है। यह विचारधारा ईश्वर की सत्ता और आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं रखती, इसलिए वह आदर्शवादी विचारधारा की विरोधी विचारधारा मानी जाती है।

जेम्सवार्ड के अनुसार–"प्रकृतिवाद वह विचारधारा है जो प्रकृति को ईश्वर से अलग करती है और आत्मा को पदार्थ के अधीन करती है और अपरिवर्तनशील नियमों को सर्वोच्च मानती है।"

डब्लू एफ. हॉकिंग के अनुसार– "प्रकृतिवाद तत्वमीमांसा का वह रुप है, जो प्रकृति को पूर्ण यथार्थ मानता है, अर्थात् यह परा–प्राकृतिक या दूसरे जगत को अपने क्षेत्र से बाहर रखता है।"

परन्तु उपर्युक्त परिभाषाओं से प्रकृतिवाद के वास्तविक स्वरुप का बोध नहीं होता। प्रकृतिवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा की दृष्टि से उसे निम्नलिखित रुप में परिभाषित करना चाहिए–

'प्रकृतिवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जो उस ब्रह्माण्ड को प्रकृतिजन्य मानती है और यह मानती है कि यह भौतिक संसार ही सत्य है और इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है। यह ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नही करती और आत्मा को पदार्थजन्य चेतन तत्व मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है, जो प्राकृतिक जीवन जीने अर्थात् प्रकृति के अनुकूल जीने द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

2.3.2 प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त

1. यह ब्रह्माण्ड एक प्राकृतिक रचना है।
2. यह भौतिक संसार ही सत्य है और इससे परे कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है।
3. आत्मा पदार्थ जन्य चेतन तत्व है।
4. मनुष्य संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है।
5. मानव विकास एक प्राकृतिक क्रिया है।
6. मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है।
7. सुखपूर्वक जीवन के लिए प्राकृतिक जीवन उत्तम है।
8. प्राकृतिक जीवन में सामर्थ्य, समायोजन और परिस्थितियों पर नियंत्रण का महत्व है।

2.3.3. शिक्षा में प्रकृतिवाद

शिक्षा में प्रकृतिवाद के प्रयोग का श्रेय रूसो महोदय को जाता है, परन्तु उनसे पहले शैक्षिक विचारधारा में प्रकृतिवाद के समर्थक हैः– बैसेडो, पेस्टालॉजी, हर्बर्ट स्पेन्सर तथा फ्रॉबेल आदि।

अब हम प्रकृतिवाद की मुख्य विशेषताओं पर विचार करते हैंः

1. बालक की शिक्षा के लिए साधनों की आवश्यकता

प्रकृतिवादी इस बात पर बल देते हैं कि बालक को शिक्षा इस प्रकार देनी चाहिए जो प्राकृतिक हो। सच्ची शिक्षा, प्रकृतिवादियों के अनुसार, वह है जो प्रकृति द्वारा बताए गए मार्गों का अनुसरण करें। इस विचारधारा पर ध्यान देने से यह विदित होता है कि यदि प्रकृति इतनी प्रमुख है तो किसी भी औपचारिक साधन, जैसे स्कूल की बालकों को

काई आवश्यकता नहीं हैं परन्तु यह दृष्टिकोण स्पेन्सर तथा दूसरे प्रकृतिवादियों के दृष्टिकोण के विपरीत है। प्रकृतिवादी सम्प्रदाय पाठशाला की स्थापना में विश्वास रखते हैं। क्योंकि वाल्यावस्था मानव–जीवन का वह काल है जिसमें वह परिपक्वता को प्राप्त करता है। जिस काल तक वह परिपक्वता प्राप्त नही कर पाता, वह दूसरों पर आश्रित रहता है। उसे चलना, बोलना तथा अपने अंगों पर नियंत्रण करना आदि सीखने पड़ते हैं। यह वह समय है जब शिक्षा की आवश्यकता है, क्योंकि बिना शिक्षा के उसकी शक्तियों का विकास सम्भव नहीं। इस कारण स्कूलों की स्थापना, उसकी शिक्षा के लिए आवश्यक हूँ।

2. विद्यार्थी की शिक्षा–

हर्वर्ट स्पेन्सर बालक को एक छोटे पशु के समान मानते हैं। उसे इस अवस्था से उचित शिक्षा द्वारा सभ्य व्यक्ति के स्तर तक ले जाना चाहते हैं। परन्तु वास्तव में बालक की ज्ञान प्राप्त करने की सहज प्रक्रियाऐं उसकी प्राकृतिक क्रियाएं ही है। जिस प्रकार की क्रियाओं में बालक आनन्द लेता है, वह इस बात का सूचक है कि बालक को किस प्रकार की शिक्षा दी जाए। अतएव बालक को शिक्षा प्रदान करने में प्रकृतिवादी निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं–

1. बालक की शिक्षा उसके प्राकृतिक विकास के अनुकूल होनी चाहिए। बालक के विकास के प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार की शिक्षा का आयोजन करना चाहिएं प्राकृतिक विकास के 'लय' और 'ताल' के अनुसार ही शिक्षा का होना अभिप्रेत है।

2. बालक की प्रकृति का अध्ययन पाठ्य–वस्तु के अध्ययन से अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव शिक्षा प्रदान करते समय बालक की प्रकृति को समझने पर अधिक बल देना चाहिए।

3. बालक की शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने तक ही सीमित नही होनी चाहिए, बल्कि उसका ध्येय बालक की स्वयं की प्रकृति का विकास करना ही होना चाहिए।

3. शिक्षा का उद्देश्य :

शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने में अनेक प्रकृतिवादियों ने अपना योगदान दिया है, और शिक्षा के कई उद्देश्य निश्चित किए हैं।

हर्वर्ट स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा का सामान्य उद्देश्य ''मनुष्य को 'पूर्ण जीवन' के लिए तैयार करना हैं।''

नन महोदय के मत से शिक्षा का उद्देष्य, ''मानव के व्यक्तितव का स्वतंत्र रुप से विकास करना है।' नन महोदय इस उद्देश्य को स्वछन्दता के रूप में नही रखते, परन्तु उनका तात्पर्य व्यक्ति के विकास में आत्मानुभूति प्राप्त करना है।

अतएव हम कह सकते हैं कि प्राकृतिवाद शिक्षा के वैयक्तिक शिक्षा का उद्देश्य प्रस्तुत करता हैं। रूसो ने स्पष्ट रूप से इस प्रकार की शिक्षा पर बल दिया, जो स्वतंत्र रूप से व्यक्तित्व का विकास कर सके। यह विकास कृत्रिमता से दूर तथा प्रकृति के सम्पर्क में होना आवश्यक समझा गया।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही प्रकृतिवादी विचारकों ने शिक्षा का मुख्य लक्ष्य माना है। वे ऐसी शिक्षा की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं जहां स्वाभाविक क्रियाओं का दमन नहीं किया जाता, जहाँ व्यक्ति की रूचियों पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है और जहां व्यक्ति की प्रवृत्तियों को पूर्ण महत्ता प्रदान की जाती है।

4. प्रकृतिवादी और शिक्षण विधि

प्रकृतिवादी कहते है:– प्रकृति के पथ का अनुसारण करो' परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि बालक को स्वच्छन्द छोड़ दिया जाये और इस भरोसे बैठे रहें कि प्रकृति ही उसे सब कुछ सिखाएगी। बालक का पथ–प्रदर्शन अत्यन्त आवश्यक है। प्रकृतिवादी तो इस कथन को इस रुप में मानते हैं कि बालक को स्वयं कार्य करके सीखना चाहिए। अतएव मुख्य शिक्षण विधि, जिसे प्रकृतिवादी अपनाते हैं, वह है कार्य करके सीखना, वे कहते हैं कि सीखना बालक के प्रत्यक्ष अनुभव पर निर्भर होना चाहिए। वे अध्यापक को केवल पथ–प्रदर्शक के रूप में देखते हैं, जिसको यह ध्यान रखना आवश्यक है। कि बालक उचित मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है, अथवा नहीं। शिक्षक को बालक की स्वाभाविक क्रियाओं में हस्तक्षेप नही करना चाहिए, बल्कि उनको प्रोत्साहन करना ही उसके लिए उपयुक्त समझा जाता है।

प्रकृतिवाद की शिक्षण विधि को अपनाकर ही शिक्षा में बहुत–सी नवीन पद्धतियों का प्रतिपादन हुआ है। इनमें से मुख्य हैं–ह्यूरिस्टिक पद्धति, डाल्टन प्रणाली, प्रोजेक्ट पद्धति, माण्टेसरी प्रणाली आदि।

5. प्रकृतिवाद और अनुशासन

प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुषासन का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। वे मानते हैं कि प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने वाले को प्रकृति क्षमा प्रदान नही करती और वह प्रकृति द्वारा दण्डित किया जाता है। अतएव हमें चाहिए कि बालक को स्वतंत्र छोड़ दें और उसे किसी भी प्रकार का दण्ड न दें। उसे जो कुछ भी मिलना है, वह प्रकृति स्वयं देगी,। उदाहरणार्थ यदि एक बालक सर्दी के दिनों में गर्म कपड़ें नही पहनता और नंगा घूमना चाहता है तो उसे ऐसा करने दिया जाए। प्रकृति उसे ऐसा करने पर दण्ड देगी। बालक बीमार पड़ जाएगा और स्वयं ही सीख जाएगा कि जाड़े

के दिनों में गर्म कपड़े पहनने की आवश्यकता है। इसी प्रकार बालक खुला ब्लैड लिए है तो उसकी उंगली कट जाएगी और इस प्रकार प्रकृति उसे दण्डित करेगी। फलस्वरूप, वह फिर खुले ब्लेड को हाथ में लेने से डरेगा। बालक इस प्रकार प्रकृति द्वारा अनुशासित हो जाएगा। अध्यापक या अभिभावक को बालक को मारना–पीटना नहीं चाहिए और न ही उस पर कठोर नियंत्रण ही रखना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार से बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन होता है और उसका

विकास रुक जाता है।

6. प्रकृतिवाद और विद्यालय

प्रकृतिवादी विद्यालय में स्वतंत्रता के वातावरण पर बल देते हैं। वे कहते है कि विद्यालय की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि बालकों के ऊपर किसी भी प्रकार के दृढ़ एवं कठोर बन्धन न हों, विद्यालय में बालक को स्वशासन का अवसर देना चाहिए। वे चाहते हैं कि विद्यालय का संगठन एक स्वतंत्र समाज के रुप में हो, जहां बालक को अपने स्वयं के विकास की पूर्ण स्वतंत्रता मिले।

7. प्रकृतिवाद और शिक्षक :

प्रकृतिवादी शिक्षक को शिक्षा–प्रणाली का एक गौण अंग मानते हैं। वे प्रकृति को ही सबसे बड़े शिक्षक के रूप में देखते हैं। प्रकृतिवादियों के अनुसार, एक अध्यापक का कर्तव्य उचित वातावरण तथा ऐसी परिस्थितियों के निर्माण तक ही सीमित है, जिसमें बालक स्वयं अपने अनुभव के आधार पर ज्ञान अर्जित कर सके और शिक्षा ग्रहण कर सके। अध्यापक को बालक के ऊपर किसी भी प्रकार से अपनी विचारधारा को नहीं थोपना है और न उसे अपने दृष्टिकोण से प्रभावित ही करना है। बालक को स्वयं ही सब सीखना है और अध्यापक को किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप करने की स्वतन्त्रता नहीं है।

2.3.4. प्रकृतिवाद का मूल्यांकन

प्रकृतिवाद की आलोचना कई प्रकार से की जाती है। यहाँ हम प्रकृतिवाद के तीन मुख्य क्षेत्रों का मूल्यांकन करेंगे।

1. प्रकृतिवाद द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्‌देश्य असन्तोषजनक है:

प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्‌देश्य प्रकृति में ढूँढते हैं, जबकि उनका प्रकृति में मिलना कठिन है। अध्यापक यदि बालक को बिल्कुल स्वच्छन्द छोड़ दें तो वह शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और यदि वह यह करें कि बालक

का विकास जिस ओर हो रहा है उसे सावधानीपूर्वक अपनी दृष्टि में रखे, यदि वह अनुचित मार्ग पर जा रहा है, तो उसकी प्रवृत्तियों को दमन करें तथा यदि वह उचित मार्ग पर जा रहा है तो उसे प्रोत्साहित करे। ऐसा तभी सम्भव है जब अध्यापक को नीतिशास्त्र का ज्ञान होगा, अर्थात् क्या उचित है और क्या अनुचित। अतएव यह स्पष्ट है कि वह तब तक बालक का ठीक रूप से पथ–प्रदर्शन करने में असमर्थ रहेगा, जब तक कि उसे आदर्श के रूप में उद्देश्य न मिले हों। इस पकार हम देखते हैं कि प्रकृतिवाद द्वारा जो उद्देश्य दिए गए हैं , वे अपूर्ण एवं असन्तोषजनक हैं। उचित उद्देश्यों का निध ारिण आदर्शवाद को ध्यान में रखकर ही सम्भव है।

2. प्रकृतिवादी तात्कालिक उपयोगिता पर बल देता है

प्रकृतिवाद पूर्वकालीन ज्ञान, संस्कृति एव आध्यात्मिकता को कोई महत्व नहीं देता। बालक को केवल वे ही बातें सीखने की आवश्यकता समझी जाती है, जो उसकी जीविकोपार्जन में सहायक हों । उसको केवल उस ज्ञान को ही सीखना है जो उसके लिए सीखते समय उपयोगी हो। प्रकृतिवादी के अनुसार, वह ज्ञान जो परलोक या इस लोक में बड़ी आयु में उपयोगी सिद्ध होगा, बालक को वर्तमान आयु में प्रदान करना व्यर्थ है। यह प्रकृतिवाद का दोष हैं यदि हम प्रकृतिवाद के सिद्धान्त को अपनाएं तो शिक्षा का ध्येय अत्यन्त संकीर्ण हो जाता है।

3. प्रकृतिवाद ने पाठयक्रम को नष्ट कर दिया–

प्रकृतिवादी कहते हैं कि बालक को सीखने के लिए कोई भी निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होना चाहिए। बालक को सीखना अध्यापक के स्वस्थ प्रभाव द्वारा ही होना चाहिए। प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम को व्यक्तिगत आवश्यकता और रूचि पर निर्भर समझता है। जिस ओर बालक की रूचि होती है, उसी को उसे शिक्षा देना बालक के लिए परम उपयोगी समझा जाता है। इस अशुद्ध दृष्टिकोण के कारण ही पाठ्यक्रम का महत्व नष्ट हो गया है। शिक्षा का उद्देश्य मानवता का सर्वांगीण विकास होना चाहिए, व्यक्तित्व–मात्र का विकास अपूर्ण है, अधूरा है।

2.3.5 सारांश

सार रुप में यह कहा जा सकता है कि एक दार्शनिक विचारधारा के रूप में प्रकृतिवदी अन्तिम सत्य को खोजने में असमर्थ रहा है। धार्मिक अन्धविश्वासों का पर्दाफास करने के कारण यह आंधी की तरह आया परन्तु ईश्वर के अस्तित्व को नकारने के कारण यह आंधी की तरह चला भी गया, परन्तु शिक्षा पर इसका प्रभाव आज भी दिखाई देता हे। जहां तक शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यचर्या के निर्माण की बात है इस

क्षेत्र में तो प्रकृतिवाद बाजी हार चुका है, परन्तु उसके द्वारा प्रतिपादित शिक्षण सिद्धान्त और शिक्षण सूत्र आज भी अपना स्थान बनाए हुए हैं। अब बच्चों को उपदेश नहीं दिए जाते, उन्हें स्वयं करके, स्वयं के अनुभव से सीखने को अवसर दिए जाते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद के प्रवेश से पहले शिक्षा, शिक्षक–केन्द्रित थी। आज संसार के सभी देशों की शिक्षा में बच्चों की रूचि, रुझान, योग्यता और आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था की जाती है, हमारे देश भारत में भी। संसार में जनशिक्षा, स्त्री–शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के विकास में भी प्रकृतिवादियों का बड़ा योगदान रहा है। परन्तु सब कुछ मनुश्य के प्राकृतिक विकास तक सीमित रहा, उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास की बात ये नहीं सोंच पाए। वास्तव में शिक्षा द्वारा मनुष्य के तीनो पक्षों–प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक का विकास होना चाहिए।

2.4 आदर्शवाद (Idealism)

आदर्शवाद पाश्चात्य दर्शन की प्राचीन विचारधारा है। ईसा की कई शताब्दी पूर्व यूनान (ग्रीस) में तत्व ज्ञान सम्बन्धी विकास होने लगा था। थेल्स, जैनोकेनीज, सुकरात एवं इसके बाद सुकरात के ही शिष्य प्लेटो (427–347 ई.पू.) का प्रादुर्भाव हुआ। प्लेटो यूनान के पहले ऐसे दार्शनिक हैं जिन्होंने अपने दार्शनिक चिन्तन को बड़े व्यवस्थित और तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। प्लेटो आत्मा– परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते थे और यह मानते थे कि परमात्मा इस सृष्टि का नियामक कारण अर्थात कर्ता है और विचार इसके उपादान कारण अर्थात आधार हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह भौतिक जगत विचारों के जगत का प्रकटीकरण मात्र है उनका तर्क है कि भौतिक जगत परिणामशील है इसलिए यह नित्य नहीं हो सकता, सत्य नहीं हो सकता और विचारों का जगत परिणामशील नहीं है इसलिए वह नित्य है, सत्य है उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इन विचारों में एक दैवीय एवं नैतिक व्यवस्था होती है। पश्चिमी जगत में उनकी इस विचारधारा को आदर्शवाद (Idealism) की संज्ञा दी गयी। प्लेटो के बाद डेकोर्ट, स्पिनोजा, लाइबनीज, वर्कले, कान्ट, फिस्टे, हीगल, शैलिंग और शापेनहावन आदि दार्षनिकों ने इस आध्यात्मिक विचारधारा को थोड़े–थोड़े अन्तर से आगे बढ़ाया।

आधुनिक युग में इस विचारधारा को आगे बढ़ाने और शिक्षा के क्षेत्र में इसका प्रयोग करने वाले पाश्चात्य दार्शनिकों में जर्मनी के पेस्टालाजी, हरबार्ट और फ्रोबेल, इग्लैण्ड के नन, इटली के जेन्टिले और अमेरिका के हार्न महोदय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

2.4.1 आदर्शवाद की परिभाषा

आदर्शवाद को विद्वानों ने भिन्न–भिन्न रूप में परिभाषित किया है यहाँ उन सब परिभाषाओं को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। उन सबके विषय में हम इतना अवश्य कहना चाहेंगें कि उनमें आदर्शवाद के किसी एक अथवा कुछ मूल सिद्धान्तों पर ही बल दिया गया है, वे उसको उसके सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत नहीं करती। पाश्चात्य विद्वान हेन्डरसन द्वारा दी गयी परिभाषा से अधिकतर विद्वान सहमत हैं उनके शब्दों में–

"आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है क्योंकि आदर्शवादियों के अनुसार आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य के और जीवन के सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू है। एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी यह विश्वास करता है कि मनुष्य का सीमित मन उस असीमित मन से निकलता है, व्यक्ति और यह संसार दोनों विचार की अभिव्यक्ति है और भौतिक संसार की व्याख्या मानसिक संसार के आधार पर की जा सकती है।"

परन्तु यह परिभाषा स्वयं में बिल्कुल रूप से स्पष्ट नहीं है इसके प्रत्येक पद की व्याख्या की आवश्यकता है। आदर्शवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा के आधार पर इसे सही रूप में निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है:

"आदर्शवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड को विचार द्वारा निर्मित मानती है और यह मानती है कि इस वस्तु जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत श्रेष्ठ है। यह विचारों को अन्तिम सत्य और आत्मा को परमात्मा का अंश मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है जो आध्यात्मिक जीवन जीने अर्थात शाश्वत मूल्यों और नैतिक नियमों के पालन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।"

2.4.2 आदर्शवाद के मूल सिद्धान्त

आदर्शवाद की तत्वमीमांस (Metaphysics), ज्ञान मीमांसा (Epistemology) और मूल्य एवं आचार मीमांसा (Axiology and Ethics) को यदि हम सिद्धान्तों के रूप में प्रस्तुत करना चाहें तो इसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं:

1. यह ब्रह्माण्ड विचारसत्ता द्वारा निर्मित है–

आदर्शवादियो का विश्वास है कि इस ब्राह्माण्ड की कोई नियामक सत्ता अवश्य है और यह सत्ता अनादि तथा अनन्त है और इसका स्वरूप आध्यात्मिक है, जो विचारों की सहायता से सृष्टि रचना करता है। **हीगल** के अनुसार– ब्रह्माण्ड के मूल में दो मूल तत्व हैं– एक आत्मा (मनस (Mind) और दूसरा प्रकृति (पदार्थ Matter)। उनके अनुसार परमात्मा (परम मन, Supermind) पदार्थ (Matter) से इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है।

2. भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत श्रेष्ठ है–

प्लेटो ने इस ब्रह्माण्ड को दो जगतों में बाँटा है– पहला विचार जगत और दूसरा वस्तुजगत। उनका स्पष्टीकरण है कि विचार नित्य और अपरिवर्तनशील है इसलिए वे सत्य है और उनसे बना विचारों का जगत भी सत्य है। इसके विपरीत पदार्थ अनित्य और परिवर्तनशील हैं इसलिए असत्य है और उनसे बना जगत भी असत्य है उनके अनुसार यह भौतिक संसार विचारजन्य संसार की अभिव्यक्ति मात्र है।

3. आत्मा एक आध्यात्मिक तत्व है और परमात्मा सर्वश्रेष्ठ आत्मा है:–

यद्यपि आत्मा के सम्बन्ध में सभी आदर्शवादी एकमत नहीं है, कुछ उसे परमात्मा का अंश मानते है और कुछ उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं, परन्तु यह सभी मानते हैं कि आत्मा अनादि और अनन्त है। उनका कहना है कि आत्मा को इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता है।

4. मनुष्य संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है–

आदर्शवादी मनुष्य को सृष्टि की सर्वोच्च रचना मानते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के पास अन्य प्राणियों की भाँति भौतिक शक्तियाँ और होती हैं। ये आध्यात्मिक शक्तियाँ उसे सभ्यता, संस्कृति, कला, नीति और धर्म को जन्म देने और उनका विकास करने में सहायक होती है।

5. मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्‌देश्य आत्मानुभूति है।

आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य के अन्दर आत्मा का निवास है। यह आत्मा सूक्ष्म, अनादि और अनन्त है। प्रत्येक प्राणी इस दृष्टि से पूर्ण है परन्तु अज्ञानता के कारण वह इस पूर्णता को समझ नहीं पाता और इसलिए ज्ञान और शक्ति का अनन्त भण्डार होते हुए भी वह अपने को ज्ञानहीन और शक्तिहीन समझता है। इस प्रकार आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य के जीवन का चरम उद्‌देश्य आत्मानुभूति अथवा परमसत्य अथवा परमआनन्द की प्राप्ति है।

6. आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है–

सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् आध्यात्मिक मूल्य हैं इनको इस शरीर से ही प्राप्त किया जाता है। इसलिए इस शरीर को उसके योग्य बनाना आवश्यक है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य संसार के अन्य प्राणियों की भाँति ही लड़ते–झगड़ते रहते हैं। सामाजिक भावना उन्हें एक दूसरे के निकट लाती है और वे एक दूसरे के सुख की बात सोचने लगते हैं। आदर्शवादियों ने हमें बताया कि हम सब आत्माधारी है इसलिए

समान हैं और इसलिए एक प्राणी के दूसरे प्राणी के प्रति कुछ कर्तव्य हैं। कर्तव्यों को सामाजिक मूल्य, धर्म, नीति और आदर्श रूपो में संगठित किया गया है। आदर्शवादियों का कहना है कि मनुष्य–मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में ही सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् के दर्शन कर सकता है।

2.4.3 आदर्शवाद और शिक्षा (Idealism and Education)

आदर्शवाद ने शिक्षा को बहुत प्रभावित किया है। इस बीच संसार में अनेक परिवर्तन हुए है। अनेक विचारों ने जन्म लिया है और उन्होंने शिक्षा पर अपना–अपना प्रभाव भी डाला है, लेकिन आज भी शिक्षा किसी न किसी रूप में आदर्शवाद से प्रभावित है। आदर्शवादी शिक्षा के अनुसार–

1. शिक्षा का सम्प्रत्यय :

आदर्शवादी शिक्षा को ज्ञान और प्रक्रिया दोनो रूपों में स्वीकार करते हैं। प्लेटो के अनुसार–

''शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य हैं।''

परन्तु आधुनिक युग के आदर्शवादी शिक्षा को प्रक्रिया रूप में स्वीकार करते हैं जर्मन शिक्षाशास्त्री हरबार्ट के अनुसार–

''शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सद्गुणों की प्राप्ति होती है।''

2. शिक्षा के उद्देश्य

अन्तिम उद्देश्य आत्मा परमात्मा के स्वरूप को जानना

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मा–परमात्मा के चरम स्वरूप को जानना है। इसी को आत्मानुभूति, आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति, ईश्वर की प्राप्ति, आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति अथवा परम आनन्द की प्राप्ति कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि आत्मा–परमात्मा के चरम स्वरूप को कैसे जाना जा सकता है, आदर्शवादियों के अनुसार इसके लिए मनुष्य को चार सोपान पार करने होते हैं। प्रथम सोपान पर उसे अपने 'प्राकृतिक स्व' का विकास करना होता है इसके अन्तर्गत मनुष्य का शारीरिक विकास आता है। दूसरे सोपान पर उसे अपने 'सामाजिक स्व' का विकास करना होता है, इसके अन्तर्गत सामाज़िक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक एवं नागरिकता का विकास आता है। तीसरे सोपान पर उसे 'मानसिक स्व' का विकास करना होता है, इसके अन्तर्गत मानसिक, बौद्धिक एवं विवेकशक्ति का विकास करना होता है। चौथे तथा अन्तिम सोपान पर उसे अपने। 'आध्यात्मिक स्व' का विकास करना होता है। इसके

अन्तर्गत आध्यात्मिक चेतना का विकास आता है। आदर्शवादी इन्हीं सबको शिक्षा का उद्देश्य निश्चित करते हैं।

3. शिक्षा की पाठ्यचर्या :

आदर्शवादी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार, मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति अथवा ईश्वर की प्राप्ति है और इसके लिए सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की प्राप्ति आवश्यक होती है ये तीनो आध्यात्मिक मूल्य, मनुष्य की क्रमशः, बौद्धिक, नैतिक एवं कलात्मक क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः प्लेटो पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं के समावेश पर बल देते ये जो मानव को उपर्युक्त क्रियाओं के समावेश पर बल देते जो मानव को उपर्युक्त क्रियाओं में दक्षता प्रदान करें। उन्होंने पाठ्यचर्या में बौद्धिक क्रियाओं के लिए भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित तथा शारीरिक विज्ञान का नैतिक क्रियाओं के लिए धर्म, नीतिशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र का और कलात्मक क्रियाओं के लिए विभिन्न कलाओं तथा संगीत का समावेष किया था।

4. शिक्षण विधियाँ

पाश्चात्य आदर्शवादी विचारकों ने अनेक शिक्षण–विधियों का विकास किया है। प्लेटो के गुरू सुकरात वाद–विवाद, व्याख्यान और प्रश्नोत्तर विधि द्वारा उस समय के युवकों को शिक्षा दिया करते थे। प्लेटो ने प्रश्नोत्तर विधि के आधार पर 'संवाद विधि' का विकास किया। प्लेटो ने अपनी अधिकतर रचनाएं भी संवादों के रूप में लिखी है उनके षिश्य अरस्तु ने अंागमन एवं निगमन विधियों पर बल दिया। आध ुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों में हीगल ने तर्क विधि, पेस्टालाजी ने अभ्यास और आवृत्ति विधि, हरवार्ट ने अनुदेशन प्रणाली और फ्रोवेल ने खेल विधि का विकास किया है।

5. अनुशासन

आदर्शवादियों का स्पष्टीकरण है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ उसे भौतिक सुख की ओर आकर्षित करती हैं और उनकी आत्मा आध्यात्मिक आनन्द की ओर। उनकी दृष्टि से आत्मा से शासित होना ही सच्चा अनुशासन है। प्लेटो के अनुसार, बच्चों को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करने के लिए नैतिक आचरण आवश्यक होता है अतः हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है कि बच्चों को अनैतिक आचरण से राकें इसके लिए वे कठोर नियंत्रण और दण्ड का विधान स्वीकार करते थे। परन्तु दूसरी ओर उनका यह भी कहना था कि वास्तविक अनुशासन आन्तरिक होता है। जिसमें मनुष्य अपने अन्तःकरण से प्रेरणा प्राप्त करता है ओर तदनुकूल आचरण करता है।

6. शिक्षक

आदर्शवादी शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक को शीर्श स्थान देते हैं और उनके अनुसार बच्चों को पशुत्व से मनुश्यत्व और मनुष्यत्व से देवत्व की ओर ले जाने में। शिक्षक की बड़ी आवश्यकता होती है।

प्लेटो के अनुसार ज्ञान के भण्डार, दार्शनिक और अन्तर्दृष्टि प्राप्त व्यक्ति ही शिक्षक बनने के अधिकारी होते हैं। फ्रोबेल के शब्दों में "विद्यालय रूपी बाग में अध्यापक रूपी माली विद्यार्थी रूपी पौधे के विकास में सहयोग देते हैं। अध्यापक में छात्रों को समझने और उनका उचित ढंग से विकास कर सकने की शक्ति भी होनी चाहिए।"

7. शिक्षार्थी

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य के अनुभव का केन्द्र मस्तिष्क नहीं आत्मा होता है। इस दृष्टि से सब बच्चे समान हैं और पूर्णता की अनुभूति करने योग्य होते हैं। अधि ाकतर आदर्शवादी इस पूर्णता की अनुभूति कराने पर बल देते हैं परन्तु आधुनिक आदर्शवादी बच्चों का विकास करते समय उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास, रूचि, रूझान और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा देने पर बल देते हैं।

8. विद्यालय

आदर्शवादियों का तर्क है कि मनुष्य आत्मानुभूति करने में तभी सफल हो सकता है जब उसका सर्वांगीण विकास हो जाय। इस सबके लिए वे सामाजिक आदर्शों, मूल्य एवं सिद्धान्तो से पूर्ण उच्च सामाजिक वातावरण की आवश्यकता समझते हैं। यह सब विद्यालयों में ही संभव है। आदर्शवादियों के अनुसार विद्यालय ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ बच्चे उच्च सामाजिक आदर्शों तथा आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ सके

2.4.4 सारांश

सारांश स्वरूप कहा जा सकता है कि आदर्शवादी इस ब्रह्माण्ड के अन्तिम सत्य ईश्वर की खोज करने में तो सफल रहे परन्तु उनके द्वारा वस्तुजगत के अस्तित्व को नकारने की वात सामान्य मनुष्यों के गले नहीं उतरती। पर मनुष्य के लिए जिस प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक नैतिकता का विधान आदर्शवादियों ने किया है उसके पालन से मनुष्य के पारलौकिक जीवन के बारे में निश्चयपूर्वक भले ही कुछ न कहा जा सकता हो पर उससे उसका लौकिक जीवन निश्चित रूप से सुखमय एवं शान्तिमय होता है। शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभाव इसी दर्शन का है किसी भी देश के शिक्षा के उद्देश्य मूलतः वही है जिनका प्रतिपादन आदर्शवादियों ने किया है। शिक्षा की पाठ्यचर्या में भाषा और साहित्य के महत्व को आज भी स्वीकार किया जाता है

आदर्शवादियों द्वरा विकसीत शिक्षण विधियों का प्रयोग भी किसी न किसी रूप में किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल आदर्शवादियों ने दिया है आज उनसे सभी सहमत है। परन्तु उसकी प्राप्ति के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था के स्थान पर प्रेम एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार को उत्तम माना जाता है। विद्यालयों में आदर्श पर्यावरण बनाने के सम्बन्ध से भी विद्वान एकमत है शिक्षा के अन्य समस्याओं के समाधान में भी आदर्शवाद बडा ही सहायक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

1. आदर्शवाद को परिभाषित कीजिए।

____

____

____

2. आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का सम्प्रत्यय कया है?

____

____

____

2.5 प्रयोजनवाद (Pragmatism)

प्रयोजनवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जो मनुष्य के केवल व्यावहारिक पक्ष पर विचार करती है। प्रयोजनवाद का शाब्दिक अर्थ 'उपयोगिता' अथवा अनुभव पर आधारित व्यवहारिकता है।

एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में इस विचारधारा का विकास 19वीं शताब्दी में अमेरिका में प्रारम्भ हुआ।

अमेरिका के चार्ल्स सैण्डर्स पियर्स तथा विलियम जेम्स इस विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते हैं।

प्रयोजनपरइ करे अर्थक्रियावाद, व्यावहारिकतावाद या फलवाद के नाम से भी जाना जाता है।

Pragmatism शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग चार्ल्स पियर्स ने किया था। विलियम जेम्स के अनुसार चार्ल्स पियर्स ही वह प्रथम व्यक्ति है जिसने Pragmatism शब्द का दर्शनशास्त्र में सर्वप्रथम प्रयोग किया ।

विलियम जेम्स और जान डीवी ने भिन्न–भिन्न व्यावहारिक क्षेत्रों में अर्थक्रियावाद का प्रयोग किया तथा शिलर ने अर्थक्रियावाद का एक तार्किक आधार प्रस्तुत किया।

यह दर्शन मनुष्य के व्यावहारिक पक्ष पर ही बल देता है और समस्त सृष्टि को क्रियाओं का परिणाम मानता है। इसलिए अंग्रेजी भाषा में इसे Pragmatism कहते हैं।

सत्य स्थायी नहीं है अपितु परिवर्तनशील है। अतीत का सत्य वर्तमान में असत्य हो सकता है और वर्तमान का सत्य भविष्य में असत्य हो सकता है। पियर्स के अनुसार कोई अवधारणा अन्तिम नहीं होती, उसका अर्थ उसके व्यावहारिक प्रभाव से निर्धारित किया जाता है। जेम्स ने मानव अनुभव के महत्व को स्पष्ट किया और मानव को समस्त वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी बताया। जेम्स के बाद अमेरिका के ही जान डीवी ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया डीवी ने व्यक्ति के इच्छा शक्ति को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया। उनके अनुसार मानव प्रगति का आधार सामाजिक बुद्धि ही होती है। डीवी के बाद अमेरिका में उनके शिष्य किलपैट्रिक ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया और इंग्लैण्ड में शिलर ने आगे बढ़ाया। इन सब में डीवी का योगदान सबसे अधिक है।

2.5.1 प्रयोजनवाद की दार्शनिक विचारधारा

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड के रचना के सम्बन्ध में विचार करने के स्थान पर मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर ही विचार करते हैं। ये इस ब्रह्माण्ड के बारे में इतना ही कहते हैं कि यह अनेक वस्तुओं और क्रियाओं से बनता है। ये वस्तुओं और क्रियाओ के झमेले में नहीं पड़ते। इस इन्द्रियाग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को नहीं मानते। ये आत्मा परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं मानते। इनके अनुसार मन का दूसरा नाम आत्मा है और मन एक पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व है। ये इस ब्रह्माण्ड के किसी अन्तिम सत्य की खोज नहीं करते। ये तो प्रत्यक्ष को ही सत्य मानते हैं।

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मानव जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं इनके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मइन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियों को

ये ज्ञान का आधार, मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक और क्रियाओं को ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम मानते हैं।

प्रयोजनवादी पूर्व निश्चित सत्य, आदर्श और मूल्यों में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए उनके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमे तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके।

2.5.2 प्रयोजनवाद की परिभाषा

प्रयोजनवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड को विभिन्न तत्वों और क्रियाओं का परिणाम मानती है और यह मानती है कि यह भौतिक संसार ही सत्य है और इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है। यह ईश्वर के विषय में विचार नहीं करती और आत्मा को पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करती है। और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है जिसे सामाजिक जीवन जीने अर्थात सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के पालन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

2.5.3 प्रयोजनवाद की विशेषताएं

1. प्रयोजनवाद एक मानवतावादी दर्शन है।
2. प्रयोजनवाद शास्वत मूल्यों में विश्वास नहीं करता और सत्य को मनुष्य द्वारा निर्मित मानता है।
3. मनुष्य क्रियाविधि में अपने स्वयं के मूल्यों का निर्माण करता है।
4. प्रयोजनवादी जगत को परिवर्तनशील मानते हैं।
5. समग्र ज्ञान अनुभवों में निहित हैं। अनुभव से परे समस्त जगत में कोई वास्तविकता नहीं है।
6. मनुष्य अनुभवों से ही सत्य की खोज करता है।
7. प्रयोजनवाद मूल्य की कसौटी के रूप में उसकी उपयोगिता को स्वीकार करता है।
8. 'सत्य' स्थान, काल व आदर्श के अनुसार बदलता रहता है।
9. सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पराओं का विरोध।

2.5.4 प्रयोजनवाद के मूल सिद्धान्त :

प्रयोजनवाद इस संसार और उसकी वस्तुओ एवं क्रियाओं के कारणों पर उतना विचार नहीं करमता जितना मानव जीवन में उनकी उपयोगिता पर विचार करता है। इसके मूल सिद्धान्त निम्न प्रकार है–

1. **यह संसार अनेक तत्वों एवं क्रियाओं का परिणाम है:** प्रयोजनवाद इस ब्रह्माण्ड के किसी आधारभूत तत्व की खोज और व्याख्या करने के झमेले में नही पड़ता। यह मानता है कि इस संसार की रचना अनेक तत्वों के बीच अनेक प्रकार की क्रियाओं के परिणाम स्वरूप हुई है। यह क्रिया सदैव होती रहती है इसलिए यह ब्रम्हाण्ड सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। इस प्रकार यह एक बहुतत्ववादी दर्शन है। जो क्रिया को निर्माण का आधार मानता है।

2. **यह भौतिक संसार ही सत्य है और इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है:** प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त में विश्वास करते है। इनके अनुसार वही वस्तु, क्रिया अथवा विचार सत्य हैं जिनकी मानव जीवन में व्यावहारिक उपयोगिता है। इस कसौटी पर कसने पर यह भौतिक संसार सत्य उतरता है और आध्यात्मिक संसार असत्य। हर समय और हर स्थिति में किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार की मानव दृष्टि से व्यावहरिक उपयोगिता नही होंती इसलिए प्रयोजनवादी किसी शाश्वत सत्य अथवा मूल्य में विश्वास नही करते।

3. **आत्मा एक पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व है और परमात्मा मनुष्य की कल्पना मात्र है:** इनका स्पष्टीकरण है कि सामाजिक पर्यावरण में यह आत्मा क्रियाशील होती है और इसकी क्रिया की दिशा सामाजिक पर्यावरण के अनुकुल होती हैं।

4. **मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है:** प्रयोजनवाद के अनुसार मनुष्य की पहली विशेषता है कि वह मनोशारीरिक प्राणी है। जिसके पास चिंतन करने और विचार करने की शक्ति है। सामाजिकता उसकी दूसरी बड़ी विशेषता है। तीसरी विशेषता–मनुष्य किसी भी बात को अपने अनुभव की कसोटी पर कसे विना सत्य नही मानता तभी तो नित्य नयी खोजें होती हैं। मानव की यह विशेषता ही उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनने का कारण हैं।

5. **मानव का विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है:** मनुष्य समाज की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से ही अपना विकास करता है।

6. **मानव जीवन का उददेश्य सुखपूर्वक जीना है :** प्रयोजनवादी मनुष्य जीवन के किसी अन्तिम उद्देष्य में विश्वास नहीं करते।

2.5.5 प्रयोजनवाद और शिक्षा

शिक्षा मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है जो सामाजिक पर्यावरण में चलती है। प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नही करते। यही कारण है कि शिक्षा के उद्देश्य, पाठयचर्या, शिक्षण विधियाँ आदि कुछ भी निश्चित नही करते, केवल उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत करते है।

शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओ का विकास है जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियंत्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करे।

शिक्षा के उद्देश्यः

प्रयोजनवादी पूर्व निश्चित आदर्श और मूल्यों में विश्वास नहीं करते उनका स्पष्टीकरण है कि **मनुष्य का प्राकृतिक एव सामाजिक पर्यावरण सदैव बदलता रहता हैं।** और इस बदले हुए पर्यावरण में मानव नित्य नये अनुभव करता है और नये–नये आदर्श तथा मूल्यों का निर्माण करता है इसलिए शिक्षा के उद्देश्य निश्चित नही किये जा सकते।

"शिक्षा का अपने में कोई उद्देश्य नही होता, उद्देश्य तो व्यक्तियों के होते है और व्यक्तियों के उद्देश्य में बड़ी भिन्नता होती है और जैसे–जैसे व्यक्ति का विकास होता जाता है उनके उद्देश्य भी बदलते जाते है।

डी.वी. के अनुसार बच्चो में ऐसी शक्तियो का विकास करें कि वे अपने पर्यावरण को समझ सकें और उनके द्वारा प्राप्त अनुभवों के आधार पर स्वंय आदर्शो का निर्माण करे। डी.वी. ने सामाजिक कुशलता के विकास पर बल दिया और उनके शिष्य किलपैट्रिक ने लोकतंत्र की शिक्षा पर।

उनके विचार से शिक्षा द्वारा बच्चो में निम्नलिखित योग्यताओं का विकास करना होना चाहिए।

1. बच्चों में अपने सामाजिक वातावरण को समझने, अनुभवों को प्राप्त करने और आदर्शो को निश्चित करने की क्षमता का विकास करना होना चाहिए।

2. **गतिशीलता का विकास** : प्रयोजनवादी शिक्षा के द्वारा बच्चों में बदलती हुई परिस्थितियों को समझने, नये–नये अनुभवों के आधार पर नये–नये सत्यों की खोज करने के लिए गतिशील रहने की आशा करते हैं। इसी से विकास हो सकता है।

3. **सामाजिक कुशलता का विकासः जान डीवी के अनुसार शिक्षा का सबसे पहला उद्देश्य सामाजिक कुशलता का विकास होना चाहिए।** सामाजिक व्यवहार, प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोग से जीवन व्यतीत करने और जीवन यापन की योग्यता का विकास करना चाहिए।

4. **लोकतंत्रीय जीवन की शिक्षाः** डीवी के शिष्य किलपैट्रिक के अनुसार हमारे विद्यालय लोकतंत्र के जिवित उदाहरण होने चाहिए। सामाजिक दृष्टि से डी.वी. जिसे सामाजिक कुशलता कहते हैं; राजनैतिक दृष्टि से वही लोकतन्त्रीय जीवन की शिक्षा है।

शिक्षा की पाठयचर्या

निश्चित उद्देश्यों के अभाव में पाठयचर्या को निश्चित करने का प्रश्न ही नही उठता। किस समय पाठयचर्या का निर्धारण किस प्रकार करना चाहिए इस सम्बन्ध में प्रयोजनवाद के विचार बड़े मूल्यवान हैं। उनके ये विचार आज पाठ्यचर्या निर्माण के सिद्धान्त बन गये हैं। ये सिद्धान्त है–

1. उपयोगिता का सिद्धान्त :

डीवी के अनुसार बच्चों को उन्ही विषयों एवं क्रियाओं का ज्ञान देना होना चाहिए जो उनके जीवन के लिए उपयोगी हो। बच्चों को अपनी आवश्यकतानुसार पाठ्य विषयो एवं क्रियाओं के चुनाव की स्वतंत्रता होनी चाहिए इस दृष्टि से पाठ्यचर्या में विभिन्न उत्पादन कार्यों एवं उद्योगों की शिक्षा का समावेश होना चाहिए।

2. रूचि का सिद्धान्त :

डीवी के अनुसार बालकों की प्रवृत्ति गतिशील होती है, उन्हे उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और रूचियों के आधार पर ही शिक्षा देनी चाहिए। डीवी ने बालको की चार स्वाभाविक रूचियों का वर्णन किया है–

1. बातचित करने की रूचि 2. अन्वेषण अथवा परीक्षण करने की रूचि 3. रचना करने की रूचि 4. कलात्मक अभिव्यक्ति करने की रूचि।

3. क्रिया का सिद्धान्तः

प्रयोजनवादी क्रिया को बहुत महत्व देते है। डीवी क्रिया को पाठ्यचर्या का आधार मानते हैं। साथ–साथ खेल–कूद, सामाजिक कार्य, उत्सव तथा साहित्यिक एव

सास्कृतिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

4. अनुभव का सिद्धान्तः

बालकों के शैक्षिक अनुभव रचनात्मक होते है। शैक्षिक अनुभवो के द्वारा ही बच्चे नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं। इसके लिए बच्चों को स्वानुभव का अवसर मिलना चाहिए।

5. एकीकरण का सिद्धान्तः

पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय विषयों एवं क्रियाओं को इस रूप में चुनना चाहिए कि उनमें एकीकरण हो और वे जीवन की वास्तविक क्रियाओं से विकसित हो सकें।

शिक्षण विधियाँ

प्रयोजनवादी जान डीवी ने शिक्षा के दो अंग माने है। 1. मनोवैज्ञानिक 2. सामाजिक। मनोवैज्ञानिक अंग से तात्पर्य सीखने वाले की जन्म–जात शक्ति, रूचि, रूझान और योग्यता के अनुसार शिक्षा। जान डीवी के अनुसार किसी भी बात को सीधे नही सिखाया जाय अपितु क्रिया द्वारा सिखाया जाय। उनके अनुसार सब विषयो को एक दूसरे से सम्बान्धित करके पढ़ाना ही शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है। इसी एकीकरण की विधि को वे उचित समझते हैं।

डीवी ने–प्रयोग विधि/समस्या समाधान विधिः को वैज्ञानिक विधि बताया है और इस विधि के पाँच पद है। 1. समस्या की गृष्ठभूमि 2. समस्या का विश्लेषण 3. परिकल्पनाओं का निर्माण 4. परिकल्पनाओं **का परीक्षण** और 5. मूल्यांकन।

किलपैट्रिक–प्रोजेक्ट विधि :

यह विधि भी पाँच पदों वाली है। 1. प्रोजेक्ट का चयन 2. लक्ष्य निर्धारण 3. योजना निर्माण 4. योजना का क्रियान्वयन 5. मूल्यांकन।

अनुशासन

प्रयोजनवादी दमनात्मक अनुशासन, प्रभावात्मक अनुशासन अथवा मुक्तात्मक अनुशासन किसी में भी विश्वास नहीं करते। ये बच्चों की स्वानुशासन में विश्वास करते हैं। किन्तु डीवी किसी भी बच्चे को इतनी स्वतंत्रता देने के पक्ष में नही है कि उसके कार्यो से दूसरों की स्वतंत्रता में वाधा पड़ सके और समाज का अहित हो, समाजिक पर्यावरण में समाज का ध्यान रखते हुए।

शिक्षक :

प्रयोजनवादी बच्चो को सूचनाए देने के पक्ष में नही है। ये चाहते है कि बच्चे स्वयं ज्ञान की खोज करें और ज्ञान की इस खोज में शिक्षक सक्रिय निरीक्षक और पथ प्रदर्शक का कार्य करें। जिससे छात्र सही निर्णय निकाल सकें। शिक्षक विद्यालयों में बच्चों के लिए स्वयं सामाजिक पर्यावरण बनें। बच्चों के साथ प्रेम एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

शिक्षार्थी :

ये शिक्षार्थी को उनकी रूचि, रुझान, योग्यता और आवश्यकतानुसार अपने विकास के स्वतंत्र अवसर प्रदान करते हैं।

विद्यालयः–

प्रयोजनवादी परम्परागत विद्यालय का विरोध करते हैं। इनकी दृष्टि से विद्यालय बच्चों के लिए जीवित प्रयोगशाला होने चाहिए। डीवी के अनुसार अच्छे विद्यालय वे है जहाँ नैतिक शिक्षा आदेशों के रूप में नहीं दी जाती अपितु सामाजिक क्रियाओं के आधार पर दी जाती है। उनके अपने शब्दों में –

"विद्यालय समाज का लघु रूप होता है।"

अतः उसे कृत्रिमता से दूर रखना चाहिए।

डीवी महोदय परिवार समुदाय और विद्यालय इनके आपसी सहयोग पर बहुत बल देते थे।

2.5.6 सारांश

निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि दार्शनिक चिन्तन धारा के रुप में प्रायेजनवाद एक अधूरा दर्शन है, यह मनुष्य के केवल सामाजिक पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित रखता है, उसके आध्यात्मिक पक्ष पर विचार नहीं करता। उसका यह विचार है कि मानव जीवन में कोई शाश्वत आदर्श और मूल्य नही हो सकते, मानव की युगों की तपस्या के परिणाम को चुनौती देने के अतिरिक्त और कुछ नही है। इसका यह विचार कि मनुष्य को सब कुछ अपने अनुभव की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करना चाहिए जागरुकता के नाम पर एक बौखलाहट ही है। यदि मनुष्य ने अपने पूर्वजों के अनुभवों से लाभ नही उठाया होता तो उसने इतना विकास ही न किया होता। परन्तु एक शिक्षा दर्शन के रुप में यह काफी सिद्ध हुआ है। इसने शिक्षा के उद्‌देश्यों को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार निश्चित करने की जो बात कही है वह आज सभी को स्वीकार हैं पाठ्‌यचर्या निर्माण के जो सिद्धान्त प्रयोजनवादियों ने विकसित किए हैं, वे भी सभी

को स्वीकार है। शिक्षण विधियो में सामाजिक क्रियाओं को महत्व देने की बात भी आज सभी मानते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में स्वानुशासन का विार भी लोकतंत्रीय समाज के अनुकूल है। विद्यालयों को मानव निर्माण की जीवित प्रयोगशालाओं के रूप में विकसित करने का इनाि विचार भी आज सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं। परन्तु शिक्षा में मनुष्य की संस्कृति और उसके आध्यात्मिक पक्ष को शिक्षा–दर्शन की आवश्यकता है जो मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक, तीनों पक्षों के विकास पर समान बल दें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

3. प्रयोजनवाद के मूल सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।

----

4. प्रयोजनवाद द्वारा प्रतिपादित पाठ्यचर्या के सिद्धान्तों में एकीकरण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

----

5. सही उत्तर का चयन कीजिए –

   प्रयोजनवादी के अनुसार अंतिम सत्य क्या है?

   (i) वस्तु, (ii) आत्मा (iii) परमात्मा (iv) प्रत्यक्ष

2.6 यथार्थवाद (Realism)

प्लेटो (427–347 ई.पू.) ने इस जगत को विचारो के जगत का प्रकटीकरण मात्र बताकर वस्तु के अस्तित्व को नकार दिया। प्लेटो के शिष्य अरस्तु (384–322) ने सर्वप्रथम अपने गुरू के मत के विरूद्ध पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की, वे आध ुनिक यथार्थवाद के जनक माने जाते हैं। (प्लेटो के बाद पाश्चात्य जगत में 15वीं शताब्दी तक जो भी दार्शनिक चिन्तन हुआ वह प्लेटो के दर्शन पर आधारित रहा,

यह बात दूसरी है कि कुछ परिवर्तन के साथ। 15वी शताब्दी में जब वैज्ञानिक खोजों ने वस्तु के वास्तविक रूप से परिचित कराया तो दार्शनिकों का ध्यान उस ओर जाना स्वाभाविक था। फिर इन दार्शनिक खोजों ने हमारे अनेक धार्मिक अन्धविश्वासों का भी पर्दाफास किया, परिणामतः हमारा दार्शनिक चिन्तन सूक्ष्म जगत से उतरकर स्थूल जगत पर आ गया। इससे बुद्धि और विवेक की प्रधानता हो जाने से मनुष्य का ध्यान वास्तविकता या यथार्थता की ओर केन्द्रित हुआ और एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में यथार्थवाद का विकास 15वी शताब्दी से ही माना जाता है। 18वी शताब्दी तक यह विचारधारा अपने चरम रूप में पँहच गयी और इसने शिक्षा को भी प्रभावित किया।

इस क्षेत्र में जिनके विचारों का विशेष प्रभाव पड़ा उनमें है– फ्रांसिस वेकन, जॉन मिल्टन, लॉक और कमेनियस। यद्यपि ये सभी विचारक ईश्वरवादी थे, ईश्वर में विश्वास करते थे और ईश्वर से भय खाते थे, प्राचीन साहित्य धर्म एवं दर्शन को आदर की दृष्टि से देखते थे, और उसे मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी मानते थे परन्तु साथ ही ये वस्तु के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करते थे। और उसके उचित प्रयोग द्वारा मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने पर बल देते थे।

पाश्चात्य दर्शन स्थूल को वास्तविक अथवा यथार्थ मानता है। पदार्थ या स्थूल को यथार्थ मानने के कारण ही दर्शन की इस सोच (विचारधारा) को यथार्थवाद कहा गया। यदि "Realism" का विच्छेद किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि यह शब्द 'Real' और 'ism' के योग से बना है। 'Real' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'Res' शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'वस्तु' है तथा 'ism' का अर्थ वाद है अतः वस्तुवाद या वस्तु के अस्तित्व के सम्बन्ध में विचारधारा। इस प्रकार यथार्थवाद वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार करता है और वस्तु/घटनाओं की वास्तविकता पर बल देता है।

स्वामी रामतीर्थ के अनुसार :–"यथार्थवाद का अर्थ एक विश्वास अथवा सिद्धान्त है, जो विश्व को वैसा ही देखता है, जैसा वह हमें प्रतीत होता है।"

2.6.1 यथार्थवाद की विशेषताएं :–

1. यथार्थवाद भौतिक जगत को यथार्थ मानता है और आत्मा एवं परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार यह वैज्ञानिक विचारधारा है।
2. यथार्थवाद में वस्तुजगत की नियमितता के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है इसलिए यथार्थवदियों का दृष्टिकोण यांत्रिक है।
3. यथार्थवादी किसी ज्ञान या अनुभव को तब तक स्वीकार नहीं करते है जब तक कि वे उसे निरीक्षण एवं परीक्षण की कसौती पर नही कस लेते।
4. यथार्थवादी ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का प्रवेशद्वार मानते है।

5. यथार्थवादी वस्तुनिष्ठता पर बल देते है।

6. आत्मा पदार्थ जन्य चेतन तत्व है।

2.6.2 यथार्थवाद की दार्शनिक विचार धारा

यथार्थवादी जगत की उत्पत्ति–भौतिक तत्वों से मानते हैं और मानते थे कि यह ब्रहमाण्ड–पदार्थ जन्य है और पदार्थ की अपने में स्वतंत्र सत्ता है। ये पदार्थ को ब्रम्हाण्ड का मूल तत्व और अन्तिम सत्य मानते है।

आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान धर्म पर आधारित है, केवल विश्वास पर आधारित है इसलिए यह निश्चयात्मक नही है। यह हमें सही कर्तव्यों का ज्ञान कराता है इसलिए जीवन के लिए उपयोगी है।

आत्मा को ये पदार्थ जन्य चेतन तत्व मानते है।

यथार्थवादी मनुष्य को एक बौद्धिक प्राणी मानते है परन्तु ये उसकी बुद्धि को भी शरीर का एक अंग मानते है। इनके अनुसार वैज्ञानिक शब्दावली मस्तित्क को ही सामान्य भाषा में बुद्धि कहा जाता है।

ज्ञानोन्द्रियों को ये ज्ञान प्राप्ति का साधन मानते हैं।

यथार्थवादी भौतिक संसार को सत्य मानते है इनके अनुसार अपने जीवन की रक्षा और सुखपूर्वक ज़ीना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। मनुष्य के जीवन के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनके उत्पादन पर यथार्थवादी सबसे अधिक बल देते हैं। उसके बाद उन वस्तुओं के उत्पादन पर बल देते है जिनके प्रयोग से मनुष्य को सुख की अनूभूति होती है। और तीसरे पायदान पर उन मूल्यों को स्थान देते है जिनके पालन से मनुष्य को समग्र रूप से सुख की प्राप्ति होती है। यथार्थवादियों के अनुसार मनुष्य को वे ही कार्य करने चाहिए जिनसे उसे सुख की अनुभूति हो।

उपुर्यक्त के आधार पर–निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता हैः–

"यथार्थवाद पाश्चात्य दर्शन की वह विचार धारा है जो इस ब्रहमाण्ड को पदार्थजन्य मानती है और यह मानती है कि पदार्थजन्य संसार ही वास्तविक है इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नही है। यह ईश्वर के धर्म सिद्ध स्वरूप को स्वीकार करती है और आत्मा को पदार्थजन्य चेतन तत्व मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है जिसे पदार्थो के वास्तविक ज्ञान और उसके समुचित प्रयोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

2.6.3 यथार्थवाद और शिक्षा :-

आदर्शवाद की भौति यथार्थवाद के भी अनेक रूप है। इनमें शिक्षा को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा गया है।

1. मानवतावादी यथार्थवाद
2. सामाजिकतावादी यथार्थवाद
3. ज्ञानेन्द्रिय यथार्थवाद

1. मानवतावादी यथार्थवाद :

मनुष्य की सुख–सुविधा के साधनों एवं उपायों पर विचार करता है। यह ज्ञान को ज्ञान के लिए न मानकर, ज्ञान को मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने के साधन के रूप में स्वीकार करता है। मानवतावादी यथार्थवादियों में हालैण्ड के इरैसमस, फ्रांस के रैबेले और ब्रिटेन के मिल्टन महोदय मुख्य है।

2. सामाजिकतावादी यथार्थवादी –

यह मानते हैं कि मनुष्य सुखपूर्वक तभी रह सकता है जब वह अपने समाज में समायोजन करे। लॉक की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी कि प्रत्येक मनुष्य अपने पुत्र के लिए सम्पत्ति के अतिरिक्त वस्तु जगत का वास्तविक ज्ञान और सामाजिक आचरण चाहता है क्योंकि इन सबसे ही वह सुख प्राप्त कर सकता है। ब्रिटेन के लार्ड माण्टेन और लॉक इस विचारधारा के पोशक है।

3. ज्ञानेन्द्रिय यथार्थवादी

ये ज्ञानेन्द्रियों को वस्तु जगत के ज्ञान का साधन मानते हैं। ब्रिटेन के रिचर्ड मूलकास्टर, बेकन, जर्मनी के रटके और चेकोस्लोवाकिया के कमेनियस मुख्य है।

इन विचारकों ने यथार्थवादी शिक्षा ढाँचा निश्चित करने में अपना योगदान दिया। इनके बाद बर्ट्रेण्ड रसेल और ह्वाइट हैड आदि विचारकों ने यथार्थवादी शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने में अपना योगदान दिया।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

यथार्थवादी शिक्षा को मानव विकास की प्रक्रिया मानते हैं। यथार्थवादियों नें 'ज्ञान ज्ञान के लिए' और 'ज्ञान मुक्ति के लिए' इन सिद्धान्तों का विरोध किया और ज्ञान जीवन के लिए' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

अरस्तु के अनुसार –'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।''

कमेनियस के अनुसार– 'सामाजिक एवं वैयक्तिक शक्तियों को पुनर्जिवित करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है।''

अंग्रेजी कवि 'मिल्टन' ने उदार शिक्षा के स्वरूप को और विस्तृत किया और कहा कि भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है अपितु इस ज्ञान का जीवन में उपयोग करना भी आवश्यक है।

जान मिल्ट के शब्दो में –"मै पूर्ण तथा उदार शिक्षा उसको कहता हूँ जो व्यक्ति को शांति तथा युद्ध दोनो समय में व्यक्तिगत और सार्वजनिक कार्यों को न्यायोचित ढंग से दक्षता और उदारता के साथ करना सिखाती हैं।"

शिक्षा के उद्देश्य : जीवन को सुखमय बनाना

यथार्थवादी जीवन के किसी अंतिम उद्देश्य में विश्वास नही करते। वे मनुष्य को इस संसार का एक पदार्थ मानते हैं और उनके जीवन को एक प्रक्रिया। उनके अनुसार 'शिक्षा द्वारा हमें मनुष्य को इस योग्य बनाना चाहिए कि अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में समायोजन कर सके और सुखपूर्वक जी सके। इसके लिए वे शारीरिक विकास, इन्द्रियों के प्रशिक्षण, मानसिक विकास सामाजिक विकास और व्यावसायिक शिक्षा पर बल देते हैं। यही उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिए।

शारीरिक विकास और इन्द्रिय प्रशिक्षण

कमेनियस का स्पष्टीकरण है कि मनुष्य के पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कार्मेन्द्रियाँ: हाथ, पैर, कण्ठ, गुदा एवं उपस्थ हैं। ज्ञानेन्द्रियों से वह ज्ञान प्राप्त करता है और कर्मेन्द्रियों से वह कार्य का सम्पादन करता है। उनका कहना है कि जब तक मनुष्य की इन्द्रियों का विकास कर उन्हें अपने कार्यो में प्रशिक्षित नहीं किया जाता तब तक मनुष्य न तो कोई कार्य कर सकता है और न ही कोई ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसलिए शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम मनुष्य की इन्द्रियों का विकास और फिर उनका प्रशिक्षण होना चाहिए।

2. मानसिक शक्तियों का विकास :

यथार्थवादी शक्ति मनोविज्ञान में विश्वास करते हैं। इसलिए ये शिक्षा द्वारा बच्चों की मानसिक शक्तियों, स्मरण, विवेक और निर्णय आदि का विकास करने पर बल देते हैं।

3. प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान :

बालक का सम्बन्ध प्रकृति और मानव समाज, इन दोनों से होता है इसलिए शिक्षा एक उद्देश्य बच्चों को प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण का पूर्ण एवं स्पष्ट ज्ञान कराना होना चाहिए।

4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास –

शिक्षा द्वारा बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण (अवलोकन, विश्लेषण, सामान्यीकरण, नियमीकरण और प्रयोग) का विकास किया जाय।

5. व्यावसायिक उन्नति–

यह विचारधारा मनुष्य को सुखमय बनाने की बात सोचती है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए विभिन्न उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन की बड़ी आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य बच्चों को कृषि, उद्योग एवं व्यापार में प्रशिक्षित होना चाहिए।

शिक्षा की पाठ्यचर्या :

यथार्थवादियों का मत है कि पाठ्यचर्या में वे ही विषय रखे जाये जिनका इस जीवन से सीधा सम्बन्ध है और जो मनुष्य के लिए उपयोगी है। चूंकि प्रायः सभी विषयों की कुछ न कुछ उपयोगिता है इसलिए यथार्थवादी पाठ्यचर्या में सभी विषयों को स्थान देते हैं। सबसे अधिक बल ये व्यावसायिक शिक्षा पर देते हैं। व्यावसायिक विषयों एवं विज्ञान को प्रमुख स्थान, इतिहास, भूगोल, कानून को गौण और साहित्य, कला, संगीत आदि को गौणतम् स्थान दिया गया है।

'बेकन' पाठ्यचर्या में प्रमुख स्थान विज्ञान को देते थे और उसके बाद साहित्य व दर्शन को।

'कमेनियस' : चूंकि धार्मिक व्यक्ति थे चर्च में पादरी थे इसलिए वे धर्मशिक्षा को भी स्थान देते थे। लोगो को सदाचारी और सेवक बनाने पर बल देते थे।

कमेनियस का मत है कि बच्चों को सभी विषयों का केवल सामान्य ज्ञान दिया जाय और विशिष्ट ज्ञान उनकी रूचि के अनुसार दिया जाय। यथार्थवादी बच्चों को मनोवैज्ञानिक (अपनी, रूचि, रूझान, योग्यता और आवश्यकतानुसार) विषयों के चयन की छूट देते हैं परन्तु मात्र, भाषा और किसी व्यवसाय की शिक्षा को ये अनिवार्य मानते हैं।

शिक्षण विधियाँ

यथार्थवादी ज्ञानेन्दियों को ज्ञान का द्वार मानते है इसलिए बच्चों की ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर बल देते हैं।

कमेनियस – ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर बल दिया।

मिल्टन – भ्रमण एवं यात्रा को महत्वपूर्ण बताया।

लॉक– देशाटन एवं अनुभव द्वारा सीखने की बात कही। ये बच्चों के मनोवैज्ञानिक शिक्षा से परिचित थे। यथार्थवादियों ने वस्तुओं को शिक्षण साधन के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इनका स्पष्टीकरण है कि पदार्थ वास्तविक होते हैं और उनके प्रतीक शब्द और पदार्थ को संयुक्त करने से ही अर्थ की उत्पत्ति होती है। इसलिए पहले पदार्थ दिखाना चाहिए और फिर उसके लिए शब्द देना चाहिए। परिणामस्वरूप शिक्षा में दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग होने लगा, भ्रमण को स्थान मिला और सहपाठ्यचारी क्रियाओं का महत्व बढ़ा।

– यथार्थवादी, करके सीखने एवं स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल देते थे। इससे शिक्षा के क्षेत्र में कार्यशाला और प्रयोगशाला विधियों का महत्व बढ़ा।

– यथार्थवादी सम्पूर्ण ज्ञान को एक ईकाई के रूप में देखते हैं इसलिए ये सभी विषयों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने पर बल देते हैं। इस विचार ने सहसम्बन्ध विधि को बढ़ावा दिया।

यथार्थवादियों ने हमें शिक्षण के अनेक सूत्र दिये हैं।

रटके द्वारा विकसित शिक्षण सूत्रः–

1. मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा।
2. शब्द ज्ञान से पहले वस्तु ज्ञान दिया जाय।
3. एक तथ्य स्पष्ट करने के बाद दूसरा तथ्य स्पष्ट किया जाय।
4. आवृत्ति द्वारा ज्ञान अथवा क्रिया को सुदृढ़ किया जाय।

कमेनियस द्वारा विकसित शिक्षण सूत्र–

1. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान दिया जाय।
2. शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से
3. ज्ञान को रटाया न जाय अपितु अनुभव के आधार पर बताये
4. मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ा जाय।
5. जो कुछ पढ़ाना है उसका व्यावहारिक महत्व स्पष्ट हो।
6. बालको के अभ्यास का अवसर दिया जाय।

यथार्थवादियों ने रटने के स्थान पर करके सीखने एवं स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया।

अनुशासन

यथार्थवादी, विद्यालय में अनुशासन की आवश्यकता समझते हैं। अनुशासन से तात्पर्य वस्तुनिष्ठता के प्रति समायोजन से है। इनके अनुसार वह छात्र अनुशासित है जो विद्यालय के नियमों का पालन करता है और कठिनाइयों से भागकर पलायन नही करता। अपितु कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता है।

बाहर से किसी प्रकार के दण्ड आदि के भय द्वारा अनुशासन स्थापित करने का ये विरोध करते हैं। ये बच्चों को भौतिक पर्यावरण देना चाहते हैं

शिक्षक–

यथार्थवादी शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक के महत्व को तो स्वीकार करते है परन्तु आदर्शवादियों की भाँति उसे मुख्य स्थान नहीं देते। यथार्थवादी शिक्षकों से आशा करते हैं कि वे बच्चों के सामने वस्तुओं एवं क्रियाओं को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करें और उन्हें निरीक्षण एवं अनुभव करने तथा निर्णय लेने के अवसर प्रदान करें। शिक्षक को मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से पढ़ाने पर बल दिया। इसके लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बल देते हैं।

शिक्षार्थी

यथार्थवादी विचारक **लॉक** बच्चे को जन्म से ही कोरी स्लेट मानते हैं। उनका विचार था कि बच्चों को जैसा पर्यावरण दिया जायेगा वे वैसे ही बनेंगे।

कमेनियस

ने इस बात पर बल दिया कि बालकों के साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए और उनके शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं एवं रूचियों के अनुकूल उनसे कार्य कराये जाने चाहिए।

इनकी दृष्टि से शिक्षार्थी ही शिक्षा की प्रक्रिया का केन्द्र होना चाहिए।

विद्यालय–

यथार्थवादी विद्यालयों को मनुष्य के निर्माण की कार्यशालाओं के रूप में स्वीकार करते हैं। कुछ यथार्थवादी व्यक्ति शिक्षण पर बल देते हैं, उनकी दृष्टि से एक बच्चे पर एक शिक्षक होना चाहिए। किन्तु अब तो यथार्थवादियों के दूसरे वर्ग की बात मानी जाती है जो कक्षा शिक्षण पर बल देते हैं। कक्षा शिक्षण की आवश्यकता विद्यालयों के महत्व को और बढ़ा देती है।

यथार्थवादी किसी एक प्रकार के विद्यालय का समर्थन नहीं करते। इनका तर्क है कि बच्चों की आवश्यकताओं में बड़ी भिन्नता होती है इसलिए उनके लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के विद्यालय होने चाहिए।

यथार्थवादी विद्यालयों को कृत्रिमता से दूर रखना चाहते हैं और उनमें वास्तविक पर्यावरण रखने पर जोर देते हैं।

इनके अनुसार कामवासना मनुष्य की वास्तविकता है (मूल प्रवृत्ति) अतः उसके आधार पर लड़के–लड़कियों को अलग–अलग पढ़ाना ठीक नहीं है। ये तो सह शिक्षा के समर्थक थे। ये विद्यालयों से यौन शिक्षा के उत्तरदायित्व को वहन करने की आशा करते हैं।

2.6.4. सारांश

निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि यथार्थवादियों ने हमें अन्धविश्वासों और कूपमंडूकता की दुनिया से निकालकर वास्तविक दुनिया में प्रवेश कराया है। आज संसार के सभी देशों की शिक्षा पर यथार्थवाद की छाप है। आज शिक्षा द्वारा मनुष्य को इसी जीवन के लिए तैयार किया जाता है। परन्तु आध्यात्मिक सत्रू को केवल विश्वास का विषय बनाने के कारण यथार्थवाद हमें चिर आनन्द की प्राप्ति कराने से असफल रहा है। हमें इस जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु यथार्थवाद पर और आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति के लिए आदर्शवाद पर निर्भर रहना होगा। वास्तवि शिक्षा तो वही होगी जो मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों का विकास करेगी। शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान अब इस ओर जाना चाहिए अन्यथा संसार को नष्ट होने से नहीं बचाया जा सकेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

6. यथार्थवाद के विकास में किन दार्शनिकों का विशेष योगदान रहा है?

----

7. यथार्थवादी शिक्षण के क्षेत्र में दृश्य श्रव्य सामग्री के प्रयोग पर बल क्यों देते हैं?

2.7 अस्तित्ववाद (Existentialism)

पाश्चात्य दर्शन की पद्धतियों के विरोध में अस्तित्ववाद या सत्तावाद का विकास हुआ। इस वाद के अन्तर्गत परम्परागत् दार्शनिक विचारधाराओं की विरोधी विचारधाराएँ पाई जाती है। इसके अनुसार वैयक्तिकता ही सर्वोपरि हैं। यह व्यक्ति के वैयक्तिक स्वरूप को मनुष्य, राष्ट्र, समाज और विश्व के अस्तित्व से भी अधिक महत्वपूर्ण मानता है। जो विचारधाराएं व्यक्ति को गौण मानकर समाज या समूह के हित में उसका शोषण करती हैं, उन्हें अस्तित्ववाद बिल्कुल स्वीकार नहीं करता। यह व्यक्ति–शोषण की प्रवृत्ति चाहे साम्यवाद में हो, समाजवाद में हो, फासिस्टवाद में हो या किसी भी वर्ग में हो, का डटकर विरोध करता है। यद्यपि वैयक्तिकता के साथ–साथ समाज की भी भारी आवश्यकता है, जिसे अस्तित्ववाद भली प्रकार स्वीकार करता है, परन्तु यह व्यक्ति को समाज से ऊपर स्थान देता है और व्येक्तिकता के विकास के लिए समाज को एक साधनमात्र मानता है। अस्तित्ववाद आधुनिक औद्योगिक और प्राविधिक भावनाओं का विरोध करता है।

अस्तित्ववाद या सतावाद को बीसवीं शताब्दी में अधिक मान्यता और लोकप्रियता मिली। दोनों विश्वयुद्धों के बाद जैसे मार्क्सवाद पनपा वैसे ही अस्तित्ववाद भी लोकप्रिय हुआ। फ्रांस के उपन्यासकार जीन पॉल सार्त्र के उपन्यासों में अस्तित्ववाद की मनोवैज्ञानिक झलक मिलती है। वास्तव में अस्तित्ववाद की दार्शनिक विचारधारा सन 1813 से 1855 ई. तक डेनमार्क के लेखक सॉरेन कीर्कगार्द की रचनाओं से विकसित हुई। कीर्कगार्द को हम अस्तित्ववाद का जन्मदाता मान सकते हैं।

2.7.1 अस्तित्व या सत्ता का अर्थ

अस्तित्ववाद के अनुसार अस्तित्व का अर्थ केवल व्यक्ति का जीना मात्र नहीं है वरन् उसका अर्थ है पूर्ण, शक्तिशाली, आत्मचेतना युक्त, आत्मसम्मान युक्त, उत्तरदायी और प्रगतिशील जीवन बनाए रखना। कुछ अर्थ इस प्रकार है–

i. **आत्मनिष्ठ अनुभूति पर बल**– व्यक्ति को आत्मनिष्ठ अनुभूति होते रहे और वह आत्म–सचेत होकर आत्म–सम्मान बनाए रखें। यही अस्तित्ववादी दृष्टिकोण है।

ii. **स्वतंत्रता और वैयक्तिक उत्तरदयित्व पर बल** – अस्तित्ववाद के अनुसार वैयक्तिक रुचियां एवं वैयक्तिक निर्णय का बहुत महत्व होता है। व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, जिससे वह वैयक्तिक रूचियों का विकास कर सकें, आत्मानुभूति कर सके और वैयक्तिक निर्णय ले सके।

iii. मानव–दुर्बलता एवं असुरक्षा की ओर ध्यान अस्तित्ववाद विश्व समाज का ध्यान व्यक्ति की मानव–दुर्बलता और असुरक्षा की ओर खींचना चाहता है। आज के वैज्ञानिक जीवन में व्यक्ति चिन्ताओं, निराशाओं, तनाओं, भय, अपराध–भावना से त्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा हैं। उसकी वैयक्तिकता निरंतर कुण्ठित होती जा रही है। इसलिए व्यक्ति की वैयक्तिकता की सुरक्षा और अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यक है कि उसे चिन्ता, निराशा, तनाव और भय से मुक्त–स्वतन्त्र वातावरण मिले।

2.7.2 अस्तित्ववाद और शिक्षा :

अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा पर निम्नलिखित प्रभाव देखा जा सकता है–

1. अस्तित्ववादी, व्यक्ति का वैयक्तिक और पूर्ण विकास चाहता है। वह व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास चाहता है। उसे एकांगी विकास नहीं चाहिए।

2. अस्तित्ववादी, वस्तुनिष्ठ ज्ञान देने वाले विषयों जैसे विज्ञान,गणित आदि को अधिक महत्व नहीं देता। परन्तु उन्हें निरर्थक नहीं मानता। कार्ल जैस्पर्स जैसे दार्शनिक वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आत्मनिष्ठ ज्ञान का आधार बनाना चाहते हैं। उनके अनुसार 'स्व' या 'सत्व' की अनुभूति वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आत्मनिष्ठ ज्ञान में बदलकर हो सकती है।

3. अस्तित्ववादी दार्शनिक वस्तुजगत में रहकर ही स्व की अनुभूति कर सकता है। वह व्यक्ति के वातावरण को महंत्व देता हैं। इसी वातावरण में रहकर व्यक्ति को 'स्व' को समझना है, उसे पूर्णता देनी है। अतः शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति के वातावरण पर पूरा–पूरा ध्यान देना चाहिए।

4. अस्तित्ववादी, वस्तुनिष्ठता के स्थान पर आत्मनिष्ठता को प्रधान मानते हैं। अतः शिक्षा–व्यवस्था इस प्रकार की हो कि व्यक्ति वस्तुनिष्ठ से आत्मनिष्ठ बन सके, बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बन सके। तभी वह स्व को पहचानेगा, आत्मानुभूति करेगा।

5. अस्तित्ववाद कोई तत्व मीमांसा नहीं है जो वस्तु जगत की सत्यता, शास्वतता और यथार्थता को व्यक्त करे। यह तो स्व की अनुभूति कराने वाली विचारधारा हैं यह वस्तुनिष्ठता को आत्मनिष्ठता में बदलने वाली विचारधारा है। यह वैयक्तिकतता को प्रधानता देकर उसका सम्पूर्ण विकास चाहती है। वैयक्तिकता का कोई स्थानापन्न नहीं हो सकता।

अस्तित्ववाद के अनुसार हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति पूर्ण वैयक्तिक विकास पाए और आत्मानुभूति कर सके। आत्म–बोध होने पर भी व्यक्ति सम्पर्क होगा।

6. अस्तित्ववादी, उस वैज्ञानिक प्राविधिक, प्रौद्योगिक विचारधारा का विरोध करता है जिससे स्वानुभूति होने में बाधा पैदा होती है। जिससे वैयक्तिकता का दमन होता है, अस्तित्ववादी ऐसा वातावरण नहीं चाहता। आज इतनी वस्तुनिष्ठता आ गई है कि आत्मनिष्ठता दबकर रह गई है। व्यक्ति परिस्थिति को दूसरों के सन्दर्भ में तो जानना चाहता है, परन्तु अपने सन्दर्भ में नहीं जानना चाहता। यह मानव की अवनति का मूल कारण है। आज व्यक्ति केवल भौतिक जगत के प्रति जिज्ञासु बनता जा रहा है उसे अन्तर्जगत (आध्यात्मिक जगत) की परवाह नहीं रही है।

व्यक्ति भौतिक सुखों की होड़ में चेतन और अचेतन मन से 'स्व' के अस्तित्व को भुलाता जा रहा है। आत्मा अशान्त और क्षुब्ध है, उसे शान्ति चाहिए। व्यक्ति सर्वाधिकार चाहता है। इस सर्वाधिकारवाद ने ऐसी अनेक अनैतिक प्रणालियां दी हैं जो व्यक्ति को मानव से दानव बना रही हैं। पुरानी मान्यताएं, नैतिकताएं और मानवता नष्ट होती जा रही है।

अस्तित्ववादी के अनुसार हमारी शिक्षा–व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि व्यक्ति बाह्य जगत के वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आत्मनिष्ठ ज्ञान में बदलकर आत्मानुभूति कर सके। वह 'स्व' को जानकर उसके विकास के लिए प्रयत्नशील हो सके। स्व को पूर्णता देकर वह परमसत्व (ईश्वर) से साक्षात्कार कर सके, अविद्या, भ्रम, कष्ट आदि की मुक्ति के लिए कल्याणकारी भाव दे सके। व्यक्ति अपने आत्म या स्व से जुड़ा रहे वह स्व को पहचानकर अपनी शक्तियों का बोध प्राप्त कर सके और 'स्व' के विकास के लिए उपयुक्त मार्ग चुन सके।

इस प्रकार अस्तित्ववाद व्यक्ति को ऐसी शिक्षा देना चाहता है कि व्यक्ति अपने वातावरण से वस्तुनिष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके उसे अन्तर्मुखी बनाकर आत्मनिष्ठ ज्ञान में बदल सके। इसी के सहारे वह अपने 'स्व' को पहचाने, आत्मानुभूति करके अपनी शक्तियों को 'स्व' के विकास की दिशा में लगाए।

अस्तित्ववाद एवं शिक्षक

शिक्षक, समूची शिक्षण प्रक्रिया का प्रमुख स्तम्भ है। अस्तित्ववादी शिक्षक को प्रमुख स्थान देते हैं, क्योंकि शिक्षक ही बालक (शिक्षार्थी) को 'स्व' से सम्पर्क स्थापित करने में सहायता देता है। शिक्षक सृजनकर्त्ता और मार्गप्रदर्शक है। ऐसी स्थिति में शिक्षक को बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी होना चाहिए जो वस्तुनिष्ठ ज्ञान को आत्मनिष्ठ ज्ञान में बदलकर बालकों को स्व की और ले जा सके और सत्य का बोध कराकर आत्मानुभूति करा सके।

अस्तित्ववाद एवं शिक्षार्थी (बालक)

अस्तित्ववाद के अनुसार बालक को स्वानुभूति के लिए पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए। बालक स्वतन्त्र रह कर ही 'स्व–भाव' को समझें। बालक, शिक्षक के मार्ग निर्देशन में अन्तर्मुखी बनकर आत्म बोध करें, ऐसा वातावरण उसे मिलना चाहिए। परन्तु यहां स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि वह किसी अनुशासन को स्वीकार ही न करे और स्वच्छन्द, स्वेच्छाचारी और अनुन्तरदायी बन जाए।

शिक्षक बालक की स्व–शक्तियों के अनुकूल शिक्षा देने की व्यवस्था करे अर्थात् शिक्षा बालक केन्द्रित हो। बालक की वैयक्तिकता 'स्व' के विकास के साथ–साथ पूर्णता प्राप्त करे, यही शिक्षा एवं शिक्षण का प्रयोजन होना चाहिए।

अस्तित्ववाद और पाठ्यक्रम

अस्तित्ववादी ऐसी शिक्षा चाहते हैं कि बालक बाह्य जात के सम्पर्क में रहते हुए जो वस्तुनिष्ठ ज्ञान अर्जित करे उसे आत्मनिष्ठ ज्ञान में बदल सकें। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देने वाले विषयों को समाविष्ट किया जाए। बालक को मानवीय गुण और उदारता देने के लिए मानव शास्त्र के विषय पढ़ाए जाएं और बालक की रुचि के अनुकूल अध्यवसाय भी सिखाया जाए।

अस्तित्ववाद के अनुसार धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा

अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार धर्म और अस्तित्व दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। दोनों मानव के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं। व्यक्ति सदैव अपूर्ण और सीमित होता है। उसे पूर्णता और असीमित वैयक्तिकता चाहिए। 'स्व' की अनुभूति करके, स्व का विकास करके और वैयक्तिकता में पूर्णता लाने के लिए नैतिक एवं धार्मिक वातावरण की आवश्यकता होती है।

स्कूलों और शिक्षा संस्थाओं में स्वानुभूति, स्व–भाव के विकास और अन्तर्बोध के लिए धार्मिक और नैतिक वातावरण बनाया जाए। शिक्षा व्यक्ति को उसकी सत्ता या अस्तित्व का बोध कराए। बालक को अपने 'स्व' का अध्ययन करने, उसको पहचानने और उसका विकास करने में पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। शिक्षा बालक की बुद्धि (ज्ञान), हृदय (भाव) तथा हाथों (कर्म) को 'स्व' की अनुभूति की ओर मोड़े। बालक में 'स्व' का भाव जागृत हो।

अस्तित्ववादी, पूर्ण मानवता की शिक्षा चाहता है। अपूर्ण सत्ता या अस्तित्व वाले व्यक्ति की 'स्व' की पूर्ण सत्ता मिल जाए और वह विश्व में व्याप्त अनन्त सत्ता का

बोध प्राप्त कर सके, यही हमारी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा इस दिशा में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

2.7.3 सारांश

औद्योगीकरण और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के विरोध में, 'स्व' और वैयक्तिकता की रक्षा के लिए अस्तित्वादी दर्शन का सूत्रपात। व्यकित के शोषण का विरोध, भौतिक सूखों की होड़ के कारण वैयक्तिकता के दमन का विरोध, 20वीं सदी में अस्तित्ववाद को प्रोत्साहन। डेनमार्क के कीर्कगार्द, कार्ल जैस्मर्स, मार्टेन हिडेगर आदि इस वाद के प्रवर्तक।

अस्तित्ववाद की प्रधानता के आधार–स्व ज्ञान, स्वानुभूति, आत्मनिष्ठता व स्व–विकास।

अस्तितवाद का अर्थ–स्व का ज्ञान, स्व की रक्षा और विकास पर बल वैयक्तिकता की पूर्णता, आत्मनिष्ठ अनुभूति पर बल, स्वतंत्रता और वैयक्तिक उत्तरदायित्व पर बल। मानव दुर्बलता एवं असुरक्षा की ओर ध्यान।

बाह्य वातावरण के बल पर ही आत्मानुभूति। रुचि और स्वभाव के अनुसार व्यक्ति का वातावरण से सम्बन्ध। वस्तु जगत स्व को सचेत करने वाला। प्रकृति का कोई इतिहास नहीं, मानव का इतिहास।

दर्शन के मर्मज्ञों की दृष्टि से अस्तित्वाद एक दर्शन नहीं अपितु दार्शनिक प्रवृत्ति हें इसे संगठित दर्शन की अपेक्षा दर्शन की ओर बढ़ता हुआ एक कदम कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। इसमें अन्तर्निहित तथ्यों के प्रवाह इतने जटिल हैं कि इनके आधार पर सहज शैक्षिक परिस्थितियों का आयोजन असम्भव तो नहीं किन्तु दुष्कर अवश्य है।

अस्तित्ववाद का जो सबसे सबल पक्ष है, वही सबसे दुर्बल पक्ष भी है। मनुष्य की स्वतंत्रता का उद्घोष अस्तित्ववाद की सबसे बड़ी देन है तो दूसरी ओर समाज निरपेक्ष निर्बाध वैयक्तिक स्वतंत्रता आज के सुगठित तथा अत्यन्त जटिल सामाजिक जीवन में न केवल असम्भव आदर्श है, अपितु सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय भी।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

8. अस्तित्ववाद के प्रमुख आधार क्या हैं?

____

____

____

9. अस्तित्ववादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा की क्या व्यवस्था होनी चाहिए।

---

10. सही उत्तर का चयन कीजिए –

अस्तित्ववाद का जन्मदाता किसे मानते है?

i) सारेन कीर्कगार्द ii) जीन पाल सार्त्र

iii) मार्टिन हिडेगर iv) कार्ल जैम्पर्स

2.8 मानवतावाद

मानव के किसी भी प्रकार के चिन्तन का मुख्य केन्द्र स्वयं मानव ही होता है और सभी चिन्तन मानव के विकास एवं समृद्धि के साधनों की खोज की ओर प्रवृत्त होते है ओर इस प्रकार सभी प्रकार के चिन्तन अपनी मूल प्रवृत्ति में मानवतावादी है। परन्तु आज जब हम मानवतावादी चिन्तन की बात करते है तो हमारा तात्पर्य आधुनिक युग की एक विशेष दार्शनिक चिन्तन धारा से होता है जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानती है और मानव मात्र की सुख–शान्ति के मार्ग की खोज की ओर प्रवृत्त है।

2.8.1 मानवतावाद की परिभाषा :

मैसलों के अनुसार–"मानवतावाद शब्द का प्रयोग लेखको ने भिन्न–भिन्न रूप में किया है, इनमें से एक अर्थ है कि मानव ही मानव चिन्तन का आधार है और ईश्वर जैसी कोई शक्ति न ही है और नही कोई अतिमानवीय वास्ताविकता है जिससे इसे जोड़ा जा सके।"

ब्रुवेकर के अनुसार– "मानवतावाद मानव स्वभाव तथा मानवीय दृष्टिकोण पर बल देता है।"

मानवतावाद के अनुसार मानव ही अपने भाग्य का निर्माता है। प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक *डा0 राधाकृष्णन* के अनुसार–'मानव ही अपने भविष्य का रचयिता है।' *एच. डी.गुड* के अनुसार– "शिक्षा में मानवतावाद मानव की महान उपलब्धियों तथा विचारो का अध्ययन हैं।"

उपर्युक्त विवरण से सपष्ट है कि मानवतावाद एक ऐसी विचारधारा हे जिसमें व्यक्ति की गरिमा, मूल्य स्थिति, स्वतंत्रता, संकल्प आदि को प्रमुखता प्रदान की जाती है। शैक्षिक प्रक्रिया मानव की प्रकृति के अनुसार निश्चित प्रदान की जाती है। जनतांत्रिक सिद्धान्तो के अनुरूप मानव विकास की दिशा बनती है तथा किसी प्रक्रिया अथवा तंत्र की सफलता इस रूप में देखी जाती है कि उसमें मानवहित का कितना ध्यान रखा गया है।

मानवतावाद के क्षेत्र में मनुष्य तथा उसका हित सर्वोच्च स्थान रखता है। मानवतावाद की रूचि तथा चिन्तन का एक मात्र केन्द्र मनुष्य एवं उसकी नियति है। मानवतावाद को नव–मानववाद, विकासात्मक प्रकृतिवाद, वैज्ञानिक मानववाद तथा इन्द्रियानुभववाद के रूप में भी जाना जाता है।

2.8.2 मानवतावाद के मूल सिद्धान्त

मानवतावाद की तत्वमीमांसा ज्ञान मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमासा के आधार पर मानवतावाद के मूल सिद्धान्त निम्नलिखित है :

1. इस संसार की कोई नियामक सत्ता नही है।
2. यह भौतिक जगत सत्य है, इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक जगत नहीं है।
3. ईश्वर का कोई अस्तित्व नही हैं।
4. मनुष्य सृष्टि के विकास की चरम सीमा है
5. मनुष्य का विकास उसके स्वयं के ऊपर निर्भर करता है।
6. मनुष्य जीवन का उद्‌देश्य सुखपूर्वक जीना है।
7. सुखपूर्वक जीने के लिए भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति आवश्यक है।
8. किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानवीय मूल्यों का पालन आवश्यक हैं।
9. राज्य का मुख्य कार्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना है।

2.8.3 मानवतावाद और शिक्षा

मानवतावादी मानव मात्र के उत्थान में विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि से यह तभी सम्भव है जब सभी मनुष्य एक दूसरे के लिए जीएँ। इसके लिए वे यह मानें कि संसार में जो कुछ है वह सबके लिए है और इस सबके लिए, मानवतावादी, शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। इन्होने मनुष्य की शिक्षा की पूरी रुपरेखा तैयार की है। यहाँ इसका संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है:

शिक्षा का सम्प्रत्यय:—

मानवतावादी केवल स्कूली शिक्षा को शिक्षा नही मानते अपितु बच्चे परिवार, समाज और विद्यालय आदि किसी भी स्थान पर और किसी भी समय जो कुछ भी अनुभव प्राप्त करते हैं उसे शिक्षा मानते हैं। इनकी दृष्टि से शिक्षा एक सृजनात्मक प्रक्रिया है जो मनुष्य के वर्तमान के साथ—साथ उसकी भविष्य को भी सुन्दर और प्रगतिशील बनाती है।

शिक्षा के उद्देश्य :—

मानवतावादियों के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को एक अच्छा मनुष्य बनाना होना चाहिए, उसे सृजनात्मक एवं प्रगतिशील मनुष्य बनाना होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब वह शारीरिक दष्टि से स्वस्थ हो, वौद्धिक दृष्टि से उन्नत हो और उसमें मानवीय मूल्यों का विकास हो। ये मानवमात्र की सुख समृद्धि मे विश्वास करते हैं और यह तभी सम्भव है जब मनुष्य वस्तुओ के उत्पादन एवं विवरण में निपुण हो। इन सब उद्देश्यों को हम निम्नलिखित रुप में क्रमबद्ध कर सकते हैं—शारीरिक एवं वौद्धिक विकास

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास

उच्च मानवीय मूल्यो का विकास

उत्पादन क्षमता का विकास

सृजनात्यमकता का विकास

शिक्षा की पाठयचर्या :—

मानवतावादी अच्छे मनुष्य के निर्माण की बात करते है। इनकी दृष्टि से अच्छा मनुष्य वह है जो सबकी अच्छाई मे विश्वास करता है और तद्नुकूल आचरण करता है। इसी आधार पर इन्होने शिक्षा के उद्देश्य निश्चित किए है ओर इसी आधार पर यथा उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षा की पाठयचर्या का निर्माण किया है।

इनकी दृष्टि से पाठयचर्या में स्वास्थ रक्षा एवं उसके विकास के लिए स्वास्थ्य विज्ञान एवं व्यायाम (खेलकूद) को, तर्क—शक्ति के विकास के लिए तर्क प्रधान विषयों एवं क्रियाओं को, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता के विकास के लिए विभिन्न भाषा साहित्य, इतिहास कला एवं अन्य मानविकीय विषयों को, उच्च मानवीय मूल्यों के विकास के लिए समाज सेवा को, उत्पादन क्षमता के विकास के लिए कला कौशलों, विज्ञान एवं तकनीकी को और सृजनात्मक क्रियाओं को स्थान देना चाहिए।

शिक्षण विधि :–

मानवतावादियों ने सर्वाधिक बल तर्क एवं विवेक पर दिया है। ये इन्द्रियानुभूत ज्ञान को भी तर्क एवं विवेक की कसौटी पर कसने के बाद स्वीकार करने पर बल देते हैं। इनकी दृष्टि से प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद, समस्या–समाधान एवं तर्क, सीखने–सिखाने की उत्तम विधियां है। शिक्षण के सम्बन्ध में इन्होने निम्नलिखित तथ्यों पर विशेष बल दिया है–

1. शिक्षण विधि का चयन छात्रों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के आधार पर किया जाए।
2. छात्रों को सीखने के स्वतंत्र अवसर दिए जाएं।
3. सीखने–सिखाने की क्रिया में छात्रों की सक्रिया भागीदारी हो।
4. सीखने–सिखने की क्रिया में छात्रों की बुद्धि और तर्क शक्ति का प्रयोग किया जाए।
5. जो कुछ भी पढ़ाया–सिखाया जाए उसका जीवन से सम्बन्ध जोड़ा जाए।
6. छात्रो की वैयक्तिक भिन्नता का ध्यान रखा जाए।
7. पिछडे छात्रो के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाए।

अनुशासन :–

मानवतावादी आत्मानुशासन के पक्षधर हैं। उनकी दृष्टि से सच्चे अनुशासन की स्थापना न निर्देशो से की जा सकती है और न पुरस्कार एवं दण्ड द्वारा की जा सकती है। इनकी दृष्टि से अनुशासन का विकास अनुशासन द्वारा ही किया जा सकता है। यदि सिखाने वाले अनुशासन का पालन करते है तो सीखने वाले अनायास ही अनुशासन का पालन करेगें। इनकी दृष्टि से भूल सुधार भी दण्ड द्वारा नहीं अपितु प्रेम द्वारा होना चाहिए।

शिक्षक :–

मानवतावादी की दृष्टि से शिक्षक का दृष्टिकोण उदार होना चाहिए। उन्हे शिक्षार्थियो के व्यक्तित्व का आदर करना चाहिए और उनके सम्पूर्ण विकास का उत्तरदायित्व वहन करना चाहिए। शिक्षक परिवर्तनशील और प्रगतिशील होने चाहिए और समाज की पुनर्रचना में उनका विश्वास होना चाहिए।

शिक्षार्थी :–

मानवतावादी शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व का आदर करते हैं, वे उन्हें शिक्षको का अन्धा भक्त बनाने के एक्ष में नही हैं, वे उन्हे स्वतंत्र रूप से सोचनें एवं निर्णय लेने की स्वतंत्रता देने के पक्ष में हैं। वे शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच मानवीय सम्बन्ध के पक्ष में हैं जो प्रेम एवं सहयोग पर आधारित होता है।

विद्यालय :–

मानवतावादी विद्यालयों को मानवनिर्माण की प्रयोगशाला मानते है। उनके अनुसार विद्यालयों में सबको एक दूसरे के साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिए ओर सबको एक दूसरे की सुख सुविधा मे सहयोग करना चाहिए।

सारांश :–

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मानवतावाद ने एक वौचारिक क्रानित को जन्म तो दिया ओर लोगो को मानव विकाशकारी ने एक से परिचित भी कराया परन्तु दुनिया के लोग वही के वही है। भी इसकी अपनी कोई नई देन नही है पूर्व निश्चित का विरोध करने वाले इन मानवतावादियो ने पूर्व निश्चित ज्ञान विज्ञान एवं मूल्यो की शिक्षा पर ही बल दिया है। बिना इसके मानव विकास सम्यव भी तो नही है। हमारी मत से सच्ची मानवाता के विकास के लिए सच्चे धर्म दर्शन की शिक्षा आवश्य है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

11. मानवतावाद का सामान्य परिचय दीजिए।

____

____

12. मानवतावाद में मूल सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं का उल्लेख कीजिए।

____

____

13. सत्य असत्य का निर्णय लीजिए।

    1. मानवतावाद मनुष्य को सृष्टि के विकास की चरमसीमा मानता हे।

2. मानवतावाद सबकी अच्छाई में विश्वास करता है।
3. मानवतावाद विज्ञान विरोधी हे।
4. मानवतावाद बुद्ध विरोधी है।

2.9 सारांश

प्रकृतिवाद अपने शुद्ध रूप में वैज्ञानिक विचारधारा पर केन्द्रित है। यह सम्प्रदाय केवल भौतिक ब्रहमाण्ड में आस्था रखता है। यह प्रकृति को सर्वोत्तम सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। यह अध्यात्म को किसी भी प्रकार से कोई महत्व नही देता।

दूसरी ओर आदर्शवाद यह मानता है कि प्रकृति की एकाकी रूप में कोई वास्तविक सत्ता नही है। यह प्रकृति को एक व्यापक मन या ब्रहम या ईश्वर पर अवलम्वित मानता है। इस सम्प्रदाय के अनुसार यथार्थता मनुष्य के आन्तरिक अनुभवों द्वारा ज्ञात हो सकती है। यह बाहरी संसार में नही देखी जा सकती। इससे तात्पर्य है कि यथार्थ या सत्य वह नही है जो वाहय संसार में दिखाई देता है। यह तो सब हमें धोखे में डालने के लिऐ है। यदि किसी को सत्य को पहचानना है और वास्तविकता से साक्षात्कार करना है तो उसे अपने आन्तरिक अनुभव का विकास करना चाहिए, जिनके द्वारा ही उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

प्रयोगवाद या प्रयोजनवाद आधुनिकतम विचार धारा है। यह विचारधारा प्रकृतिवाद की विधियों तथा आदर्शवाद के निर्णयो का समावेश रूप है। यह एक नए प्रकार का आदर्शवाद है जो आध्यात्मिक जीवन का प्रत्यक्षीकरण सांसारिक जीवन के अनुभवों द्वारा करने पर बल देता है।

यथार्थवाद को हम प्रकृतिवाद के बालक की संज्ञा दे सकते है, परन्तु बहुत से यथार्थवरियों का विश्वास प्रकृतिवाद से बहुत ही भिन्न है। यह सम्प्रदाय ज्ञान की समस्या को बहुत महत्व देता है। यह हमारे अनुभव की वस्तुओ को यथार्थता प्रदान करता है और कहता है कि इनकी यथार्थता मस्तिष्क पर निर्भर नही हैं।

अस्तित्ववाद की विचारधारा काल जेस्पर्स की इस उक्ति में निहित है कि मानव ही सब कुछ है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हे कि अस्तित्ववाद का दर्शन मानव अस्तित्व की वास्तविक विशेषताओं से तथा मानव को अपनी अनिवार्य स्वतंत्रता प्राप्त करने के आहवान से सम्बन्धित है।

मानवतावाद की मान्यता हे कि मानव अपने भाग्य का निर्माता तथा निर्धारक हैं। उसमें अपने ही प्रयास से अपनी समस्याओ को हल करने की क्षमता है।

2.10 अभ्यास प्रश्न

शिक्षा के प्रमुख दर्शनों की आधुनिक जीवन में उपयोगिता पर चर्चा आयोजित करें।

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आदर्शवादी अन्तिम सत्य ईश्वर को मानते हैं।
2. शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन सर्वाधिक आवश्यक है।
3. प्रयोजनवाद 'उपयोगिता' पर विश्वास करता है।
4. पाठ्यचर्या में विषयों और क्रियाओं में एकीकरण हो ।
5. वस्तु
6. कमेनियस, बेकन
7. निरीक्षण और अनुभव के अवसर प्राप्त हो सकें।
8. अस्तित्ववादी 'स्व' की पूर्ण मिलना शिक्षा का उद्‌देंश्य मानता है।
9. वैयक्तिक स्वतंत्रता
10. सारेन किकगार्ड
11. मानवतावादी चिन्तन सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानता है।
12. नहीं
13. सृष्टि के विकास की चरम सीमा मानता है।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओड, लक्ष्मी लाल के. (1990), *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. माथुर, एस0एस0 (2008), *उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक,* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

3. चौबे, एस0पी0 एवं, चौवे, अखिलेश (2007), *शिक्षा के दार्शनिक समाज शास्त्रीय आधार,* इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

4. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड़ सुनीता (2007), *शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग,* आर0 लाल बुक डिपो मेरठ।

5. पचौरी, गिरीश, *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ

6- Bhatia, Kamala and Bhatia, Baldev (1991), *The Philosophical and Sociological Fundations of Education*, Dooba House, Delhi.

इकाई–3 भारतीय चिंतक एवं समकालीन भारतीय प्रतिप्रेक्ष्य

3.1 प्रस्तावाना
3.2 उद्देश्य
3.3 रवीन्द्र नाथ टैगोर
3.4 महात्मा गांधी
3.5 श्री अरविन्द
3.6 जे. कृष्णमूर्ति
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

किसी समाज की शिक्षा मूल रुप से उसके जीवन दर्शन पर आधारित होती है, इसके अलावा समाज की विशेष संरचना, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति तथा उसकी राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति भी शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती है, साथ ही साथ मानव के स्वंय की प्रकृति भी उसकी शिक्षा के स्वरुप को प्रभावित करती हे। वास्तव में शिक्षा के अपने में कोई उद्देश्य नहीं होते, बल्कि समाज के जो उद्देश्य होते हैं वही उसकी शिक्षा के उद्देश्य होते हैं। चूंकि भिन्न–भिन्न समाजों के उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं। इसलिए उनकी शिक्षा के उद्देश्य भी भिन्न–भिन्न होते हैं; जो देश काल के साथ–साथ बदलते रहते हैं, इसमें समकालीन चिंतकों को विशेष योगदान होता है। प्रस्तुत इकाई में प्रसिद्ध भारतीय चिंतको एवं दार्शनिकों–टैगोंर, गांधी अरविन्द और कृष्णमूर्ति के दार्शनिक एवं शैक्षिक चिंतन और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनके विचारों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन दर्शन एवं शैक्षिक चिंतन को जान सकेगें।
2. महात्मा गांधी के जीवन दर्शन एवं बुनियादी शिक्षा को समझ सकेगें।

3. श्री अरविन्द के जीवन दर्शन एवं शैक्षिक चिंतन को स्पष्ट कर सकेगें।
4. जे.कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन से परिचित हो सकेंगे।
5. टैगोर, गांधी, अरविन्द एंव कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन का वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में विवेचना कर सकेगें।

3.3 रवीन्द्र नाथ टैगोर

3.3.1. सामान्य परिचय :

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म कलकत्ता के एक सुसंस्कृत, समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवार में 6 मई 1861 को हुआ था। इनके पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर बड़े विद्वान, कलाप्रेमी, धर्मप्रिय, समाजसेवक, राष्ट्रभक्त और साधु प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। रहीसी, पर सादाजीवन और उच्च विचार इनके परिवार की विशेषता थी जिसका श्री रवीन्द्रनाथ पर अमिट प्रभाव पड़ा। 16 वर्ष की अवस्था तक टैगोर अस्तव्यस्त रूप से घर पर रहकर ही शिक्षा प्राप्त करते रहे। सन् 1877 में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड गए लेकिन वहाँ सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हुई ओर सन् 1880 में स्वदेश वापिस आ गए।

स्वदेश लौटने के वाद उन्होंने सामाजिक, जातीय और राजनैतिक भावना से अभिप्रेरित होकर लेखन कार्य प्रारम्भ किया। उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता के रुप में अनेको रचनायें इन्होंने बंगला साहित्य को प्रदान की। अध्ययन–अध्यापन के लिए ये स्वतंत्र और प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा प्रदान करने के लिए 1901 में इन्होंने 'शान्ति निकेतन' नाम से एक विद्यालय की स्थापना की जो आज 'विश्व भारती' विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। शान्ति निकेतन में रहकर टैगोर ने ख्याति प्राप्त रचना गीतांजलि का सृजन किया जिस पर 1913 में 'नाबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले टैगोर पहले भारतीय थे। ब्रिटिश सरकार ने इनको 'नाइट' की उपाधि से अलंकृत किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने भी आपको डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने भी आपको डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आपको गुरुदेव की उपाधि से विभूषित किया। 7 अगस्त 1941 को भारत माता के इस अमर सपूत, चिन्तक, दार्शनिक, कवि, कलाकार और शिक्षाशास्त्री का देहावसान हो गया।

3.3.2 टैगोर का दार्शनिक चिंतन

गुरुदेव उपनिषदीय दर्शन के पोषक थे। उन्होंने उपनिषदीय दर्शन को मानवीय दृष्टिकोण से देखा–समझा। वे संसार के समस्त प्राणियों में परमातमा की व्याप्ति मानते थे और इस आधार पर संसार के समस्त प्राणियों में एकात्म भाव उत्पन्न करने पर बल

देते थे। इसी कारण कुछ विद्वान गुरुदेव के दार्शनिक चिन्तन को 'विश्ववोध दर्शन' की संज्ञा देते है।

गुरुदेव इस सृष्टि को ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते थे। उनके अनुसार ईश्वर द्वारा निर्मित यह जगत उतना ही सत्य है, जितना ईश्वर अपने आप में सत्य है। ईश्वर को उन्होंनें निराकार एवं साकार, दोनों रूपों में स्वीकार किया है। उनके अनुसार बीज रूप में वह निराकार है और सृष्टि (प्रकृत्ति) रूप में साकार है।

मनुष्य को गुरुदेव आत्माधारी प्राणी मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है। उन्होंने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया है एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक पक्ष में उन्होंने स्वयं के शरीर, उसके प्राकृतिक पर्यावरण, एवं पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन को रखा है और आध्यात्मिक पक्ष में उसकी आत्मा को रखा है। वे भौतिक जगत के ज्ञान को उपयोगी ज्ञान और आध्यात्मिक जगत के ज्ञान को विशुद्ध ज्ञान कहते थे। उनकी दृष्टि से संसार की समस्त जड़ वस्तुओं और जीवां में एकात्म भाव ही अन्तिम सत्य है और इसकी अनुभूति ही मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

ज्ञान प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में गुरुदेव ने स्पष्ट किया कि भौतिक वस्तुओं एवं क्रियाओं का ज्ञान भौतिक माध्यमों (इन्द्रियों) द्वारा प्राप्त होता है और आध यात्मिक तत्वों (आत्मा–परमात्मा) का ज्ञान सूक्ष्म माध्यमों (योग) द्वारा प्राप्त होता है उन्होंने सूक्ष्म माध्यमों में प्रेम योग के महत्व को स्वीकारा और स्पष्ट किया कि आध यात्मिक तत्व के ज्ञान के लिए सबसे सरल मार्ग प्रेम मार्ग है, प्रेम ही हमें मानव मात्र के प्रति संवेदनशील बनाता है, प्रेम ही हमें एकात्म भाव की अनुभूति कराता है और प्रेम ही हमें आत्मानुभूति अथवा ईश्वर की प्राप्ति कराता है। वे प्रेम को सार्वभौमिक मूल्य मानते थे और इसे मनुष्य के आचार'–विचार का आधार बनाना चाहते थे। उनका तर्क था कि प्रेम ही वह भावना है जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाती है और मनुष्य को मनुष्य की सेवा की ओर प्रवृत्त करती है। उनका विश्वास था कि प्रेम से भौतिक जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है और आत्यात्मिक पूर्णता भी प्राप्त की जा सकती है।

3.3.3 टैगोर का शैक्षिक चिन्तन

गुरुदेव ने अपने समय की शिक्षा में सुधार के लिए बहुत कार्य किया था। शिक्षा जगत में ये शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं। 1892 में जब ये केवल 31 वर्ष के थे, इन्होंने 'शिक्षार हेर फेर' की रचना की और इसके द्वारा लोगों का ध्यान तत्कालीन शिक्षा के दोषों की ओर आकर्षित किया, और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतु

अपने सुझाव भी दिए। 1901 में इन्होंने अपने शैक्षिक विचारों को मूर्त रुप देने के उद्देश्य से शान्तिनिकेतन आश्रम में शान्ति निकेतन 'ब्रह्मचर्य आश्रम' की स्थापना की। 1901 से 1941 तक गुरुदेव ने शिक्षा के विषय में खूब सोचा और खूब लिखा। शिक्षा से सम्बन्धित इनकी मुख्य रचनाओं में 'शिक्षार हेर फेर' (1892) के वाद, 'हिन्दू विश्वविद्यालय' (1911), 'धर्म शिक्षा (1912), 'शिक्षा विधि (1912). 'स्त्री शिक्षा (1915) 'माई स्कूल' (1915), 'विश्व भारती' (1919), श्री निकेतन (1927), 'आइडियल्स ऑफ एजूकेशन' (1929), 'शिक्षा सार कथा' (1930), 'माई एजूकेशनल मिशन (1931), 'टू द स्टूडेण्ट्स' (1935), 'शिक्षा और संस्कृति (1935) और गुरुकुल कांगड़ी (1941), मुख्य है।

उन्होंने अपने समय की अंग्रेजी माध्यम से चलने वाली शिक्षा को अव्यावहारिक बताया और मातृभाशा के माध्यम से शिक्षा देने पर बल दिया। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शिक्षा द्वारा जनसाधारण की भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनो प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। यहाँ टैगोर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है–

1. शिक्षा का सम्प्रत्यय

गुरुदेव के अनुसार शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक प्रगति करता है और आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति करता है। भौतिक दृष्टि से गुरुदेव ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है– 'वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने मे सहायता करती है।' आध्यात्मिक दृष्टि से गुरुदेव सृष्टि के कण–कण में ईश्वर को व्याप्त मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य इस आध्यात्मिक एकात्म भाव की अनुभूति करना है, यही शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य अथवा कार्य है। उनके अपने शब्दों में ''सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करती है।'

2. शिक्षा के उद्देश्य

गुरुदेव ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास कर सके ओर इन्हीं को वे शिक्षा के उद्देश्य मानते थे। शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी इनके विचारों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है:

(i) **शारीरिक विकास** – गुरुदेव के अनुसार शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य बालक का शारीरिक विकास करना है। इन्होंने कहा कि बालक का शारीरिक विकास तभी सम्भव है जब उसे सुखद प्राकृतिक वातावरण में स्वतंत्रता पूर्वक खेलने–कूदने, उठने–बैंठने का अवसर दिया जाय। इनका कथन है कि 'पेड़ों पर चढ़ने, तालाबों में डुबकियाँ लगाने,

फूलों को तोड़ने और बिखेरने तथा प्रकृति माता के साथ नाना प्रकार की शैतानियां करने से बालकों के शरीर का विकास, मस्तिष्क का आनन्द और बचपन के स्वाभाविक आवेगों की सन्तुष्टि होगीं'।

(ii). **मानसिक विकास–** गुरुदेव ने शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक विकास पर भी बल दिया है। इनके अनुसार शिक्षा का कार्य बालक को वास्तविक जीवन की बातों, स्थितियों और वातारवरण से परिचित कराकर उसके मस्तिष्क का विकास करना है। मानसिक विकास के लिए गुरुदेव ने पुस्तकीय शिक्षा का विरोध किया है और प्रकृति तथा जीवन से प्रत्यक्ष रुप से ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बताया है। इनका कथन है कि 'पुस्तकों की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप से जीवित व्यक्ति को जानने का प्रयत्न करना ही शिक्षा है। इससे न केवल कुछ ज्ञान ही प्राप्त होता है। अपितु इससे जानने की शक्ति का इतना विकास हो जाता है, जितना कक्षा में दिए जाने वाले व्याख्यानों द्वारा होना असम्भव हैं।''

(iii). **नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास–** गुरुदेव ने शारीरिक ओर मानसिक विकास के साथ–साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर भी बल दिया है और व्यक्ति के आन्तरिक विकास को शिक्षा का एक उद्देश्य माना है। आन्तरिक विकास से गुरुदेव का तात्पर्य है– ''आन्तरिक स्वतन्त्रता एवं आन्तरिक शक्ति तथा ज्ञान।'' इनके शब्दों में ''आन्तरिक स्वतन्त्रता के इस आदर्श को सब प्रकार की दासता से मुक्ति के रुप में व्यक्त किया जा सकता है। इसका उद्देश्य मस्तिष्क को पुस्तकीय ज्ञान के आधिपत्य से स्वतन्त्र कराना है। गुरुदेव के अनुसार शिक्षा का कार्य यह होना चाहिए कि वह बालक को धैर्य, शान्ति, आत्म अनुशासन–आन्तरिक स्वतन्त्रता और आन्तरिक ज्ञान के मूल्यों से परिचित कराकर उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास करें।

(iv). **सामाजिक विकास एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास–** गुरुदेव ने बालक के सामजिक विकास पर भी यथेष्ट बल दिया है। इनका कहना है कि बालक में सामाजिक गुणों का विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अपने अन्दर सामाजिक गुणों को विकसित करके ही बालक अपनी स्वयं की और समाज की प्रगति में सहयोग कर सकता है। ये समाज एवं समाज–सेवा को उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं जितना व्यक्ति और व्यक्तित्व को। वे संकीर्ण राष्ट्रवाद की भावना के विरूद्ध है और अन्तर्राष्ट्रीय समाज के समर्थक हैं और संसार में एकता स्थापित करना चाहते हैं।

(v). **सामंजस्य की क्षमता का विकास** – गुरुदेव के अनुसार बालकों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, सामाजिक परिस्थितियों तथा वातावरण की जानकारी

कराना तथा उनसे अनुकूल करना, शिक्षा का उद्देश्य है। इनके शब्दों में, 'इस समय हमारा ध्यान आकर्षित करने वाली प्रथम और महत्वपूर्ण समस्या–हमारी शिक्षा और हमारे जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या है।'

3. पाठ्यक्रम

गुरुदेव ने अपने समय के भारतीय विद्यालयों में प्राचीन पाठ्यक्रम को दोषपूर्ण बताया और कहा कि प्रचलित पाठ्यक्रम एक तो बालक के केवल मस्तिष्क का विकास करने के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान देता हैं, दूसरे इसका उद्देश्य बालक का केवल धन कमाने के लिए तैयार करना है, जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि बालक गम्भीरता से अध्ययन नहीं करते, किसी तरह परीक्षा पास करके नौकरी प्राप्त कर लेना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस प्रकार के संकुचित पाठ्यक्रम से बालक का पूर्ण विकास नही हो सकता। प्रचलित पाठ्यक्रम के दोषों को दूर करने के लिए उन्होंने व्यापक पाठ्यक्रम का निर्माण किया। इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है; "पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य का पूर्ण विकास", इसलिए शिक्षा के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुदेव ने अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत पाठ्यक्रम की रचना की जिसमें मानव जीवन के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक के विकास को स्थान दिया गया।

गुरुदेव ने बालकों के पूर्ण विकास के लिए पाठ्यक्रम में विभिन्न प्रकार के विषयों, क्रियाओं और अतिरिक्त क्रियाओं का समावेश किया, जो निम्नवत है:

(i) विषय – इतिहास, विज्ञान, प्रकृति अध्ययन, भगोल साहित्य आदि

(ii) क्रियाएं – नाटक, भ्रमण, वागवानी, क्षेत्रीय अध्ययन, प्रयोगशाला कार्य, कला, भौतिक रचना, अजायब घर के लिए विभिन्न वस्तुओं का संग्रह आदि।

(iii) अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाएं– खेलकूल, समाज–सेवा, छात्र–स्वशासन आदि।

उपर्युक्त पाठ्यक्रम के विषयों, क्रियाओं और अतिरिक्त क्रियाओं से स्पष्ट है कि गुरुदेव का पाठ्यक्रम विषय प्रधान न होकर क्रिया प्रधान है। एच.वी. मुखर्जी का कथन है कि इस दृष्टिकोण से टैगोर की शिक्षा संस्थाओं में लागू किया जाने वाला पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम रहा है।

4. शिक्षण विधि–

गुरुदेव ने शिक्षण विधि को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, प्रकृति के वास्तविक तथ्यों और समाज के वास्तविक जीवन के अनुकूल बनाने पर बल दिया। इन्होंने कहा कि शिक्षण विधि बालक की स्वाभाविक आवश्यकताओं, रुचियों और आवेंगो

के अनुसार होनी चाहिए। गुरुदेव के अनुसार शिक्षण विधि के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए–

– शिक्षा की प्रक्रिया जीवन से पूर्ण हो
– शिक्षा प्रक्रिया अपरिचित से परिचित की ओर, समीप से दूर की ओर ले जाए।
– शिक्षा की प्रक्रिया में स्वतन्त्र प्रयत्न और चिन्तन हो
– शिक्षा की प्रक्रिया में जिज्ञासा और रुचि बने रहे।
– शिक्षा की प्रक्रिया में क्रियाशीलता खेल, रचना, सष्जन और आनन्द हो।
– मनोवैज्ञानिक ढंग से सीखाना होना चाहिए।

टैगोर ने निम्नलिखित शिक्षण विधियों को उपयुक्त माना है–

(i) क्रियाविधि– गुरुदेव के अनुसार मनुष्य 'मनःशारीरिक' प्राणी है। वह जो भी शारीरिक क्रिया करता है उसका शरीर तथा मस्तिष्क दोनो पर प्रभाव पड़ता है, इसलिए बालकों को क्रिया द्वारा सीखने का अवसर देना चाहिए। इन्होंने विद्यालय में किसी न किसी दस्तकारी को अनिवार्य रूप से सीखने पर बल दिया। शारीरिक क्रिया को महत्व देने के कारण इन्होंने शिक्षण विधि में नृत्य, अभिनय आदि को स्थान दिया। यही नही वे पेड़ पर चढ़ना, कूदना, हंसना, चिल्लाना आदि क्रियाओं को भी शिक्षण की विधि मानते थे।

(ii) प्रत्यक्ष विधि– गुरुदेव के अनुसार शिक्षण विधि को प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर होना चाहिए क्योंकि उससे निरीक्षण और तर्क शक्ति का विकास होता हैं। प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन, प्रकृति का निरीक्षण करके और सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन, सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं संस्थाओं के निरीक्षण से किया जाना चहिए। इनका कथन है कि "वास्तविक वस्तुओं के सम्पर्क में आने से जो छात्रों के सम्मुख है, उनकी निरीक्षण तथा तर्क शक्ति विकसित होती है।"

(iii). भ्रमण के समय पढ़ाने की विधि– इस विधि को सर्वोत्तम बताते हुए गुरुदेव ने लिखा है कि, "भ्रमण के समय पढाना, शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है, "इस विधि के महत्व को दर्शाते हुए इन्होंने कहा है कि भ्रमण के समय अनेक वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखकर हमें उनका अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है तथा भ्रमण से हमारी मानसिक शक्तियां सतर्क रहती है जिसके फलस्वरूप हम प्रत्यक्ष की जाने वाली बातों को सरलता से समझ लेते हैं।

(iv) स्वाध्याय एव प्रयोग विधि : गुरुदेव ने स्वाध्याय एवं प्रयोगविधि पर भी बल दिया है। स्वाध्याय में बालक अपने आप सीखता है तथा ज्ञानार्जन करता है। विज्ञान

कला कौशल एवं अन्य व्यावहारिक विषयों के लिए इन्होंने प्रयोग विधि को आवश्यक बताया है।

(v) वाद–विवाद एवं प्रश्नोत्तर विधि–गुरुदेव का कहना था कि ज्ञान उस समय तक पूर्ण रूप से आत्म–सात नहीं होता जब तक कि उस पर उचित ढंग से बातचीत एवं विचार–विमर्श न किया जाये। इसके लिए इन्होंने वाद–विवाद और प्रश्नोत्तर विधि ा को अपनाने का सुझाव दिया। इन्होंने कहा कि प्रश्नों के द्वारा बालकों के सामने दैनिक जीवन की समस्याओं को रखा जाएं। बालक उन पर वाद–विवाद करें और उनका हल निकालें।

5. विद्यालय

गुरुदेव के अनुसार विद्यालय प्राचीन भारत में प्रचलित गुरू आश्रम के समान नगर जीवन की हल चल से दूर, प्रकृति के सुरम्य और शान्त वातावरण में स्थित हों। इस प्रकार के वातावरण से युक्त विद्यालय में ही बालकों के मन की वृत्तियों का निरोध हो सकता है, उनका ध्यान केन्द्रित हो सकता है, स्वतंत्र चिन्तन हो सकता है और उनका पूर्ण विकास हो सकता है। ऐसे वातावरण में ही छात्र एवं अध्यापक शिक्षा की साधना में लीन हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि "टैगोर मानुषी बस्तियों के कोलाहल से दूर, एकान्त में, खुले आकाश के नीचे, जंगल के खेतों, वृक्षों और पौधों के बीच स्थापित किए जाने वाले एक आदर्श शिक्षा संस्था के चित्र को अपने मानस पटल पर अंकित करते हैं। यहां पर शिक्षक शक्ति से स्वाध्याय में तथा अध्ययन में लगे होंगे और शिष्य सीखने के पवित्र और गम्भीर वातावरण में क्रमशः उन्नत होंगे।"

विद्यालय के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए गुरुदेव ने लिखा है, "मेरे आदर्शों के अनुसार विद्यालय ऐसा होना चाहिए जिसमें घर तथा मंदिर का एकीकरण हो और जहाँ पवित्र जीवन का एक अंग हो। मैने इसलिए नगर की धूमधाम से दूर यह स्थान चुना है।"

6. शिक्षक

गुरुदेव ने अपनी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक को अति महत्वपूर्ण स्थान दिया हैं। शिक्षक के महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं, "जिस किसी मार्ग की खोज हम इधर–उधर करे, अन्त में हम इस अडिग सत्य पर पहुंचते हैं कि शिक्षा केवल शिक्षक के द्वारा ही दी जा सकती है।" एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि "शिक्षा केवल शिक्षक के ही द्वारा दी जा सकती है, शिक्षण विधि के द्वारा नहीं।

गुरुदेव का कहना है कि हमें ऐसे शिक्षक की खोज करनी चाहिए जो सही शिक्षा प्रदान करें, जो हमारे मस्तिष्क को यातनाओं के कारागार से मुक्त कर सके, क्योंकि

मनुष्य, मनुष्य से ही सीख सकता है इसलिए शिक्षक ब्रह्मचारी, एकांतवासी, ज्ञान से परिपूर्ण, विचारशील, निःस्वार्थी, एक अद्भुत आत्मा और प्रकृति तथा मनुष्य में महान होना चाहिए। उसमे सेवा, त्याग, सहयोग, लगन, प्रसन्नता, कर्त्तव्यपरायणता आदि गुण होने चाहिए, जिससे विद्यार्थी प्रभावित हो सकें।

गुरुदेव ने लिखा है, "वे (शिक्षार्थी) सही ढंग से व्यवहार करेंगे यदि हम (शिक्षक) उनके साथ सही ढंग से व्यवहार करते हैं।" गुरुदेव ने लिखा है कि 'जो भावी यश के तेज प्रकाश को नहीं देखते, अपने ज्ञान, पद और राष्ट्रभाव के दर्प में उससे सर्वदा घृणा करते हैं, वे एक अध्यापक के पद के योग्य नहीं है। गुरुदेव ने विद्यार्थी को देवी–प्रकाश से युक्त माना है और उस प्रकाश का देखने का उत्तरदायित्व शिक्षक को दिया हैं। उनके अनुसार शिक्षक को प्रशिक्षित होना चाहिए। कठोर शिक्षकों को गुरुदेव ने 'जेल बार्डन', ड्रिल सार्जेन्ट, 'शक्ति के भोगी' आदि कहा है। इस प्रकार शिक्षक को अपने प्रेरणादायी व्यक्तित्व, शिक्षाप्रद अनुभव और नम्र तथा शालीन व्यवहार से विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

2. बालक

गुरुदेव ने बालक को देवी प्रकाश से युक्त माना है और उसमें कुछ आवश्यक गुणों की अपेक्षा की है, ये गुण हैं– व्यवहार में विनम्रता, आचरण में व्यवस्था और स्वच्छता, नियमों और आज्ञाओं का पालन, शरीर एवं वातावरण की सफाई, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में अनुशासन, निन्दनीय एवं दोषपूर्ण बातों से अलग रहना, सौन्दर्य के प्रति लगाव, चिन्तन, उच्चाभिलाषा, आन्तरिक बल एवं प्रकाश की अनुभूति, ब्रह्मचर्य व आन्तरिक नियन्त्रण, आत्मानुभूति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि– आदि। इस प्रकार गुरुदेव आदर्शवादी, प्रकृतिवादी, यथार्थवादी और प्रयोजनवादी विचारधाराओं के समन्वय से बालक के व्यक्तित्व का समन्वित विकास करना चाहते हैं। इनका कहना है कि बालक अपनी शिक्षा को वास्तविक जीवन से सम्बन्धित करें और राष्ट्र के जीवन में जागृति पैदा करें। इनके अनुसार बालक को केवल पाठ्य पुस्तकों का ही अध्ययन नहीं करना चाहिए वरन् सभी स्रोतों से सीधे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

8. अनुशासन

गुरुदेव ने बालक को कठोर दण्ड देने का विरोध किया है। इन्होंने लिखा है कि बालकों को कठोर दण्ड देते हुए देखकर मैं शिक्षक को ही दोशी पाता हूँ। इन्होने अनुशासन को एक नैतिक मूल्य या आदर्श माना है। ये अन्धी आज्ञाकारिता को, बाह्य व्यवस्था को अनुशासन नहीं मानते। इनके अनुसार अनुशासन का अर्थ है स्वाभाविक अनुशासन जिसे इन्होंने आत्म–अनुशासन या आन्तरिक अनुशासन भी कहा है, अनुशासन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ये कहते हैं– "वास्तविक अनुशासन का अर्थ

है, अपरिपक्व एवं स्वाभाविक आवेगों की अनुचित उत्तेजना और दिशाओं में विकास से सुरक्षा। स्वाभाविक अनुशासन की इस स्थिति में रहना छोटे बच्चों के लिए सुखदायक है जो उनके पूर्ण विकास में सहायक होता है।''

3.3.4 टैगोर के शिक्षा दर्शन का वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य

महान दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री रविन्द्रनाथ टैगोर ने अपने अनुभव के आधार पर सरल, सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर आधारित एक ऐसी शिक्षा योजना की संकल्पना की जिसका प्रभाव वर्तमान प्राथमिक विद्यालयों में स्पष्ट रूप से व्याप्त है। गुरुदेव ने आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, मानवतावाद तथा यथार्थवाद को अपने विचार का आधारा बनाया। दर्शन के प्रमुख सम्प्रदायों से प्राप्त विचार उनके शिक्षा दर्शन को पल्लवित एवं पुष्पित करते हैं। बालक को शिक्षा एवं शिक्षण के मध्य में स्थापित करते हुए भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की गौरव पताका विश्व में फहराई। भारतीय प्रकृतिवाद के प्रणेता कहे जाने वाले टैगोर ने आध्यात्मिक प्रकृतिवाद के पथ पर गमन किया। समन्वयवाद उनका महत्वपूर्ण कार्य है। अन्तराष्ट्रीय सद्भाव तथा विश्व बन्धुत्व का जो विचार आज वैश्वीकरण के रूप में उभर रहा है, वह गुरुदेव के विचारों से ही उद्भूत हैं। अध्यापक, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम तथा प्राकृतिक परिवेश के सम्बन्घ में उनके विचार शान्ति निकेतन में व्यावहारिक स्थिति को प्राप्त है। एच.वी. मुखर्जी के शब्दों में ''टैगोर वर्तमान भारत के शैक्षिक पुनरुत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे। उन्होंने देश के सम्मुख शिक्षा के सर्वोच्च आदशों को स्थापित करने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया, अपनी शैक्षिक संस्थाओं में ऐसे प्रयोग किए जिन्होंने उन्हें आदर्श का सही प्रतीक बना दिया।

धर्म की वास्तविक व्याख्या मानवधर्म और मानवीय गुणों के परिप्रेक्ष्य में करते हुए टैगोर ने प्रकृतिवादी मानवतावाद का आश्रय लिया। टैगोर के विचार विश्वभारती केन्द्रीय विश्वविद्यालय में व्यावहारिक स्थिति को प्राप्त है। यहाँ विश्वबोध दर्शन का स्पष्ट प्रतिबिम्बन है। स्पष्टतः यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि विश्वभारती गुरुदेव के विचारों का जीता जागता स्मारक है।

3.3.5 सारांश

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गुरुदेव ने भारतीय शिक्षा के सुधार के लिए जो सुझाव दिये और जो कार्य किए वे सदैव स्मरण किए जाएंगे। इन्होंने शिक्षा के स्वरूप एवं उसके कार्यो की स्पष्ट व्याख्या की, शिक्षा द्वारा मनुष्य के भौतिक एवं आध यात्मिक दोनों प्रकार के विकास पर समान बल दिया, शिक्षा की पाठ्यचर्या में राष्ट्रीय भाषाओं, संस्कृतियों और ज्ञान विज्ञान को स्थान देने के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय महत्व

की भाषाओ, संस्कृतियों और ज्ञान विज्ञान को स्थान दिया, शिक्षण की प्राचीन विधियों को नए शिक्षण सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा उपयोगी बनाया, शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश दिया, बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने पर बिल दिया और विद्यालयों को समाज सेवा एवं ग्रामोद्धार का केन्द्र बनाया।

गुरुदेव ने अपने शैक्षिक विचारों को मूर्तरुम देने के लिए 1892 में शान्तिनिकेतन आश्रम में एक विद्यालय की स्थापना की जो आज विश्वभारती विश्वविद्यालय के रूप मे विकसित है। यहां ललित कलाओं के शिक्षण और विभिन्न कला–कौशलों के प्रशिक्षण के लिए अलग–अलग भवन (संस्थाएं) हैं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं ,धर्म, दर्शन तथा संस्कृतियों की शिक्षा की व्यवस्था है और समाजसेवा तथा ग्रामोत्थान सम्बन्धी क्रियाएं शिक्षा के सभी स्तरों पर अनिवार्य हैं यहां के शिक्षक एवं छात्र सादा जीवन जीते हैं, यह विश्व भारती केवल भारत के के लिए ही नहीं अपितु पूरे विश्व के लिए हैं।

गुरुदेव के शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग का प्रभाव आज भारतीय शिक्षा में स्पष्ट रूप से दिखता है। आज पूरे देश में शिक्षा का माध्यम मातृभाषांए हैं, प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं कला–कौशलों और ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है। सचमुच ये आधुनिक भारतीय शिक्षा के निर्माता थे। डा. एच. वी. मुखर्जी के शब्दों में 'टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरुत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे।''

बोध प्रश्न

टिप्पणी– अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

1. एकात्म भाव से गुरुदेव टैगोर का क्या आशय है?

   ----

2. मनुष्य के विषय में गुरुदेव के क्या विचार थे?

3.4 महात्मा गॉधी

महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में गुजरात प्रदेश के पोरबन्दर नामक स्थान पर वैष्णव धर्मावलम्बी, सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनका वास्तविक नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। इनके पिता कर्मचन्द गांधी पोरबन्दर के दीवान थे और बड़े धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इनकी माता श्रीमती पुतलीबाई भी बड़ी धार्मिक एवं सात्विक प्रवृत्ति की महिला थीं। महात्मा गांधी पर अपने पारिवारिक वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ा।

गांधीजी को अपने परिवार में वैष्णव धर्म की शिक्षा मिली थी। अपने बचपन में ही उन्होंनें मनुस्मृति का एक अनुवाद पढ़ डाला था। गीता तो ये नित्य पढ़ते थे। इंग्लैण्ड में इन्होंने बाईबिल और लाइट आफ एषिया पढ़ी थी और श्रीमती एनीबेसेंट का सत्संग किया था। इस सबके आधार पर इनके धार्मिक एवं दार्षनिक विचार बने। पर मूल रुप में इनका जीवन दर्षन गीता पर आधारित है। गीता को ये गीतामाता कहते थे।

गांधी जी ने किसी नए दर्शन का निर्माण नही किया। इन्होंने भारतीय दर्शन की मूलभूत बातों को ही व्यावहारिक रूप दिया है। पर यह व्यावहारिक कम इनकी अपनी. सूझ–बूझ का परिचायक है, इसलिए उसे आज गांधी दर्शन, गांधीवाद अथवा सर्वोदय दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

3.4.1 गांधी जी का दार्शनिक चिन्तन

गांधी जी गीता को तत्वज्ञान का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते थे। गीता के अनुसार मूल तत्व दो है– पुरुष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ) और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है, गांधी जी गीता की इस बात को मानते थे। गांधी जी ने गीता के उस तथ्य को उजागर किया कि ईश्वर इस जगत का कर्त्ता है और प्रकृति इसकी उपादान कारण हैं। ईश्वर को ये सत्यरूप में मानते थे। सत्य शब्द सत् से बना है और सत् का अर्थ होता है, अस्तित्व इसलिए सत्य का अर्थ हुआ जिसका अस्तित्व है, जो नित्य है। गांधी जी का विष्वास था कि ईष्वर अपरिवर्तनशील है, नित्य है, इसलिए सत्य है और प्रकृति (पदार्थ) परिवर्तनशील है, अनित्य है, इसलिए असत्य है।

आत्मा को ये परमात्मा का अंश मानते थे। इनका विश्वास था कि जब परमात्ता नित्य एवं सत्य है तो आत्मा भी नित्य एवं सत्य है। गांधी जी आत्मा, परमात्मा और सत्य, इन सभी को उस अनादि एवं अनन्त शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे।

मनुष्य को गांधी जी शरीर मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्‌देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष है।

इन्होंने मनुष्य जीवन को दो पक्षों में विभाजित किया–भौतिक और आध्यात्मिक। उनकी दृष्टि से ये दोनों पक्ष एक दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक के विकास के बिना दूसरे का विकास नहीं किया जा सकता, मनुष्य के इन दोनों पक्षों पर विकास एक साथ करना चाहिए। ये मनुष्य के दोनो पक्षों के सही रुप में विकास करने के लिए एकादश ब्रत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृष्यता निवारण कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव और विनम्रता) के पालन को आवश्यक समझते थे।

गांधी जी के अनुसार भौतिक ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियों द्वारा की जा सकती है और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति गीता पाठ, भजन–कीर्तन और सत्संग द्वारा की जा सकती है। गीता को ये आध्यात्मिक ज्ञान का श्रेष्ठतम ग्रंथ मानते थे। आध यात्मिक मुक्ति के लिए इन्होंने गीता के अनाशक्ति योग को सर्वश्रेष्ठ साधन माना है और लौकिक जीवन की सुख–समृद्धि के लिए श्रम, नैतिकता एवं चरित्र के महत्व को स्वीकार किया है। इन दोनों की प्राप्ति के लिए एकादश ब्रत के पालन पर बल दिया है। ये इन्हें ही मानव जीवन के मूल्य मानते थे।

सत्य गांधी जी के लिए साध्य एवं साधन दोनों हैं। साध्य रूप में सत्य वह है जिसका अस्तित्व है, जिसका कभी अन्त नहीं होता अर्थात् ईश्वर। और साधन रुप में सत्य से गांधी जी का तात्पर्य सत्य विचार, सत्य आचरण और सत्य भाषण से है।

अहिंसा से इनका अर्थ समस्त जीवधारियों के प्रति कुविचार के अभाव से है। गांधी जी की दृष्टि से केवल जीव हत्या ही हिंसा नही है अपितु किसी का शोषण करना भी हिंसा है और किसी के प्रति कुविचार रखना भी हिंसा हैं। इनके विचार से अहिंसा के अभाव में न सत्य का पालन हो सकता है और न सत्य की प्राप्ति हो सकती है। अहिंसा को ये भौतिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए परम आवश्यक मानते थे।

ब्रह्मचर्य को ये इन्द्रिय निग्रह द्वारा मन को अपने वष में करने के अर्थ में लेते थे।

अस्वाद अर्थात् इन्द्रिय योग के रस से दूर रहना।

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना।

अपरिग्रह : अर्थात संग्रह न करना।

अभय का अथ है किसी भी प्रकार के भय से मुक्त होना।

अस्पृष्यता निवारण का अर्थ है– जन्म के आधार पर किसी को शूद्र न समझना

कायिक श्रम का अर्थ है– बिना श्रम किए किसी वस्तु का भोग न करना।

सर्वधर्म समभाव का अर्थ है'– सब धर्मो को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानना। और

विनम्रता का अर्थ है अहंकार एवं क्रोध का त्याग तथा दया एवं क्षमा शक्ति का विकास।

गांधी जी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को इन ब्रतों का पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति इन ब्रतों का पालन करगा वही समस्त प्राणियों के उदय की बात सोचेंगे और वही सच्चे अर्थों में सर्वोदयी होगा। गांधी जी के विचार से ऐसा उदार हृदय व्यक्ति ही जीवन में सुख–शान्ति प्राप्त कर सकता है और आत्म तत्व की अनुभूति कर सकता है।

3.4.2 शैक्षिक विचार

गांधी जी एक महान शिक्षाशास्त्री होने के साथ–साथ प्रसिद्ध दार्शनिक राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक भी थे। उन्होंने देश की उन्नति के लिए सामाजिक उन्नति को अधिक महत्व दिया क्योंकि इनका विश्वास था कि दूषित समाज मे किसी आदर्श राज्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। डॉ. एम.एस. पटेल ने कहा है कि "इनकी शिक्षा सम्बन्धी विचारों से यह स्पट है कि वे पूर्व में शिक्षा सिद्धान्त एवं व्यवहार के प्रारम्भिक बिन्दु है। गांधी जी व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार शिक्षा को मानते थे और मानव की भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए उतना ही महत्वपूर्ण मानते थे, जितना कि बालक के शारीरिक विकास के लिए मां का दूध। इसीलिए उन्होंने एक निश्चित आयु तक के बच्चों के लिए सामान्य शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करने पर बल दिया और उसे निःशुल्क करने की बात कहीं। क्योंकि गांधी जी मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे इसलिए उन्होंने हस्तकौशल की शिक्षा पर विशेष बल दिया। इस से अपने शैक्षिक विचार के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप निर्धारित किया और उसे बेसिक शिक्षा नाम से प्रस्तुत किया। अतः हम गांधी जी के शैक्षिक विचारों को निम्न पहलुओं के आधार पर संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे है–

1. शिक्षा का अर्थ

गांधी जी लिखते हैं–"साक्षरता न तो शिक्षा का आरम्भ है और न अन्त। यह विभिन्न साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा पुरूषों व स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है।" शिक्षा द्वारा बालक का सम्पूर्ण विकास गांधी जी करना चाहते थे। क्योंकि सम्पूर्ण विकास होने पर बालक पूर्ण मनुष्य कहलाने योग्य बनता है। सम्पूर्ण विकास से आशय–बालक के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि विविध पहलुओं का विकास। गांधी जी ने 3R (Reading, Writing and Arithmetics) की शिक्षा को 3H (Hand, Head and Heart) की शिक्षा में बदल दिया और कहा कि शिक्षा का कार्य मनुष्य को केवल पढ़ना, लिखना, और गणित सिखाना ही नहीं है अपितु उसके मस्तिष्क व हृदय का विकास करना भी है। गांधी जी के शब्दो में–"शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वोत्तम गुणों का सर्वागींण विकास से है।"

शिक्षा के प्रति बड़ा ही यथार्थवादी विचार गांधी जी का था। वे भारत में शिक्षा के द्वारा आत्मनिर्भरता लाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने हस्तकला व शिल्पकला को बेसिक शिक्षा का आधार माना। नैतिक शिक्षा और चारित्रिक शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा के साथ देने के पक्ष में थे।

2. शिक्षा के उद्देश्य

उद्देश्य दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार निर्धारित होते हैं। ये विचार समय परिस्थिति देश के अनुसार बदलते रहते हैं इसी कारण से शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते है। गांधी जी ने देश की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को समझते हुए उसी के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये। इनके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है–

(i) नैतिक एवं चारित्रिक निर्माण

गांधी जी चरित्र निर्माण को शिक्षा का सर्वोच्च मानते है। वे लिखते हैं– "मैंने सदा हृदय की संस्कृति अथवा चरित्र को प्रथम स्थान प्रदान किया। मैने चरित्र को बालकों की शिक्षा की उचित नींव माना और यदि नींव मजबूत पड़ जाए तो अन्य बातें, मित्रों आदि की सहायता से बच्चे स्वयं सीख सकते हैं।" गांधी जी ने साहस, शक्ति, परोपकार, दृढ़ता, प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति आदि अनेक मानवीय गुणों के विकास को पुस्तकीय शिक्षा से कही अधिक महत्वपूर्ण माना है। इसलिए गांधी जी कहते थे कि समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना होना चाहिए व्यक्तित्व में पवित्रता को समस्त चरित्र निर्माण का आधार होना चाहिए। चरित्र बिना पवित्रता व पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।

(ii) शारीरिक विकास

मनुष्य जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति बिना शारीरिक विकास के सम्भव नही है। अतः इसका विकास अवश्य होना चाहिए। गांधी जी ने अपने विद्यालयी जीवन में ही इस उद्देश्य की आवश्यकता अनुभव कर ली थीं गांधी ने इसे आत्मिक विकास के लिए भी आवश्यक समझा।

(iii) मानसिक एवं बौद्धिक विकास

जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए मां की दूध की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए शिक्षा (बौद्धिक अभ्यास) की आवश्यकता होती है। गांधी जी के अनुसार शरीर के साथ–साथ मन का विकास भी आवश्यक है।

(iv) जीविकोपार्जन का उद्देश्य

गांधी जी बालक को आत्मनिर्भर बनाने के लिए व्यावसायिक शिक्षा देना चाहते थे। गांधी जी ने कहा है कि शिक्षा को बालकों की बेरोजगारी के विरूद्ध एक प्रकार का बीमा होना चाहिए। वह यह जानते थे कि जब तक रोटी, कपड़ा व मकान की समस्या हल नहीं होगी तब तक व्यक्ति अपना विकास नहीं कर सकता। इसलिए गांधी जी ने बालको को हस्तकला व शिल्पकाला की शिक्षा देकर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया, जिससे स्कूल छोड़ने पर बह माता–पिता अथवा समय पर भान न बन सके।

(v) सांस्कृतिक विकास

गांधी जी ने जीविकोपार्जन के उद्देश्य के साथ–साथ सांस्कृतिक विकास को भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते हुए कहा कि "मैं साहित्यिक पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ।" संस्कृति को वे बालिकाओं के लिए आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार– "संस्कृति नीव है, प्रारम्भिक वस्तु है, तुम्हारे सूक्ष्म व्यवहार से प्रकट होना चाहिए अर्थात् उठने, बैठने, पहनने, ओढ़ने खाने पीने, बालने आदि दैनिक व्यवहार में संस्कृति की झलक मिलनी चाहिए।"

(vi) पूर्ण विश्वास

31 जुलाई और 11 सितम्बर 1937 के हरिजन नामक पत्रिका में गाँधी जी ने कहा है कि– "वास्तविक शिक्षा वह है जो बालको की आध्यात्मिक बौद्धिक व शारीरिक क्षमताओं को उनके अन्दर से बाहर प्रकट करे और उद्दीप्त करें।" इस प्रकार से शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास करना चाहिए।

(vii) मुक्ति का उद्देश्य

गांधी जी प्राचीन शिक्षा के उद्देश्य–'सा विद्या या विमुक्तयें के समर्थक थे। वे व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे। मुक्ति का अर्थ है व्यक्ति को सांसारिक बंधनों से मुक्त करना व उनकी आत्मा के उत्तम जीवन की ओर ले जाना।

(viii) सर्वोच्च उद्देश्य

गांधी जी ने सर्वोच्च एवं अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति या ईश्वर की प्राप्ति माना है। आत्मानुभूति अर्थात स्वयं की आत्मा का ज्ञान तभी सम्भव है जब व्यक्ति का सर्वागींण विकास हसे जाय। यही वह उद्देश्य है जिसके द्वारा हम ईश्वर या अन्तिम सत्ता का साक्षात्कार कर सकते हैं।

3. पाठ्यक्रम

गांधी जी कहते थे कि पाठ्यक्रम ऐसा नहीं होना चाहिए कि बालक का सिर्फ बौद्धिक विकास हो बल्कि ऐसा हो जिसके द्वारा शारीरिक व आध्यात्मिक विकास भी सम्भव हो। इसीलिए बेसिक शिक्षा में क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या को स्थान दिया है। क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या देश की आधारभूत आवश्यकताओं एवं वर्गविहीन समाज के लिए आवश्यक है। गांधी जी ने बेसिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) की पाठ्यचर्या में हस्तकौशल एवं उद्योग को प्रमुख स्थान दिया। फिर क्रमशः मातृभाषा हिन्दुस्तानी, व्यावहारिक गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, संगीत, चित्रकला, स्वास्थ्य शिक्षा एव आचरण की शिक्षा को रखा। प्रथम कक्षा से लेकर पांचमी कक्षा तक के छात्र–छात्राओं के लिए एक समान पाठ्यक्रम होना चाहिए। इसके बाद बालकों को कृषक की तथा बालिकाओं को गृहविज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। इसकी पाठ्ययोजना प्राथमिक तथा लघु माध्यमिक स्तर तक ही सीमित है।

4. शिक्षण विधि

गांधी जी प्रचलित शिक्षण विधियों से संतुष्ट नहीं थे उनका मानना था कि शिक्षा विधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें छात्र सक्रिय रहकर निरीक्षण करे तथा प्रयोग के बाद अनुसंधान करे। बालकों को किसी भी विषय की शिक्षा व्यावसायिक रूप में देनी चाहिए। क्योंकि बालक स्वभाव से क्रियाशील होते हैं। इस तरह से शिक्षक व छात्र दोनो ही संक्रिय रहेंगे। प्रमुख शिक्षा विधियां निम्न है–

(i) क्रियात्मक विधि–

गांधी जी ने अपनी शिक्षा योजना में हस्त शिल्प को प्रमुख माना था। क्रियात्मक ढंग से ही किसी विषय या कला कौशल की शिक्षा देनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो बालकों को स्वयं करके, अनुभव करके सीखने पर बल देना चाहिए ऐसा गांधी जी का मानना था। खेल विधि व प्रयोग विधि एक तरह की क्रिया विधि है। कला संगीत, हस्तकौशलों के लिए इन विधियों के प्रयोग पर बल देते थे।

(ii) अनुकरण विधि

बालक शुरूआत में अनुकरण द्वारा ही सीखता है क्योंकि अनुकरण बच्चों की एक स्वाभाविक क्रिया होती हे। अच्छे आचरण के लिए गांधी जी इस विधि को सर्वोच्च मानते थे। माता–पिता और शिक्षक को बालक के सामने सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए जिससे बालक उसका अनुसरण कर अच्छे आचरण सीख सकें। ऐसा गांधी जी का मानता था।

(iii) . मौखिक विधि

इसके अन्तर्गत प्रश्नोत्तर व्याख्यान, वाद–विवाद आदि विधियां आती हैं।

(iv) . सहसम्बन्ध विधि

पाठ्यचर्या के समस्त विषयों एवं क्रियाओं को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने की विधि को सहसम्बन्ध विधि कहते हैं। इस विधि में बच्चे अपने वास्तविक जीवन की वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं और इस प्रकार स्वाभाविक रूप से सीखते हैं इस प्रकार सीखने में बालकों की शारीरिक व मानसिक क्रियाओं के समन्वय होता है ओर वे वास्तविक जीवन के लिए तैयार होते हैं।

(v) श्रवण, मनन, निदिध्यासन–

यह प्राचीन शिक्षा विधि है। इसमें सर्वप्रथम छात्र श्रवण करते थे शिक्षक के मौखिक उपदेश सुनते थे, फिर उस पर चिन्तन करते थे। अन्त में उसका अभ्यास करते है। धर्म एवं दर्शन जैसे विषयो में इस विधि की उपयोगिता है।

5. शिक्षक

गांधी जी ने शिक्षक के विषय में लिखा है कि शिक्षक को विद्वान, आदर्श चरित्र युक्त एव सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए। शिक्षा व्यवसाय को सेवा कार्य के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति ही आदर्श शिक्षक हो सकता हैं क्योंकि आदर्श शिक्षक के लिए त्याग एवं सेवाभाव आवश्यक है। शिक्षक को सहिष्णु, निष्पक्ष, धैर्यवान, अध्ययनशील होना चाहिएं। क्योंकि शिक्षक को पिता, मित्र, पथ–पदर्शक एवं सहयोगी आदि रूपों में कार्य करना पड़ता है।

6. छात्र

गांधी जी शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु छात्र को मानते थे। गांधी के अनुसार छात्रों को अनुशासित रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके अलावा छात्रों को जिज्ञासु, लगनशील एवं स्वाध्यायी होना चाहिए। गांधी जी के शब्दों में– छात्रों को अपने विचार भीतर खोजना चाहिए और अपने व्यक्तिगत चरित्र की देखभाल करना चाहिए। विचार के बिना चरित्र की शिक्षा किस काम की।' इस प्रकार गांधी जी सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श पर छात्रों को ढालना चाहते है।

7. अनुशासन

दमनात्मक रूप अनुशासन प्राप्ति के लिए सही नहीं है। केवल प्रभावात्मक अनुशासन द्वारा ही सच्चा अनुशासन प्राप्त किया जा सकता है। गांधी जी का विश्वास

था कि उच्च आदर्श एवं उत्तम आचरण का अनुशरण करके बच्चे उच्च आदर्श एवं उत्तम आचरण ग्रहण करेगें।

8. विद्यालय

गांधी जी के विचार विद्यालय के सम्बन्ध में प्रयोजनवादी विचार धारा से मिलते जुलते हैं। वे सर्वांगीण विकास हेतु सामुदायिक जीवन का केन्द्र विद्यालय को बनाना चाहते थें जहां पर शिक्षक सेवाभाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और उनके तथा विथार्थियों के संयुक्त प्रयास से इनमें उत्पाद कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो।

3.4.3 गांधी जी के शिक्षा दर्शन का वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य :

गांधी जी ने सत्य, अहिंसा और ईश्वर के सम्प्रत्यय के माध्यम से ऐसे विचार–दर्शन को खड़ा किया, जिसके आगे ब्रिटिश साम्राज्य टिक नहीं पाया। अपने विचारों को बुनियादी शिक्षा के माध्यम से देश के सामने प्रस्तुत किया। जो कतिपय राजनैतिक झंझावत से प्रभावित हुए ओर पुरी तरह क्रियान्वित नहीं हो सके। इस अनुपम शिक्षा योजना के तत्व बार–बार अनेक रूपों में स्वतंत्र भारत के शिक्षा आयोगों और शिक्षा नीतियों के माध्यम से हमारे सन्मुख प्रकट होते रहे है।

गांधीवाद के विषय में गांधी जी ने स्वयं लिखा है कि आप मेरे विचारों को गांधीवाद का नाम न दें, क्योंकि इसमें वाद जैसा कुछ भी प्रतिपादित नहीं है। मैंने तो विभिन्न धर्मों से प्राप्त शाश्वत सत्य को जीवन की समस्याओं के समाधानार्थ प्राप्त कर अपने तरह से प्रस्तुत करने का प्रयासमात्र किया है। इसमें नया तत्व या नया सिद्धान्त नहीं है, जिससे किसी 'वाद' का दावा किया जा सके।

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक के.एल. मशरूवाला के शब्दों में गांधीवाद किसी समाज व्यवस्था की प्रणाली का सूचक नहीं वर्‌न एक कार्यपद्धति का सूचक है।

गांधी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद एवं मानवतावाद का अनूठा संगम मिलता है। उन्हें जीवन के अन्तिम लक्ष्य सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा के परिप्रेक्ष्य में आदर्शवादी, बालक को उसकी प्रकृति के अनुरूप विकसित करने में प्रकृतिवादी तथा रुचि एवं सामाजिक अपेक्षा में सामंजस्य स्थापन हेतु प्रयोजनवादी तथा मानव की सेवा के प्रति समर्पण भाव के कारण मानवतावादी की श्रेणी में रखा जाता है।

वर्तमान युग में भारतीय विचारधारा तथा जनमानस को जिन तत्वों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है उनमें गांधी जी का सर्वोदय दर्शन महत्वपूर्ण स्थान रखता है, आज भी हम गांधी जी के विचारों की महत्ता को स्वीकार करते हैं तथा इनको ग्रहण

करके भविष्य के प्रति भी आशान्वित होते हैं। वर्तमान संदर्भ में भी गांधी जी का दर्शन निम्न परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है–

1. गांधी जी ने भारत की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के अनुरुप बुनियादी शिक्षा के माध्यम से ऐसी विचारधारा प्रदान की है जो देश के सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन को पुर्नजीवित करने वाली हैं।

2. वर्तमान व्यावसायिक शिक्षा की संकल्पना उन्हीं से अदभूत हुई है। यद्यपि वर्तमान में इसकी असफलता के राजनीतिक एवं अन्य कारण है तथापि व्यावसायिक शिक्षा की प्रासंगिकता व महत्ता वर्तमान भारतीय जन जीवन में अधिकता से महसूस की जाती है। अतः शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादकता से जोड़ना शीघ्र अपेक्षित है। तभी शिक्षा व्यक्ति में सत्य उद्‌घाटन करने में समर्थ हो सकेगी। इस दृष्टिकोण की आवश्यकता आज सर्वाधिक है।

3. शिक्षा में कार्यानुभव का प्रत्यय आज सभी जगह स्वीकारा जाने लगा है। आज विभिन्न उद्योग कार्यानुभव के रूप में हमारी शिक्षा प्रणाली के अंग बन रहे हैं।

4. माध्यमिक विद्यालयों में गांधी जी के विचार समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के रूप में सर्वत्र व्याप्त है।

5. वर्तमान समय में यह सिद्धान्त सर्वाधिक मान्य है कि पाठ्‌यक्रम का आधार वास्तविक जीवन के अनुभव होने चाहिए। आज ज्ञान को अनुभव से अलग करने की बात को अमान्य ठहराया जाने लगा है।

6. अनुशासन में लोकतंत्र गांधी दर्शन की ही देन है। दमन की तथा दण्ड की विचारधारा अमान्य सिद्ध हुई है। सामाजिक दवाब को प्रोत्साहन मिलता जा रहा है तथा आत्मानुशासन पर बल दिया जा रहा है।

7. गांधी जी के दर्शन का प्रभाव हम विभिन्न शिक्षा आयोगो तथा विभिन्न नीतियों में आध्यात्मिक मूल्य तथा आत्मनिर्भरता के रूप में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। मुद्रालियर आयोग, कोठारी आयोग, शिक्षा नीतियों आदि में भी व्यावसायिक शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ने की बात व्यापक रूप से कही गई है। वर्तमान में छात्रों को शारीरिक दण्ड से दूर रखा गया है तथा आत्म नियंत्रण और आत्मानुशासन पर अधिक बल देने का पक्ष गांधी दर्शन से प्रभावित है।

उसी प्रकार प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा स्तर से ऊपर भी गांधी दर्शन का प्रभाव एवं क्रियात्मक पक्ष दृष्टव्य होता है। उच्च स्तर पर युवा विचारों को दिशा देने में विश्वविद्यालय अधिक प्रभावी हो रहे हैं इसी भावना के अन्तर्गत गांधी जी ने सत्य तथा अंहिंसा के माध्यम से सरल जीवन तथा उच्च विचार का आदर्श स्थापन देश में चार

विद्यापीठों की स्थापना के साथ किया, जिसमें से एक उत्तर प्रदेश में स्थित ज्ञाननगरी वाराणसी की महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ है जो गांधी के विचारो को जीवन्त किए हुए है।

संक्षेप में यह कहना शायद अप्रासंगिक न हो कि वर्तमान में गांधी दर्शन ने आज भी शिक्षा प्रणाली को जितने लम्बे समय तक प्रभावित किया है, शायद ही कोई और विचारधारा इस स्तर को स्पर्श कर सकी है।

3.4.4 सारांश

गांधी जी के शिक्षादर्शन का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि गांधी जी का दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में आदर्शवादी है। हम आदर्शवादी इस लिए कह सकते हैं क्योंकि वह जीवन के अन्तिम लक्ष्य सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है। उनके अनुसार सत्य की प्राप्ति ईश्वर की प्राप्ति हैं सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा, विश्वप्रेम व मानवेसवा ही साधन है। गांधी जी के दर्शन में हमें प्रकृतिवाद की झलक दिखायी देती है। वे रूसो की भांति तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था को दोषपूर्ण मानते थे और पाठ्यपुस्तकों के विरोधी थें। वे कहते थे पुस्तकों में व्यावहारिक ज्ञान का मिश्रण होता है। उनकी बेसिक शिक्षा योजना पूर्णतया क्रिया प्रधान शिक्षा सिद्धान्त पर आधारित थी। वे शिक्षा में स्वतंत्रता तथा आत्मअनुशासन पर बल देते थें

इनके दर्शन में प्रयोजनवाद की भी झलक दिखायी देती है। वे जीवन भर सत्य के लिए प्रयोग करते रहे और न उन्हीं तथ्यों को स्वीकार करते रहे जो प्रयोग की कसौटी पर सत्य उरते थे। प्रयोजनवादियों की भांति शिक्षा को वे जीवन से सम्बन्धित करना चाहते थे। उनकी बेसिक शिक्षा योजना में प्रयोजनवादी सिद्धान्तों की स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है। गांधी जी के दर्शन में यथार्थ की भी झलक दिखाई पड़ती हे। उनका पाश्चात्य शिक्षा का विरोध करना, शिक्षा को भारतीय दर्शन पर आध ाारित करना शिक्षा को जीवन से सम्बन्धित करना, शिक्षा किसी उद्योग के माध्यम से देना उनके यथार्थवादी होने के प्रमाण हैं। श्री ए.एम. पटेल ने कहा है कि गांधी जी का शिक्षा दर्शन अपनी योजना में प्रकृतिवादी, उद्देश्यो में आदर्शवादी और कार्यक्रम एव शिक्षण विधि में प्रयोजनवादी है।

शिक्षा के सम्प्रत्यय से उसके उद्देश्य व कार्य तो स्पष्ट होते है लेकिन उसके स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। ये शिक्षा को एक प्रक्रिया मानते थे। उसे मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया के रूप में ही स्वीकार करते थे लेकिन इन्होंने शिक्षा के गतिशील और विकासशील बिन्दु पर बल कम दिया। यदि इन दो बिन्दुओं पर बल दिये होते तो शिक्षा का स्वरूप आज बदला हुआ दिखायी देता। शिक्षा के सर्व उद्देश्य सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक उद्देश्य है। गांधी जी उस समय शासनतंत्र और नागरिकता

की शिक्षा तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की बात नहीं सोच पाए क्योंकि हमारे देश में उस समय अंग्रेजों का शासन था और केवल हमारे सामने एक ही लक्ष्य था–स्वतंत्रता की प्राप्ति। यदि इन दोनो उद्देश्यों को जोड़ दिया जाय तो आज की शिक्षा के सभी उद्देश्य आ जायेगे।

गांधी जी की पाठ्यचर्या की हम यदि बात करते है तो यह काफी विस्तृत है इन्हौंने मातृभाषा पर विशेष बल दिया गया हैं और उसी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया और स्रबसे अधिक बल हस्त कौशलों को दिया गया। इससें यह बात स्पष्ट होती है कि गांधी जी कुटीर उद्योग धन्धों वाला देश बनाना चाहते थे। उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या के लिए स्पष्ट विचार नही प्रस्तुत किये।

शिक्षा विधि के सम्बन्ध में उनके विचार है कि क्रिया द्वारा सीखना या सहसम्बन्ध विधि द्वारा सीखना अधिक उपयुक्त हैं गांधी जी अनुशासन के सम्बन्ध में बालक को कठोर व दमनात्मक अनुशासन में रखने का समर्थन नहीं करते थे। उनके विचार में बालक को अधिक से अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए जिससे मुक्तात्मक व प्रभावात्मक स्वरूप का अनुशासन स्थापित हो सके।

शिक्षक के सम्बन्ध में गांधी जी की धारणा थी कि उसे मात्र सूचना देने वाला नहीं अपितु एव अच्छा पथ प्रदर्शक एवं आदर्श आचरण वाला होना चाहिए। बालकों के संबंध में गांधी जी के विचार थे–वे ब्रह्मचर्य का पालन, विद्यालयों के नियमों का पालन, समाज सेवा कार्य में भाग, एवं आत्मनिर्भर बने लेकिन वर्तमान युग में उपर्युक्त नियमों के पालन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। विद्यालयों को सामुदायिक केन्द के रूप में विकसित करना ग्रामीण। क्षेत्रों के लिए अच्छा है लेकिन इसी जगह वर्तमान समय में इस रूप में विकसित नहीं किया जा सकता क्योंकि अध्यापक अपने उत्तरदायित्व को ही पूरा नही करते हैं। वर्तमान समय में देश को राष्ट्रीय चरित्र की आवश्यकता है।

अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज के युग में गांधी जी की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है वरन् विशेष रूप से भारत देश के लिए और बढ़ती जा रही है क्योंकि भारत की समृद्धि, सुरक्षा, आत्मनिर्भरता भारतीय ग्रामीण उद्योगों पर यदि निर्भर न हुई, स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन बन्द हुआ, भारतीय कृषि, शिल्प, कुटीर उद्योग यदि समाप्त हुए तो देश स्वतंत्र नहीं रह पायेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

3. सही उत्तर का चयन कीजिए ।

गांधीजी के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव किसका था?

(i) वेद (ii) उपनिशद (iii) गीता (iv) रामायण

4. गांधी जी के अनुसार भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है?

(i)पूजा–पाठ (ii) कर्म काण्ड (iii) भजन कीर्तन (iv) मानव सेवा

3.5 महर्षि अरविन्द घोष

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री कृष्णन घोष कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक थे और पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक थे। इनके घर में नौकर तक अंग्रेजी बोलते थे। परन्तु इनके पिता बड़े दयालु प्रवृत्ति के थे। ऐसे परिवार में इनका लालन–पालन हुआ। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप शिक्षा दीक्षा ग्रहण करने के लिए इनके पिता ने इन्हे इंग्लैण्ड भेंज दिया, जहाँ इन्होने लन्दन तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की। कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न अरविन्द ने न केवल विभिन्न भाषाओं में प्रवीणता हासिल की, वरन् 1890 में आई.सी.एस. की लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण हुए लेकिन जानबूझकर घुड़सवारी की परीक्षा में सम्मलित नही हुए और परिणामस्वरूप अनुत्तीर्ण घोषित कर दिए गए। 1893 में श्री अरविन्द भारत वापिस आ गए। वापस आने के बाद श्री अरविन्द ने कालेज व विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया, साथ–साथ लेखन कार्य में भी लगे रहे। कुछ समय तक इन्होने वन्देमातरम व युगान्तर पत्रों का सम्मादन किया। 1910 में आप पाण्डिचेरी चले गए। वहा अपने विचारो को व्यावहरिक रूप देने के लिए आपने 1926 में एक आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की जो अरविन्द आश्रम के नाम से विख्यात हुआ। लगभग 40 वर्षो तक सर्वाग योग साधना में रत रहन के पष्चात 5 दिसम्बर 1950 को इस यहयोगी ने महासमाधि ली।

श्री अरविन्द गीता के अनन्य भक्त थे। ये गीता के कर्म एव ध्यान योग की वैज्ञानिक व्याख्या की है। इनकी दृष्टि से मानव एवं दिव्य शक्ति का संयोग ही योग है। दूसरो शब्दो में योग वह साधन है जिससे मानव दिव्य शक्ति की अनुभूति करता है। श्री अरविन्द मानव को योग द्वारा आत्मतत्व की अनुभूति कर ब्रम्हा में लीन होने का उपदेश नही देते थे बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति को अज्ञान अधंकार और मृत्यु से ज्ञान प्रकाश और अमरत्व की ओर ले जाना चाहते थे। इसीलिए इनकी विचार धारा को सर्वाग योग दर्शन कहा जाता है।

3.5.1 दार्शनिक विचार

इनके अनुसार इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है। इसकी व्याख्या अरविन्द ने विकास सिद्धान्त के आधार पर की है। उनके अनसार विकास की दो दिशाएं है

अवरोहण और आरोहण। अवरोहण के सात सोपान बताएं हैः सत्→चित→आनन्द → अतिमानस → मानस→प्राण→द्रव्य। ब्रह्म अवरोहण द्वारा वस्तु जगत का रूप धारण करता है। मनुष्य अपने द्रव्य रूप से आरोहण द्वारा सत् की ओर बढ़ता है। आरोहण के भी सात सोपान है; द्रव्य →प्राण →मानस →अतिमानस →आनन्द →चित्त →सत। ब्रम्हा को ये सत् और ईश्वर को सत्–चित्–आनन्द के रूप में स्वीकार करते थे। आत्मा को अरविन्द ने गीता के पुरूष रूप में स्वीकार किया है।

मनुष्य को इन्होने विकसित प्राणी के रूप में लिया है। इनके अनुसार जन्म से विकास के दो सोपान पार कर मानस सोपान पर पैदा होता है, जन्म के बाद उसे अतिमानस, अतिमानस से आनन्द, आनन्द से चित्त और चित्त से सत की ओर बढ़ता है। इनके अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उददेश्य सत चित आनन्द अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति ही होता है।

इनके अनुसार मनुष्य के भौतिक विकास के लिए द्रव्य ज्ञान आवश्यक होता है जो इन्द्रियो द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। और आत्मिक विकास के लिए आत्म ज्ञान आवश्यक होता है जो योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

इनके अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनो तत्वो में मूल तत्व ब्रम्हा ही है। इसलिए भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वो के अभेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। इन्होंने प्रयोग के रूप में ज्ञान को दो भागों में **वांटा**–द्रव्यज्ञान और आत्मज्ञान। द्रव्यज्ञान (जगत ज्ञान) को मे साधारण ज्ञान मानते थे और आत्मज्ञान को उच्च ज्ञान।

श्री अरविन्द ने आरोहण के सात सोपान बताए है, द्रव्य→प्राण→ मानस→ अतिमानस→आनन्द→चित्त→सत। इनके अनुसार मनुष्य जन्म से ही द्रव्य प्राण और मानस के सोपानों को पार कर चुका होता है। जन्म के बाद उसे अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर, आनन्द की प्राप्ति करनी होती है। इनके अनुसार मनुष्य जीवन **का अन्तिम** उद्देश्य आनन्द+चित्त+सत की प्राप्ति है।

3.5.2 श्री अरविन्द का शैक्षिक चिन्तन

इन्होने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचार अपनी दो पुस्तकों National System of Education और of Education में दिये हैं।

2. शिक्षा का सम्प्रत्यय

इनका विश्वास था कि मनुष्य द्रव्य और प्राण की अवस्था को पार कर मानस की अवस्था में होता है। जन्म के बाद उसे अतिमानस की अवस्था, उससे आनन्द, आनन्द से चित्त, चित्त से सत की अवस्था पर पहुँचना होता है। उसे इस विकास की ओर अग्रसर

करना चाहें तो हमें ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वह अपने द्रव्य प्राण एवं मानस स्वरूप को जाने और उनकी ओर बढ़ने की विधियों को जाने। उनके अनुसार यह सब कार्य शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। एक ऐसी शिक्षा द्वारा जो मनुष्य का भौतिक, प्राणिक, मानसिक अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक विकास करे। ऐसी शिक्षा को ये सम्पूर्ण शिक्षा कहते हैं।

अरविन्द के अनुसार : "शिक्षा मानव के मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती हैं और उसमें ज्ञान चरित्र और संस्कृति को जागृत करती है।

2. शिक्षा के उददेश्य :–

इनके अनुसार शिक्षा के दो मुख्य कार्य है पहला मनुष्य को उसके अपने विकास क्रम (आध्यात्मिक) का स्पष्ट ज्ञान कराना और दूसरा उसमें सत तक पहुचने की शक्ति का विकास करना।

शिक्षा के निम्न उददेश्य है–

- भौतिक विकास का उददेश्य
- **प्राणिक विकास का उद्देश्य–** मानव विकास का दूसरा सोपान है–प्राण, प्राण का अर्थ उस शक्ति से है जिसके कारण जगत में परिवर्तन होता हैं।
- **मानसिक विकास का उद्देश्य :–** मन अर्थात् मानस मनुष्य के विकास का तीसरा सोपान है। मन हमारी सत्ता का सबसे चंचल भाग हें। मन की शिक्षा के पाच अंग होते है–

i). एकाग्रता की शक्ति को जागृत करना।

ii). मन की व्यापकता एवं समबद्धता बढाना।

iii). उच्चतम लक्ष्य की और समस्त विचारों को संगठित करना।

iv). विचारों को संयमित करना।

v). अनिष्ट विचारों का त्याग और मानसिक स्थिरता का विकास करना

अन्तरात्मिक विकास का उद्देश्य

अतिमानस अर्थात मनुष्य का अन्तःकरण मानव विकास का चौथा सोपान है। अन्तःकरण के चार स्तर बताये हैं–चित्त, बुद्धि मन और अन्तर्ज्ञान।

आध्यात्मिक विकास का उददेश्य :–

मानव विकास के अन्तिम तीन सोपान है आनन्द, चित्त और सत्। उनके अनुसार शिक्षा का यह अन्तिम उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा की पाठ्यचर्या:–

इन्होने एक विस्तृत एवं समन्वित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की। भौतिक विकास के लिए ये पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी को आवश्यक समझते थे। पाठ्यचर्या को हम निम्न रूप में क्रमबद्ध कर सकते है–

i) **भौतिक विषय :–** मातृभाषा एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, कला आदि।

ii) **भौतिक कियाएः–** खेलकूद, व्यायाम, उत्पादन, कार्य, शिल्प

iii) **आध्यात्मिक विषय :–** वेद, उपनिषद, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र।

iv) **आध्यात्मिक कियाए :–** भजन, कीर्तन, ध्यान, योग

श्री अरविन्द आश्रम में इनको निम्न रूप में रखा गया

A) **प्राथमिक स्तर :–** मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेच, सा0विज्ञान, गणित, सा0 अध्ययन, चित्रकला, खेलकूद, व्यायाम, भजन, कीर्तन।

B) **माध्यमिक स्तर :–** मातृभाषा, अंग्रेजी, फेंच गणित भौतिक, रसायन, जन्तु वनस्पति, स्वास्थ्य विज्ञान आदि।

c) **उच्च स्तर :–** विज्ञान का इतिहास, सभ्यता का इतिहास, जीवन का इतिहास समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, कृषि, शिल्प, भजन, कीर्तन, ध्यान, योग।

4. शिक्षण विधियां :–

शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में अरविन्द के विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है। कहीं यें प्राचीन विधियों का समर्थन करते नजर आते हैं, और कहीं अर्वाचीन विधियों के प्रयोग पर बल देते हैं। ये रटने के कट्टर विरोधी थे, इन्होंने रटने के स्थान पर समझाने पर बल दिया। योग विधि को इन्होने सीखने की उत्तम विधि माना है।

ये उपदेश प्रवचन, व्याख्यान और अन्य मौखिक विधियो के प्रयोग की स्वीकृति तो देते थे, लेकिन इस शर्त के साथ कि बच्चो को रटाया नहीं जायेगा। ये प्राथमिक स्तर पर कहानी विधि का प्रयोग करने की बात करते थे।

1. अनुशासन :–

अरविन्द के अनुसार स्वेच्छा से कर्तव्य पालन करना ही अनुशासन है। शिक्षा के क्षेत्र में भी अनुशासन का बड़ा महत्व होता है। अनुशासन के विशय में अरविन्द के अपने विचार हैं। अनुशासन का सम्बन्ध ये भावना से जोड़ते थे और भावना का सम्बन्ध नैतिकता से। प्रत्येक शिक्षक का यह दायित्व है। कि वह बच्चों के मन में ऐसी भावना भरे

कि वे अच्छाई की ओर अग्रसर हों, नैतिकता का पालन करें और अध्ययन में एकाग्रता से लगें।

कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नही की जा सकती। दण्ड को ये अमानवीय कृत्य कहते है। इसलिए शिक्षकों को बच्चो के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

श्री अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास करते थे। इनके अनुसार शिक्षकों को बच्चों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए। इनकी दृष्टि से वास्तविक अनुशासन आन्तरिक अनुशासन होता है।

6. शिक्षक :–

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षक का स्थान बच्चे के पथ प्रदर्शक और सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षक न तो बच्चो को ज्ञान दिया है और न ही उनके अन्दर के ज्ञान को विकसित–करता है अपितु बच्चो की इस बात में सहायता करता है कि वे स्वयं ज्ञान को प्राप्त करें और अपने अन्दर के ज्ञान को विकसित करें। यह कार्य वही शिक्षक कर सकता है जिसे शिक्षार्थी और पाठ्यचर्या दोनो का पूरा–पूरा ज्ञान हो।

एक अध्यापक को व्यक्ति की आत्मा को आगे बढानें वाला होना चाहिए। यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जिसे अध्यात्म विषय का स्पष्ट ज्ञान हो। योग में प्रशिक्षित हों, श्री अरविन्द शिक्षक को इही रूप में देखना चाहते थे। ये शिक्षक को एक योगी बना देना चाहते थे।

7. शिक्षार्थी :–

श्री अरविन्द शिक्षार्थी को शिक्षा का केन्द्र मानते थे। शिक्षा की व्यवस्था करते समय बच्चो की व्यक्तिगत, रूचि, रुझान और योग्यताओं का ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक शिक्षार्थी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। और सत्य ज्ञान की खोज के लिए साधना करनी चाहिए। अरविन्द बालक के पर्यावरण के प्रश्राव को स्वीकार करते थे।

8. विद्यालय :–

श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालय को बच्चों के भौतिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होना चाहिए, ये भौतिक विकास के लिए संसार के श्रेष्ठ भाषाओं साहित्य, सभ्यता संस्कृति, गणित, विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध करने, आध्यात्मिक विकास के लिए बच्चों को श्रम करने, कर्तव्य पालन करने पर बल देते थे। विद्यालय भौतिक प्रगति और योग साधना को केन्द्र होना चाहिए।

विद्यालय में योग्यतानुसार प्रवेश के समान अवसर और उन्हे अपनी भाषा, धर्म संस्कृति के अध्ययन के लिए सुविधाए प्रदान की जानी चाहिए। शिशु शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा का वर्णन अरविन्द ने निम्न रूप में किया है:–

i) शिशु विहार (किण्डर गार्डन, शिशु स्तर) आयु 3–5, पाठयक्रम 3 वर्ष

ii) भविष्य (आवनी, प्राथमिक स्तर) आयु 6–8, पाठयक्रम 3 वर्ष

iii) प्रगति (प्रोगेसिव, उच्च स्तर) आयु 9–11, पाठयक्रम 3 वर्ष

iv) पूर्वता की ओर (माध्यमिक स्तर) आयु 12–17, पाठयक्रम 6 वर्ष

v) उच्चर्या (हायर कोर्स, उच्च स्तर) आयु 18–20, पाठयक्रम 3 वर्ष

प्रथम तीन स्तरों पर शिक्षा का माध्यम फ्रेंच, अन्तिम दो स्तरों पर फ्रेंच और अंग्रेजी दो भाषाए है। शिक्षा की मुक्त प्रणाली थी। किसी प्रकार की परीक्षाए नहीं होती थी शिक्षकों की संस्तुती पर छात्रों को आगे अध्ययन में प्रवेश दिया जाता था। किसी प्रकार का प्रमाण पत्र नहीं दिया जाता था।

3.5.3 श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन का मूल्यांकन–

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन कुछ निश्चित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा विकास की प्रक्रिया है यह विकास किस प्रकार का हो, यह समाज अथवा राष्ट्र विशेष की तत्कालीन परिस्थितियों एवं भविष्य की आकांक्षाओं, सम्भावनाओं पर निर्भर करता है। तब किसी शैक्षिक चिन्तन अथवा व्यवस्था का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए।

श्री अरविन्द ने शिक्षा का जो अर्थ दिया है उसमें दो दोष नजर आते है एक तो इसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट नही किया गया है और दूसरा यह कि इसमें उसको वो भी अपने कुछ विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है जो सामान्य मनुष्य की पहुंच के बाहर है।

श्री अरविन्द ने शिक्षा के उद्देश्य जो निर्धारित किये हैं वे निम्न है: भौतिक विकास, प्राणिक विकास, मानसिक विकास, अन्तरात्मिक विकास आध्यात्मिक विकास के उद्देश्य। इसमें शिक्षा के सभी उद्देश्य निहित है लेकिन सीधी बात को उलझे रूप में रखकर उलझन पैदा की है। आज की भाषा के रूप में हमें कहना चाहिए कि शिक्षा एक वहुउद्देशीय प्रक्रिया है। जिसके द्वारा मनुष्यों का शारीरिक मानसिक सांस्कृतिक नैतिक चारित्रिक व्यावसायिक विकास किया जाता है।

श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तुत पाठ्यचर्या को ध्यान पूर्वक देखा समझा जाए तो इन्होने शिक्षा की पाठ्यचर्या को बहुत विस्तृत रूप प्रदान किया है उसमें प्राचीन अर्वाचीन,

भारतीय और पाश्चात्य सभी ज्ञान और क्रियाओं को स्थान दिया है परन्तु प्रारम्भ से ही बच्चो को मातृभाषा के साथ अंग्रेजी और फेंच भाषा को पढाने का कोई औचित्य नही है।

शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में अरविन्द के विचार पूर्णरूप से स्पष्ट नही है। इस बात से कौन असहमत होगा कि बच्चों को रटने के स्थान पर समझने की ओर अग्रसर होना चाहिए। उनका यह विचार भी सही है कि योग विधि समझने की उत्तम विधि है, पर वर्ममान में योग को मन की एकाग्रता के रूप में ही लिया जा सकता है कर्म या ध्यान योग के रूप में नहीं।

अनुशासन के विषय में श्री अरविन्द ने कहा है कि स्वेच्छा से कर्तव्य पालन करना ही सच्चा अनुशासन है। इन्होनें अनुशासन बनाये रखने के लिए बच्चों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करने को कहा और कहा कि कठोरता से वास्तविक अनुशासन की प्राप्ति नही की जा सकती। लेकिन यदि बच्चे अनुशासन हीनता करें तो केवल प्रेम और सहानुभूति से काम नहीं चलता, कभी–कभी कुछ दण्ड भी देना आवश्यक होता है, पर दण्ड सीमित व प्रेम पर आधारित होना चाहिए।

श्री अरविन्द शिक्षक को बच्चो के स्वतंत्र विकास में पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करते थे। ये शिक्षक को योगी बनाने की बात करते है परन्तु शिक्षकों से योगी होने की अपेक्षा भी इस युग मे सम्भव नही है। वे अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन करें और बच्चों को जीवन के लिए तैयार करें यही बहुत है।

श्री अरविन्द बच्चों से ब्रह्मचर्य के पालन और सत्य ज्ञान की खोज के लिए साधना की अपेक्षा करते थे। जहाँ तक बच्चों को ब्रह्मचर्य पालन के उपदेश की बात है यह एक दम सही है, पर प्रारम्भ से ही वास्तविक सत्य की खोज के लिए योग साधना की बात आज के युग में व्यावहारिक नही है।

श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालय योग साधना के केन्द्र होने चाहिए, पर उनका मत है कि जब तक मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक विकास में सन्तुलन नहीं किया जाता तब तक वास्तविक सुख व शान्ति प्राप्ति नही हो सकती। विद्यालयों में प्रारम्भ से ही बच्चों के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

श्री अरविन्द शिक्षा को धर्म पर आधारित करना चाहते थे, परन्तु वर्तमान लोकतन्त्रीय धर्मनिरपेक्ष भारत में शिक्षा को किसी धर्म विशेष पर आधारित करना सम्भव नहीं है।

3.5.4 श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन का वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य

श्री अरविन्द का चिन्तन मौलिक है जो विकास वाद के आदर्श सिद्धातों पर टिका हुआ है। उनके शैक्षिक आदर्श ठोस मनोवैज्ञानिक आधारो पर आधारित है। इन्होने पाश्चात्य दर्शन की अच्छाइयों को लेकर भारतीयता को सुदृढ बनाने का प्रयास किया है। श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय एकता के परिपेक्ष्य में संश्लिष्ट दृष्टि पर आधारित एक ऐसा वैचारिक धरातल प्रस्तुत किया जिसमें यथार्थवाद भविष्यवाद एवं आदर्शवाद का अनूठा संगम है। विज्ञान एवं अध्यात्म को समन्वित करता हुआ यह विचार क्रम बालकों को स्वास्थय के प्रति सजग रखते हुए उनके सर्वागीत विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। वर्तमान की परिस्थतियां कल की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न हैं ऐसे में बालकों को प्रारम्भ से ही शिक्षित करने हेतु इन्द्रियो एवं मानसिक विद्याओं का विकास उचित प्रतीत होता है। श्री अरविन्द ने बहु–आयामी अवधान के माध्यम से विद्यार्थियों के लिए अधीकाधिक अधिगम उपलबिध का मार्ग प्रशस्त किया।

श्री अरविन्द ने सुखमय जीवन यापन हेतु आवश्यकतानुसार शिक्षा अपनाए जाने पर बल दिया है जो आज भी ग्राह्य है। शिक्षा व्यवास्था में बालकों के विकास निमित्त 3A (Age, Ability and Aptitude) सूत्र को अपनाए जाने पर प्रमुखता से बल दिया।

वर्तमान में भौतिकतावाद की चतुर्दिक व्याप्ति के दुष्परिणामों के बीच आध्यात्मिकता का वरण व्यक्ति व मानवता के कल्याणार्थ अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। उच्च्व शिक्षण संस्थानों में बढ़ते हुए मानसिक प्रशिक्षण योग साधना के केन्द्रो की संख्या में निरंतर बृद्धि श्री अरविन्द के दर्शन की उपादेयता को प्रकट करती है।

अपने प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत अरविन्द ने ज्ञानोद्रियो के प्रशिक्षण पर बल दिया। शिक्षा में ऐसी आवश्यकता का रेखांकन किया जो बालक को प्रयोजनवादी परिप्रेक्ष्य में जीवन की आवश्यकताओं से परिचित कराए। एक यथार्थवादी के रूप में वे आधुनिक जीवन की उपेक्षा नही करते और यह कहते हैं कि इसी संसार में रहकर यहीं कर्म करते हुए मुक्ति पाई जा सकती है। स्पष्टतः समस्त दार्शनिक विचारो का समन्वय करते हुए श्री अरविन्द ने विश्व के समक्ष सर्वांग दर्शन का वैचारिक घरातल प्रस्तुत किया।

3.5.5 सांराशः–

स्पष्ट है कि दार्शनिक के रूप में श्री अरविन्द ने भारत में जिस सर्वांग योग दर्शन का विकास किया वह कुछ लोगों को बड़ा भाया। मानव विकास को आरोहण और अवरोहण में प्रस्तुत करके उलझन पैदा की है। श्री अरविन्द ने शिक्षा की मुक्त प्रणाली का श्री गणेश किया जो अपने में स्वीकार करने योग्य नहीं है। औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था उसी दशा में की जा सकती है जब उसके उद्‌देश्य, पाठयचर्या, शिक्षण विधि आदि सभी निश्चित हो। इस सबके अभाव में किसी भी समाज में शिक्षा को व्यवस्थित

रूप से नहीं चलाया जा सकता। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा की मुक्त प्रणाली को जन शिक्षा का आधार नही बनाया जा सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये खाली स्थान का प्रयोग कीजिए।

5. सही उत्तर का चयन कीजिए–

श्री अरविन्द ब्रह्म को किस रूप में मानते थे?

i) शून्य ii) सत्य iii) सत्+चित iv). सत्+चित्+आनन्द

6. श्री अरविन्द राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र कहाँ स्थापित है?

i) चेन्नई ii) पाण्डिचेरी iii) शान्तिनिकेतन iv) शान्तिकुंज

3.6 जे. कृष्णमूर्ति

जिद्दू कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 में आन्ध्र प्रदेष के चिन्तूर जिले के मदनपल्ली नामक स्थान में हुआ था। आपकी माता जिद्दू संजीवम्मा मृदुभाषिणी, धर्मपरायण और कृष्ण भक्त महिला थी तथा पिता जिद्दू नारायनीय एक अवकाश प्राप्त सिविल सर्वेन्ट के साथ–साथ पुराने थियोसोफिस्ट भी थे। अपने माता–पिता की धार्मिक प्रवृत्ति, माताश्री का श्रीकृष्ण के प्रति अटूट भक्तिभाव, माता–पिता की आठवी संतान होने और श्रीकृष्ण जैसे परिस्थिति में जन्म लेने के कारण वे श्री कृष्ण की प्रतिमूर्ति समझे जाने लगे और जिद्द कृष्णमूर्ति के नाम से विख्यात हुए। बालक कृष्णमूर्ति की गहरी आध्यात्मिकता को देखकर उस समय के एक प्रमुख थियेसोफिस्ट, सी.डब्ल्यू लीडबीटर और श्रीमती एनी बेसेन्ट ने यह स्वीकार किया कि इस बालक का भविष्य एक महान आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में विश्व को मार्गदर्शन कर सकता है। आगे चलकर वे महान वक्ता और विचारक बने। उन्होंने कभी भी अपने को किसी देश विशेष, किसी जाति विशेष, किसी राष्ट्रीयता और संस्कृति विशेष का नहीं माना। कृष्णमूर्ति मनुष्य को बिना शर्त मुक्त करने के अपने दृढ़ निश्चय से कभी नहीं हटे। वे कहा करते थे, हम ही विश्व हैं और हम स्वय में गड़बड़ी का पता लगाएं क्योंकि हमने लोभ, राष्ट्रवाद, स्पर्धा, असहिष्णुता तथा सभी प्रकार की स्वार्थपरता को उत्पन्न किया है। वे सच्चे अर्थो में सम्पूर्ण मानव जाति के शिक्षक थे।

17 फरवरी 1986 को लगभग 91 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया। कृष्णमूर्ति एक ऐसे दार्शनिक है जिन्होंने आत्मज्ञान पर विशेष बल दिया है। उनके

मौलिक, क्रान्तिकारी, सारगर्भित और उदार विचार भारतीय शिक्षक के इतिहास की अमूल्य धरोहर है।

कृष्णमूर्ति की रचनाओं में उनके विचारों का प्रस्फुटन हैं इनके मूल ग्रंथ एवं व्याख्यान अंग्रेजी भाषा में है, जिनमें से अनेक के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके है। हिंदी के अतिरिक्त गुजराती, मराठी, बंगाली, तेलगू और मलयालम आदि भाषाओं में इनके अनेक ग्रन्थों के अनुवाद उपलब्ध है। हिन्दी भाषा में अनुवादित मुख्य रचनाएं निम्न प्रकार है—शिक्षा संवाद, शिक्षा एवं जीवन के तात्पर्य; शिक्षा एव जीवन का महत्व; आमूल क्रान्ति की आवश्यकता, सीखने की कला, ध्यान, विज्ञान और सृजनशीलता; ज्ञान से मुक्ति; आन्तरिक प्रस्फुटन; परम्परा जिसने अपनी आत्मा खो दी है; स्वतन्त्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन; प्रेम; ध्यान में मन; जो कुछ नही है, वह सुखी है; प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति; गरुड़ की उड़ान, जीवन भाष्य, भाग 1, 2 और 3,1

कृष्णमूर्ति के अनुयायियों ने इनके व्याख्यानों के संग्रह भी प्रकाशित किए हैं। उनके द्वारा स्थापित 'कृष्णमूर्ति फाउडेशन अभी भी जन कल्याण के कार्यों में संलग्न है।

3.6.1 कृष्णमूर्ति के दार्शनिक विचार

कृष्णमूर्ति के जीवन दर्शन को अनेक परिस्थितियों और महापुरूषों ने प्रभावित किया। उनके दार्शनिक विचारों को निम्नलिखित बिन्दुआं से स्पष्ट किया जा सकता है—

दर्शन— कृष्णमूर्ति के अनुसार वास्तविक दर्शन वह है जो हमें सत्य के लिए प्रेम तथा प्रज्ञा के लिए प्रेम जाग्रत करता हैं। दर्शन व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरुप का बोध कराता है कि मैं कौन हूँ? वाह्य एवं आन्तरिक जगत में होने वाले प्रत्येक स्पन्दन का प्रतिक्षण बोध ा होना ही वास्तविक दर्शन है। इनके अनुसार आत्मज्ञान या आत्मबोध होना ही वास्तविक दर्शन है।

सत्य— कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जीवन को उसकी समग्रता में जीने से ही जीवन के लक्ष्य का अनुभव होता है। जीवन एक अखण्ड सत्ता है, उसको खण्डों में नहीं बाटा जा सकता, परन्तु मानवीय मन जीवन को खण्डों में विभाजित कर देखने का अभ्यस्त हो गया है जिसके कारण हमें अखण्ड जीवन ज्योति का दर्शन नहीं हो पाता। जीवन हमारे—तुम्हारे के रुप में विभाजित नहीं है वरन् वह तो एक अनन्त प्रवाह है, यही वास्तविकता है, यही सत्य है और इसी की सत्ता है। इनके अनुसार अज्ञानी वह है जो स्वयं की सत्ता से अपरिचित है, अनभिज्ञ हैं। ऐसे सत्य की खोज करना ही जीवन का लक्ष्य है। उनका कहना है कि सत्य तक पहुंचने के लिए न तो कोई राजमार्ग ही है न ही उस राजमार्ग की कोई परम्परा ही होती है। सत्य तो स्वयं के भीतर छिपा है। सत्य का अनुभव वैयक्तिक है। समय सम्पूर्णता की अनुभूति है।

दुःख और दुःखभोग :

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि कष्ट और दुःख दो भिन्न बाते हैं। कष्ट का सम्बन्ध शरीर से है जबकि दुःख मानसिक पीड़ा है। भूत और भविष्य की स्मृति ही हमारे दुःख का कारण होती है। शुद्ध वर्तमान की कोई स्मृति नहीं होती, अतः शुद्ध वर्तमान में जीने वाला कभी भी दुखी नहीं होता। कृष्णमूर्ति मानते हैं कि स्वयं की समझ ही दुःख का अन्त है, जब स्वयं की समझ का प्रकाश होता है, तभी दुख समाप्त होता है।

भय : कृष्णमूर्ति भय को मानव मन की एक गम्भीर बीमारी मानते हैं, जो मानव जीवन को बड़ी गहराई तक प्रभावित करती है। भय का कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रतियोगिताएं और जीवन में आने वाली अनिश्चितताएं होती हैं। इनके अनुसार आत्मज्ञान होने पर ही भय से मुक्ति सम्भव है। आत्मज्ञान प्रज्ञा का आरम्भ है और प्रज्ञा भय का अन्त है।

मृत्यु : कृष्णमूर्ति कहते है कि हम मृत्यु से इसलिए भयभीत है कि हमें यह पता ही नहीं है कि जीने का क्या अर्थ है। मृत्यु दो प्रकार की होती है शरीर की मृत्यु और मन की मृत्यु। शारीरिक मृत्यु तो एक अनिवार्य घटना है, क्योंकि जीवन की ऊर्जा शरीर में सीमित होती है, किन्ही कारणों से जब यह ऊर्जा समाप्त हो जाती है तो शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मन की मृत्यु ही वास्तविक मृत्यु है। जब हम अपने विचारों, अनुभवों, वासनाओं आदि से संबधं विच्छेद कर लेते हैं अर्थात अपने अंहकारों के प्रति जीते जी मर जाते हैं तो इस मरण में ही वास्तविक जीवन का आरम्भ होता है।

युद्ध और हिंसा

युद्ध उतना ही पुरातन है जितनी पुरानत मानव जाति है। युद्ध का कारण विश्वास है, पूर्वाग्रह है, वह राष्ट्रवाद में हो, किसी विचारधारा में हो अथवा विशेष रुढ़ि में। युद्ध का कारण शक्ति पद, सम्मान, सम्पत्ति की वासना है। इसका कारण वह विमारी भी है, जिसे राष्ट्रवाद अथवा किसी ध्वज के प्रति श्रद्धा कहा जाता है और यह बिमारी भी है जो कि धर्म अथवा किसी रुढ़ि की पूजा में प्रकट होता है। उसकी जड़ें हमारे मन के अन्तर्विरोधों से पोषण पाती है और ऊर्जा को खण्डों में विभाजित कर देती हैं। युद्ध ओर हिंसा में कार्य–कारण का सम्बन्ध बनता है।

हिंसा का कारण भी हमारे मन का विभाजन ही है जिसके चलते हम अस्तित्व के साथ एकाकार नहीं हो पाते। वास्तव में अहिंसक व्यक्ति वही है जो अपने मन की समस्त विभाजनात्मक प्रवृत्तियों को ठीक से समझकर आत्मज्ञानी हो गया है।

आत्म ज्ञान

मनुष्य दो प्रकार के जगत में विचरण करता है–एक भौतिक जगत या वाह्यजगत या जड़ जीवन और चेतना का जगत, जिसमें व्यक्ति का जन्म होता है। दूसरा आन्तरिक जगत जो विचारों के द्वारा निर्मित होता है। इस आन्तरिक जगत में मनुष्य जाति के समस्त अनुभवों का सार समाया हुआ है। इन्हीं अनुभवों का समुच्चय स्व या आत्म है। "मैं कौन हूँ?" इस स्व या आत्म का ज्ञान प्राप्त करना ही आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान के विषय में कृष्णमूर्ति कहते हैं कि–भले ही आप विश्व की समस्त उपाधियां प्राप्त कर लें लेकिन यदि आप अपने आपको नहीं जानते तो आप महामूढ़ व्यक्ति है। सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य ही अपने आपको जानना है। आप भले ही बहुत जानकारी एकत्र कर लें, बहुत सा पढ़–लिख लें, परीक्षाएं पास कर लें, परन्तु आत्मज्ञान की अनुपस्थिति में ये सब, जीवन के ना समझी के रास्ते हैं"। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि हमे किसी दूसरे से आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसकी खोज हमें करनी पड़ेगी जिसके लिए संकल्प, अनुसंधान तैयार अन्वेषण आवश्यक है।

आत्मा का स्वरुप

आत्मा के संबंध में कृष्णमूर्ति के विचार भारतीय दर्शन में आत्मा के स्वरुप से भिन्न हैं। वे कहते हैं कि सामान्यतया जिसे हम आत्मा कहते हैं वह हमारा अहंकार ही है, जो दृष्टा के रुप में होता है। यह आत्मा हमारी सभ्यता, संस्कृति, अपेक्षा ओर आकांक्षा का ही परिणाम है। आत्मा के सम्बन्ध में हमने ऐसा विचार बना लिया है कि वह इस भौतिक शरीर जो मरता है, नष्ट होता है, से परे कोई अपृत तत्व है जो अधिक महान है, व्यापक है, अक्षय है, अमर है। कृष्णमूर्ति की दृष्टि से आत्मा शब्द एक प्रकार का विचार है। आत्मा–चैतन्य की एक ऐसी अवस्था है जहां मृत्यु की कोई झलक नही होती है, और इस अवस्था की खोज कोई विरला ही अपने स्वयं के लिए करता है।

ज्ञान और प्रज्ञा–

हमारा ज्ञान हमारी वैचारिक क्षमता का परिणाम है। सामान्य व्यक्ति से लकर ज्ञानी और महाज्ञानी तक सभी अपने तथा दूसरों के अनुभवों का सदैव संग्रह करते रहे हैं। इसी अनुभव संग्रह का नाम ज्ञान है। कृष्णमूर्ति के शब्दों में जब कोई अनुभूति होती है तो ज्ञान उपजता है। ज्ञान अनुभव प्रसूत है जो स्मृतियों के रूप में मस्तिष्क में संचित रहता है। व्यक्ति के जीवन में ज्ञान की बड़ी उपयोगिता है, यदि वह संवेदनशील नहीं है जागरुक नहीं है तो उसे किसी भी चीज़ को स्पष्ट बोध नहीं हो सकता।

कृष्णमूर्ति कहते है कि "आप में प्रज्ञा हैं इस कथन में निहित है कि आप प्रकृति के सौन्दर्य का तथा सूक्ष्मता के सौन्दर्य का अवलोकन कर सकते हैं, ज्ञान का उपयोग

प्रज्ञा के द्वारा होना चाहिए। ज्ञान को उपकरण की भांति होना चाहिए, जिसका उपयोग प्रज्ञा के द्वारा किया जा सके। उदाहरण के लिए चाकू का उपकरण यदि प्रज्ञापूर्ण तरीके से किया जाए तो आपरेशन द्वारा किसी के जीवन की रक्षा हो सकती है परन्तु उसी चाकू से किसी का जीवन भी लिया जा सकता है। यह चाकू पर निर्भर नहीं है अपितु उसके प्रयोगकर्ता पर निर्भर है। ऐसे ही ज्ञान जब व्यक्ति का उपयोग करने लगता है तो समाज खतरे में पड़ जाता हैं और जब प्रज्ञा उसका उपयोग साध ान की भांति करती है तो वह समाज के लिए हितकारी होती है। कृष्णमूर्ति के शब्दों में ज्ञान प्रज्ञा के द्वारा कार्य नही कर सकता है लेकिन प्रज्ञा ज्ञानपूर्वक कार्य कर सकती हैं अर्थात् वह ज्ञान का उपयोग कर सकती है। मात्र ज्ञान हमारी माननीय समस्याओं को कभी हल नहीं कर सकता, इस तथ्य की समझ ही प्रज्ञा है।'

ध्यान

कृष्णमूर्ति कहते है, "ध्यान का अर्थ है बिना किसी प्रयत्न तथा जोर जबरदस्ती के मन तथा मस्तिष्क को उनके सर्वोच्च शिखर तक पहुंचाना, सर्वोच्च प्रज्ञा तक ले जाना ताकि यह असाधारण रुप से संवेदनशील हो सके, तब मस्तिष्क एकदम मौन हो जाता है। इसमें अतीत का वह संग्रह जो लाखों वर्षों से अब तक विकसित हो रहा था, अविराम रुप से लगातार क्रियाशील, शान्त हो जाता है।" ध्यान क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए कृष्णमूर्ति कहते हैं–

– ध्यान का अर्थ है विचार का अन्त होना और तभी एक भिन्न आयाम प्रकट होता है जो समय से परे है।
– ध्यान किसी साध्य का साधन नहीं है। यह साध्य और साधन दोनों है।
– 'जो है' उसको देखना और उसके पार चले जाना ही ध्यान है
– ध्यान करने का अर्थ है, समय के प्रति अबोध हो जाना।
– ध्यान का अर्थ है ऊर्जा का समग्र रुप से निर्बन्ध और निर्मुक्त हो जाना।
– मौत से जन्म लेने वाली क्रिया ही ध्यान है।
– ध्यान, विचार से मुक्ति है तथा सत्य के आनन्द में जीना है।

प्रेम

कृष्णमूर्ति कहते हैं प्रेम एक विलक्षण वस्तु है। जब तक विचार एवं वासना से वह पिरोया गया है, तब तक वह प्रेम है ही नहीं। जब हम प्रिय के बारे में सोचते हैं तब वह व्यक्ति सुखद संवेदनाओं, स्मृतियों और प्रतिभाओं का प्रतीक बन जाता है, लेकिन ये प्रेम बिल्कुल नहीं विचार संवेदन है और संवेदन प्रेम नहीं है क्योंकि विचार

की प्रक्रिया ही प्रेम का नकार है। वास्तविक प्रेम एक ऐसी लौ और लपट है जिसमें विचार, ईर्ष्या, द्वेश और उपयोग की मंषा का धुआँ नहीं होता क्योंकि ये सभी चीजें मन की ही हैं।

ईश्वर

भारतीय और पाश्चात्य सभी दर्शनों में किसी न किसी रुप में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है। जिन दर्शनों में ईश्वर का निषेध किया गया है, उन दर्शनों में भी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। कृष्णमूर्ति ईश्वर का निषेध तो नहीं करते लेकिन ऐसा मानते हैं कि उस अनुभूति को विचारों द्वारा सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता। वे ईश्वर शब्द पर कोई बल नहीं देते। वे कहते है कि न तो ईश्वर शब्द ही ईश्वर है, न मन्दिरों आदि में रखी ईश्वर की प्रतिमा ही ईश्वर है। सत्य या ईश्वर असीम और कालातीत है, उसे मन्दिरों में बन्द नहीं किया जा सकता।

स्वतन्त्रता

कृष्णमूर्ति के अनुसार जब हम वाह्य एव आभ्यन्तर किसी भी रुप में किसी अन्य पर आश्रित नहीं हाते और अपनी इच्छानुसार सोंचते–विचारते तथा कार्य करते हैं तो इस अवस्था को स्वतंत्रता कहते हैं। स्वतंत्रता की अवस्था आत्मानुशासन की एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना विद्यमान होती है।

कामवृत्ति, ब्रह्मचर्य और सृजनशीलता

कृष्णमूर्ति कहते है कि यद्यपि कामवासना एक ऐसी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है जिससे पलायन करना सम्भव नहीं है, फिर भी इसके विरोध में हम ब्रह्मचर्य का ब्रत लेकर अपनी इस समस्या को और अधिक जटिल बना देते हैं तथा अनेक प्रकार के शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रोगों के शिकार हो जाते हैं। दमित कामवासना जीवन के लिए घातक होती है तथा मनुष्य को सहज जीवन जीने में व्यवधान डालती है। सामान्यतः हमारे सभी कार्य अहंकार में वृद्धि करते है, फिर भी जाने–अनजाने हम इस अहंकार से छुटकारा पाना चाहते हैं क्योंकि तभी हमें आनन्द की अनुभूति हो सकती है। अहंकार विसर्जन के लिए हम जो भी कार्य करते हैं उसमें कामप्रवृत्ति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह एक ऐसी प्राकृतिक क्रिया है जिसमें क्षणभर के लिए ही, हमारे अहंकार का पूर्ण रूपेण विसर्जन हो जाता है। और हम आनन्द की अनुभूति कर लेते हैं। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि वास्तविक ब्रह्मचर्य मन के दमन का परिणाम नहीं है अपितु विचारकर्त्ता के समाप्ति का परिणाम है। ऐसा ब्रह्मचर्य ही सृजनशीलता को जन्म देता है जो मानव जीवन का सुखी एवं आनन्दित करता है।

3.6.2 कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार

कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार उनकी दार्शनिक विचारों के उत्पाद हैं। अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर ही उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया था और इन्हीं दार्शनिक विचारों की निष्पत्ति है उनके शैक्षिक विचार। कृष्णमूर्ति का कहना है कि आज दुनिया में विद्यालयों, महाविद्यालययों और विश्वविद्यालयों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है इन संस्थाओं में छात्रों की संख्या में अपार वृद्धि हो रही है; लेकिन इस शिक्षा का फल यह है कि छोटे–छोटे युद्धों के साथ–साथ, बड़े–बड़ें युद्धों की तैयारी हो रही है, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की संख्या बढ़ रही है जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा के नाम पर संघर्ष हो रहे हैं, साम्यवादी एवं पूंजीवादी व्यवस्था के नाम पर व्यक्ति–व्यक्ति के रक्त का प्यासा हो गया है, आतंकवाद, जनसंख्या, पर्यावरण, भ्रष्टाचार आदि समस्याएं मनुष्य के जीवन को और अधिक कठिन बना रही है। इन सबका कारण हमारी दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था है।

शिक्षा का अर्थ :

शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति द्वारा समय–समय पर व्यक्त किए गए विचारों को निम्नांकित बिन्दुओं से व्यक्त किया जा सकता है–

- शिक्षा का अर्थ सत्य की खोज करना है।
- शिक्षा का अर्थ मन् को परंपराओं के बोझ से मुक्त कराना है।
- शिक्षा का अर्थ अपने आप को जानना हैं
- शिक्षा का अर्थ कार्य को सम्पूर्ण मन, ह्रदय और प्रेम से करना है।
- शिक्षा का अर्थ मेधा का उद्‌घाटन करना है।
- शिक्षा का अर्थ समन्वित सम्यक बुद्धि को जागष्त करना है।
- शिक्षा का अर्थ कार्यक्षमता का विकास करना है।
- शिक्षा का अर्थ जीवन को उसकी समग्रता में समझना है।
- शिक्षा का अर्थ धर्म के वास्तविक स्वरुप को समझना है।
- शिक्षा का अर्थ सीखने की कला है।
- शिक्षा का अर्थ आत्मज्ञान प्राप्त करना अर्थात् स्वयं को समझना है।

शिक्षा के कार्य :

कृष्णमूर्ति के अनुसार सामान्यतः शिक्षा के कार्य निम्नप्रकार है–

1. शिक्षा शिक्षक शिक्षार्थी और अभिभावक तीनों को शिक्षित करती है।
2. शिक्षा स्थायी जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करती है।
3. शिक्षा व्यक्ति को संस्कारयुक्त होने में सहयोग देती है।
4. शिक्षा जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने में सहायता करती है।
5. शिक्षा व्यक्ति को इस सड़े हुए समाज के सम्पूर्ण ढांचे को समझने में और स्वतंत्रता के साथ बढ़ने में सहयोग करती है।
6. बालक में समग्र उत्तरदायित्व का बोध कराने में उसकी सहायता करना है।
7. शिक्षा का कार्य बालक में सचेतना और उद्यमिता का विकास करना है। कृष्णमूर्ति के अनुसार सचेतन और उद्यमी मन का लक्षण है कि जैसे ही कोई समस्या पैदा हो, वह उसकी प्रकृति का अवलोकन करे, उसका सामना करे और उसका समाधान करे।
8. शिक्षा का कार्य बालक को सीखने की कला सिखाना है।
9. शिक्षा का कार्य परम्परा एवं आदत को उनके ठीक अर्थों में समझना और उनकी व्यर्थता का बोध कराना है।
10. शिक्षा का कार्य बालकों में ऐसी क्षमता पैदा करना है कि ये समाज की परम्पराओं, रीतिरिवाजों और अन्ध विश्वासों के साथ–साथ स्वयं के मन की गतिविधियों का ठीक–ठीक अवलोकन कर सकें।

मौलिक परिवर्तन के लिए शिक्षा की भूमिका के विषय में कृष्णमूर्ति ने कहा "वास्तविक शिक्षा आपको केवल संस्कारयुक्त होने में ही सहयोग नहीं देती, अपितु वह आपको आपके दैनन्दिन जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने में भी मदद करती है ताकि आप स्वतंत्रता के साथ बढ़ सकें और नूतन विश्व का निर्माण कर सकें–एक ऐसा विश्व जो वर्तमान विश्व से बिल्कुल भिन्न हो।

शिक्षा के उद्देश्य :

कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य एक सन्तुलित मानव का विकास करना है। ऐसा मानव जो चेतनायुक्त हो, जो सद्भावना से परिपूर्ण हो, जो जीवन का अर्थ और उदेदश्य समझता हो, जो जाति, धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति, क्षेत्र आदि किसी भी आधार पर पूर्वाग्रहों एवं पूर्वधारणाओं से युक्त न हो, जो द्वेश, घृणा और हिंसा जैसी दुष्प्रवृत्तियों से बहुत दूर हो, जो वैज्ञानिक बुद्धि तथा आध्यात्मिकता में समन्वय स्थापित कर सकने की सामर्थ्य रखता है, जो मानव मात्र के जीवन को सुखी बना सकता हो, जो

अपने लिए नये मूल्यों का निर्माण कर सकता हो और जो एक नूतन संस्कृति तथा नूतन विश्व का निर्माण कर सकता है। कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के इन मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अग्रलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है–

–शारीरिक विकास	– सृजनात्मकता का विकास
– मानसिक विकास	– संवेदनशीलता का विकास
– सामाजिक विकास	– वास्तविक चरित्र का निर्माण करना
– आध्यात्मिक मूल्यों का विकास	– व्यावसायिक प्रशिक्षण
– सांस्कृतिक विकास	– वैज्ञानिक बुद्धि का विकास

पाठ्यक्रम

कृष्णमूर्ति यह मानते हैं कि बालकों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्तिगत सामाजिक और विशेष रुप से राष्ट्रीय जीवन से संयुक्त करने में सहायता देने के लिए एक उपयुक्त पाठयक्रम की आवश्यकता है, इसके लिए इन्होंने निम्न बातों पर बल दिया–

2. **उद्देश्योन्मुख पाठ्यक्रम**–पाठ्यक्रम उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए।

3. **अधिगम और उपयोगिता**– पाठ्यक्रम अधिगम में सहायक और भावी जीवन के लिए उपयोगी होना चाहिए।

4. **नैतिक गुणों की शिक्षा**–पाठ्यक्रम को बालकों में नैतिक गुणों का समावेश करने में सक्षम होना चाहिए।

5. **क्रियाशीलता**– कृष्णमूर्ति का लक्ष्य बालक को ज्ञान देना मात्र नहीं था वरन प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है जिसके लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में क्रियाशीलता पर बल दिया।

शिक्षणविधि

कृष्णमूर्ति सत्यान्वेशी होने के साथ–साथ बहुत व्यवहारिक थे। शिक्षण के क्षेत्र में वे सबसे अधिक बल क्रिया को देते थे। उनके अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव से सीखने की विधि उत्तम है। उनका कहना था कि प्रचलित शिक्षण विधि में अध्यापक और विद्यार्थी में कोई सम्पर्क नहीं रहता। अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है और विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता की तरह बैठे रहते हैं। इस दोषपूर्ण शिक्षण विधि के स्थान पर वे ऐसी शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहते थे जिसमें विद्यार्थी एवं

शिक्षक के बीच की खाई कम हो। उनके अनुसार शिक्षण विधियों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

- बालक को अनुभव द्वारा सीखने को प्रोत्साहन दिया जाय।
- सीखने की प्रक्रिया में सहसम्बन्ध स्थापित किए जाएं।
- बालक की प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाय।
- शिक्षण में ध्यान पर बल दिया जाय।
- बालक की मानसिक क्षमता के अनुसार शिक्षण विधि का चयन किया जाय।

कृष्णमूर्ति ने जिन शिक्षण विधियों पर बल दिया है वे हैं: अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिंध्यासन, दृष्टान्त, व्याख्यान, अवलोकन, प्रयोग, वार्तालाप, स्वाध्याय।

अनुशासन

कृष्णमूर्ति बलपूर्वक थोपे गए अनुशासन को महत्वहीन तथा भयानक बताते हैं उनका कहना है कि वास्तविक अनुशासन का निवास तो मन की अखण्ड संज्ञा में निहित होता है मन की समस्त विसंगतियों को समझने के उपरान्त ही वास्तविक अनुशासन का अस्तित्व प्रकट होता है। वास्तविक शिक्षा से ही वास्तविक अनुशासन की समझ पैदा होती है और यह तब होगा जब हममे प्रेम और सृजनात्मक बोध की क्षमता हो। कृष्णमूर्ति के शब्दों में, ''यदि आप प्रेम करते हैं तो अनुशासन की आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेम स्वयं सृजनात्मकं बोध क्षमता लाता है। इसलिए वहां न प्रतिरोध होता है और न संघर्ष। लेकिन यदि हम केवल प्रतिरोध करेगें, दमर करेंगे तो ये दलित वासनाएं निश्चित रूप से दूसरे रास्ते से प्रकट होकर ही रहेगी। इस प्रकार विविध हानिकार प्रवृतियां और विनाशकारी घटनाएं चलती ही रहेगी और इस प्रकार विविध हानिकारक प्रवृत्तियों एवं विनााकारी घटनाएं चलती ही रहेंगी।'' इस प्रकार कृष्णमूर्ति के अनुसार अनुशासन नियंत्रण या दमन नहीं है।

3.6.3 सारांश

जिद्‌दू कृष्णमूर्ति के समग्र जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके जीवन का हर क्षण तथा उनके प्राणों की हर धड़कन शिक्षा के लिए समर्पित थी। उनकी अध्ययनशीलता और ज्ञान की सम्पन्नता ने उनको एक श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री बना दिया था। रोहित मेहता के शब्दों में, ''कृष्णमूर्ति जी वर्तमान समय के एक मौलिक एवं क्रान्तिकारी विचारक हैं। उन्होंने नवीन दर्शन का निर्माण कियां उनके दर्शन की एक

विशेषता है–चुनाव रहित सजग चेतना।'' प्रसिद्ध चिन्तक आल्डस टक्सले ने 1961 में कृष्णमूर्ति की वार्ता सुनने के बाद लिखा कि, ''अब तक जितनी भी महत्वपूर्ण वार्ताएं मैनें सुनी हैं यह वार्ता उनमें अनन्यतम थी। यह ऐसा अनुभव था मानो हम स्वयं बुद्ध को सुन रहे हैं........ ऐसी अद्‌भुत शक्ति, ऐसा आन्तरिक अधिकार ....।

ओशों रजनीश ने करुणामय कल्याणशील और सबुद्ध सन्त कृष्णमूर्ति के विषय में कहा, ''जे. कृष्णमूर्ति तो एक सद्‌गरु हैं उसी कोटि में जहां बुद्ध, महावीर, कृष्ण ओर क्राइस्ट हैं। वे एक जीवंत जाग्रत प्रवुद्ध पुरुष है।'' सरलतापूर्वक हम कह सकते हैं कि प्रम का सच्चा पाठ पढ़ाने वाले जे. कृष्णमूर्ति वीसवीं सदी के महान शिक्षा विद हैं।

3.7 सारांश

इस इकाई में भारतीय चिन्तकों जैसे रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द, जें0 कृष्णा मूर्ति के शैक्षिक विचारों के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है और समालोचनात्मक समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है। इससे पाठकगण उनके दर्शन की गहराई की सुलभता समझ सकेंगे।

3.8 अभ्यास प्रश्न

आधुनिक शिक्षा में उपरोक्त विचारकों में से कौन सर्वाधिक उपयोगी है और क्यों?

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समन्वय और एकीकरण
2. मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का विकास।
3. गीता
4. कर्मकाण्ड
5. सत्य
6. पाण्डिचेरी

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2007), *शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग*, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. पचौरी, गि फरीश, *शिक्षा के दार्शनिक आधार*, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
3. ओड़, एल.के., *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. पाण्डेय, रामशकल, शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. शर्मा, आर.ए., *दार्शनिक समस्याऐं एवं शिक्षा*, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02

समकालीन भारत एवं शिक्षा

खण्ड : दो

विविधता का अवबोध

इकाई - 4 5

विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई - 5 31

खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई - 6 48

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो० एम० पी० दुबे	कुलपति, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो० एस०पी० गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो० के०एस०मिश्रा	आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इला० विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो० अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो० विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला०विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो० प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला० विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डा० रामेन्द्र गुप्ता	एसोसियएट प्रोफेसर, डी०वी० कालेज, उरई जालौन (इकाई-1,2,3)
प्रो० सुमित्रा सिंह	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई- 7,8,9,10,11,12)
प्रो० सुषमा पाण्डे	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई-4,5,6)
डा० बुद्ध प्रिय	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (इकाई- 13,14,15)

सम्पादक

प्रो० प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो०उषा मिश्रा	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ० रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ० जी० एस० शुक्ल	कुलसचिव, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-UP-978-93-83328-04-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन -उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02 : समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड–एक शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई–3 भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

खण्ड–दो विविधता का अवबोध

इकाई–4 विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई–5 खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई–6 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

खण्ड–तीन समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई–8 गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे – भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्तजनों के संदर्भ में

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

खण्ड-चार शैक्षिक आयोग एवं नीतियॉं

इकाई–10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियॉं : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992), निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई–12 कार्यक्रम, योजनाएँ, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियॉं

खण्ड–पॉंच शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियॉं

इकाई–13 शिक्षा की चुनौतियॉं और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई–14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई–15 सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

खंड–दो – विविधता का अवबोध

खण्ड परिचय

विविधता की परिभाषा में भी विविधता है। प्रश्न यह है कि विविधता को कितनी दूर तक वृहद रूप में लेकर परिभाषित किया जाये। विविधता आयु एवं जाति से वृहद तथ्य है। विविधता वृहदता अर्थ में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। विविधता का अर्थ है, अन्तर है।

विविधता प्रकृति का नियम है। शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह विविधता एवं एकता के मध्य एक संतुलन बनाये। विविधता के प्रति उदासीनता शिक्षा के उद्देश्यों के लिये समस्यात्मक हो जाता है जो कि विद्यालय में अपनी मान्यताओं एवं व्यवहारों को सबसे अलग करके रखना चाहते हैं। बच्चों के मध्य विविधतायें आपसी संघर्ष को उत्पन्न करती है। विविधतायें बच्चों में भी आत्मसंघर्ष उत्पन्न कर देती है। इस इकाई में हम वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता के मध्य सम्बन्ध कैसे स्थापित हो इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इस संसार में कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते हैं। वंशानुक्रम एवं वातावरणीय कारक मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं और ये दोनों कारक के साथ कारण भी हैं। इसीलिये सभी बच्चों को बचपन से ही खेल एवं अधिगम में विविधता आती है उसका कारण शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, पारिवारिक, विद्यालयी, कारण हो सकते हैं। विद्यार्थियों में अनेक योग्यतायें, रूचियॉ, समस्यायें, खेल व अधिगम में विविधता लाते हैं।

प्रस्तुत खण्ड दो की इकाई 4, 5 एवं 6 में विविधता के विविध आयामों पर विस्तार से चर्चा की गई है।

खण्ड–2 विविधता का अवबोध

इकाई – 4 : विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 विविधता की परिभाषा एवं अवधारणा

4.4 सांस्कृतिक विविधता

4.5 सामाजिक आर्थिक विविधता

4.6 भाषायिक विविधता

4.7 शारीरिक विविधता / अक्षमता

4.8 लैंगिक विविधता

4.9 सारांश

4.10 अभ्यास के प्रश्न

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

विविधता प्रकृति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उत्पत्ति के साथ ही मनुष्य अनेक कारणों से अनेक भागों, वर्गों, समूहों एवं प्रजातियों में बंटा हुआ है। विविधता आज की शिक्षा एवं सामाजिक समानता को चुनौती दे रही है। शायद इसी लिये शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम में भावी शिक्षकों के लिये विविधता की अवधारणा के प्रति

सकारात्मक दृष्टिकोण एवं समझ रखना आवश्यक हो गया है जिससे कि कक्षाकक्ष के शिक्षण में वह सामन्जस्यपूर्ण बालकेन्द्रित एवं बालोपयोगी शिक्षण कर सकें। इसीलिये इस इकाई में हम विविधता की अ वधारणा को विस्तार से समझते हुये उसके कारणों का विश्लेषण करते हुये उसके प्रकारों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. विविधता की अवधारणा को समझते हुये स्पष्ट कर सकेंगे।
2. विविधता के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
3. विविधता के विविध प्रकारों का दर्शन करते हुये उनके कारणों को भी इंगित कर सकेंगे।

4.3 विविधता की परिभाषा एवं अवधारणा

विविधता की परिभाषा में भी विविधता है। प्रश्न यह है कि विविधता को कितनी दूर तक वृहद रूप में लेकर परिभाषित किया जाये। विविधता आयु एवं जाति से वृहद तथ्य है। विविधता वृहदता अर्थ में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। विविधता का अर्थ है, अन्तर है 28 अप्रैल, 2010 को एक सर्वेक्षण में पाया गया जिसमें विविधता के विषय में ये तथ्य उभरे।

- वृहद स्तर पर रूचि एवं अनुभव ।
- प्रजाति, सामाजिक, आर्थिक, स्थिति, भाषायिक, भौगोलिक आकार–प्रकार, सांस्कृतिक स्तर पर. अंतर।
- अनुभव, विचारों एवं जीवन अनुभवों में विविधता ।
- विविधता को प्रजाति, आयु, आर्थिक, भौगोलिक, दार्शनिक, लैंगिक, धर्म, राजनैतिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत अनुभव इत्यादि के आधार पर मापा जा सकता है।
- विविधता मानव के विचारों, अनुभवों, रूचियों, स्थितियों प्रतिस्थितियों, आदतों के अन्तर के रूप में देखा जा सकता है।
- वो अन्तर जो एक व्यक्ति को अन्य से अलग करता है। जो प्रजाति लैंगिक आकार रंग सामर्थ्य में प्रतीत होता है।

- कुछ के अनुसार प्रजाति, सामाजिक आर्थिक, भौगोलिक, शैक्षिक एवं व्यावसायिक परिस्थिति में अन्तर ही विविधता कहा जा सकता है।
- कुछ के अनुसार रंग, भाषा, आयु, लिंग, सांस्कृतिक भाषायिक, एवं प्रजातीय अन्तर ही विविधता का मापक है।
- विविधता में भाव प्रजाति से सम्बन्धित सभी प्रकार के अन्तर आते हैं।
- विविधता दो प्रकार से परिभाषित होती है –

  अ. **आन्तरिक विविधता** – वैचारिक सांस्कृतिक, दार्शनिक रूचि, आदत, अनुभव

  ब. **बाह्य विविधता** – रंग, मान्यतायें, आकार, प्रजाति, भौगोलिक, आर्थिक– सामाजिक प्रस्थिति, लैंगिक धार्मिक, व्यावसायिक।

विविधता के विभिन्न आयाम में लैंगिक, धार्मिक, मान्यतायें, प्रजाति वैवाहिक, प्रस्थिति, अभिभावकों की प्रस्थिति, आयु, शिक्षा, शारीरिक एवं मानसिक अभियोग्यता व्यवसाय, भाषा, भौगोलिक स्थिति में भी सम्मिलित है।

इससे एक बात स्पष्ट है कि विविधता का तथ्य सम्मान एवं मान्यता को परिपूर्ण है। अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग विशेषताएँ एवं अस्तित्व हैं।

विविधता वास्तव में अन्तर को सम्मानपूर्वक मान्यता देने से है। विविधता को सम्भव चलने वाली सचेत प्रयासों एवं मान्यताओं को प्रक्रम माना जाता है जिसमें निहित है।

- मानव प्रजाति के सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वातावरण सम्बन्धी विशेषताओं को समझना एवं प्रशंसा करना।
- हमारे विचारों से दूसरों के विचारों में विभिन्नता को भी सम्मान स्वीकार करना।
- विभिन्नता को समझने में होने के अनुभव के साथ जानने के तरीके भी सम्मिलित होते हैं।
- व्यक्तिगत, सांस्कृतिक एवं संस्थागत विभिन्नतायें किसी के लिए लाभदायक तो दूसरे के लिए कष्टप्रद होता है।
- एक साथ रहने व एक कार्य करने की अभिक्षमता एक स्वस्थ मानसिक स्थिति उत्पन्न करना।

अतः यह कहा जा सकता है कि विविधता में हमारे समूह से अलग अन्दर व बाहर रहने वाले लोगों के विविध गुणों व परिस्थितियों को समझना भी समाहित है। इसमें मात्र आयु वर्ग, लिंग,शारीरिक विशेषतायें, आकार, रंग, जाति, प्रजाति, शैक्षिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, लैंगिक प्रदर्शन, वैवाहिक स्थिति, आर्थिक स्थिति एवं कार्यानुभव इत्यादि तक ही सीमित नहीं है।

वास्तव में सभी विविधताओं को दृढ़तापूर्वक तय नहीं किया जा सकता वरन् ये लचीला रुख अपनाते हुए यह कहना ठीक होगा कि किसी की भी अपना स्वयं का अस्तित्व सर्वोपरि है और कोई भी संस्कृति दूसरे से श्रेष्ठ नहीं सिद्ध की जा सकती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. विविधता क्या है? परिभाषित कीजिए ।

....

....

....

2. शिक्षा में विविधता की अवधारणा का शिक्षण क्यों आवश्यक है?

....

....

....

3. विभेदीकरण कितने प्रकार के होते हैं?

....

....

....

4.4 सांस्कृतिक विविधता

आप पूर्व में विविधता को पढ़ चुके है। हम मुख्य रूप से अनेक प्रकार के आयामों की चर्चा भी पूर्व में की जा चुकी है। अब हम सांस्कृतिक विविधता के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व हमें संस्कृति को समझाना चाहिये ।

संस्कृति अवधारणा –

मानव एक समाज में रहता है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये यह उसे पूर्ण रूप से संगठित करता है और इस व्यवस्था को निश्चित एवं स्थापित करता है यही व्यवस्था संस्कृति कहलाती है। संस्कृति वास्तव में समाज में रहने का ढंग है।

टायलर ने कहा है – "संस्कृति वह जटिल पूर्णता है जिसमें रिवाज और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित की जाने वाली अन्य विशेषतायें और आदतें सम्मिलित रहती है।

वहीं **रोसके** ने किसी विशेष समूह व स्थान में निवास करने वाले विशेष व्यक्तियों के जीवन व्यतीत करने की सामूहिक विधि ही को संस्कृति बताया है। संस्कृति मानव की श्रेष्ठता धरोहर है इससे मानव पीढी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है।

कोचर एवं क्युरवौन के अनुसार – सामाजिक आकर्षक एवं बौद्धिक श्रेष्ठता को प्रकट करने का आधार ही संस्कृति है। **मैथ्यू आरनोल्ड** – ने जीवन के प्रकाश एवं कोमलता को ही संस्कृति कहा है।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से उद्घृत है। संस्कृत व संस्कृति संस्कार शब्द से बने हैं। संस्कार का अर्थ है कुछ कृत्यों की पूर्ति करना। इस प्रकार से विभिन्न संस्कारों द्वारा सामूहिक जीवन की प्राप्ति ही संस्कृति है। नैतिक दृष्टि में संस्कृति का सम्बन्ध सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से है।

हीगल, काण्ट एवं लाबेल आदि ने संस्कृति का नीतिशास्त्रीय अर्थ में संस्कृति का सम्बन्ध उन वस्तुओं से किया है जो मानव जीवन को आनन्द प्रदान करती है जो सुन्दर ज्ञान, सत्य, कल्याणकारी एवं मूल्यवान है।

अगर हम संस्कृति का ऐतिहासिक अर्थ को देखें तो धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कला, संगीत, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में मानव की उपलब्धियां ही संस्कृति की श्रेणी में आते हैं।

मानवशास्त्रीय अर्थ में मजूमदार एवं मदान जीने के ढंग को ही संस्कृति मानते हैं। **टायलर** के अनुसार – "संस्कृति वह समग्र जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास कला, आचार, कानून तथा ऐसी क्षमताओं एवं आदतों का समावेश है जो मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है अर्थात् संस्कृति सामाजिक विविधता है।

मेलिनोवोस्की भी स्पष्ट करते हुए यही बात कहते हैं कि संस्कृति को ज्ञान धारणाओं एवं प्राकृतिक व्यवहार के प्रतिमानों का कूल योग माना है जिसके सभी भागीदार होते हैं। जो हस्तान्तरित की जाती है।

भौतिक एवं अभौतिक पक्षों को समाहित करते हुए राबर्ट बीरस्टीड लिखते हैं कि संस्कृति का सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें वे सभी वस्तुयें सम्मिलित होती है जिन पर हम विचार करते हैं, कार्य करते हैं और समाज के सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं और इसके अन्तर्गत हम जीवन जीने, कार्य करने विचार करने के सभी तरीकों को भी समाहित करते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरे को हस्तान्तरित होते हैं और समाज के स्वीकृत अंग बन चुके हैं।

संस्कृत वास्तव में मूल्यों, शैलियों, भावनात्मक लगावों, बौद्धिक अभियानों का संसार है। संस्कृति की कुछ निश्चित विशेषतायें हैं जैसे –

- संस्कृति अपने शारीरिक, मानसिक क्षमताओं में अंतर के कारण विविध प्रकार की संस्कृति को निर्मित व विकसित करते हैं।
- संस्कृति सीखी जाती है। संस्कृति मानव के सीखे हुए व्यवहार प्रमिमानों का ही योग होती है।
- संस्कृति हस्तान्तरित की जाती है। संस्कृति को नई पीढ़ी अपने पुरानी पीढ़ी के द्वारा ही प्राप्त करती है। इसमें भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि भाषा संस्कृति को संजोने व हस्तान्तरित करने का माध्यम बनते हैं।
- संस्कृति की अपनी विशिष्टता एवं विभिन्नता होती है। प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है।

संस्कृति के दो पक्ष हैं –

1. **मूर्त पक्ष** – यह संस्कृति का वह पक्ष है जो प्रदर्शन होता है। इसमें ज्ञानात्मक तत्व सम्मिलित होता है।

2. **अमूर्त पक्ष** – इसमें गुण, प्रेरक मान्यताओं लय एवं उसकी अभिरूचियों को प्रभावित एवं निर्धारित करने वाले तत्व आते हैं। इसमें संस्कृति के भावात्मक तत्व से सम्बन्धित है।

संस्कृति को दो भागों में विभाजित किया गया है ।

भौतिक संस्कृति – भौतिक संस्कृति में इसका मूर्त पक्ष आता है जिसे हम देख सकते हैं जैसे कि समस्त उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन सरल है। यह परिवर्तनीय है। यह बिना परिवर्तन के ही स्वीकृत हो जाती है।

अभौतिक संस्कृति – यह भावात्मक संस्कृति कहलाती है। इसमें विचार, विश्वास मानदण्ड, व्यवहार, प्रथा, रीति–रिवाज, कानून, मनोवृत्तियॉ, साहित्य, ज्ञान,

कला, भाषा, नैतिकता इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। अभौतिक संस्कृति अमूर्त होती है इसका मापन नहीं किया जा सकता है। यह जटिल होती है। इसमें परिवर्तन कम व धीमी गति से होता है। यह मानव के आध्यात्मिक एवं आन्तरिक जीवन में सम्बन्धित है।

संस्कृति के सम्पूर्ण अवधारणा को समझने पर आप यह तो समझ ही गए होंगे कि संस्कृति का मानव जीवन पर क्या प्रभाव है तो यह भी जान लें तभी आप यह जान पायेंगे कि संस्कृतिक विविधता क्या है –

सांस्कृतिक विविधता का अर्थ –

संस्कृतियों में विविधता समाजों की विविधता के कारण ही होती है। संस्कृति का प्रचार–प्रसार एक निश्चित क्षेत्र में होता है और यह सांस्कृतिक क्षेत्र कहलाता है। **हॉवल** के अनुसार – एक सांस्कृतिक क्षेत्र भौगोलिक क्षेत्र के उस भाग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे संस्कृति इतनी मात्रा में समानता प्रकट करती है और उसे उन संस्कृतियों से पृथक कर देती है जिससे संस्कृति इतनी मात्रा में समानता प्रकट करती है और उसे उन संस्कृतियों से पृथक कर देती है जो क्षेत्र के बहाव हैं।'' समाजशास्त्री **हरकोबिस्ट** लिखते हैं कि – **"संस्कृति क्षेत्र महत्वपूर्ण है चूँकि यह दिखाता है कि किस प्रकार से आन्तरिक संगठन की भांति भूमि के विस्तार में भी मानव सभ्यता की एकतायें कायम रहती हैं।** इस प्रकार से एक सांस्कृतिक क्षेत्र से बाहर दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र होते हैं जिसमें भौतिक एवं अभौतिक तत्व दोनों में ही आपसी अन्तर होता है। अभौतिक तत्व में परिवर्तन बहुत ही धीमा होता है परन्तु वह सभी संस्कृतियों मे यह अन्तर दीर्घकालीन होता है क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव के विचार, चिन्तन भावनाओं, मान्यताओं, आचार–विचार, ज्ञान विश्वास कला, आदतों, दर्शन एवं अन्य क्षमताओं से होता है। सांस्कृतिक विविधता वास्तव में विभिन्न संस्कृतियों के मध्य अन्तर से ही जिसमें विभिन्न प्रकार को संस्कृतियों के प्रति सम्मान व समान दृष्टि उत्पन्न हो। यूनेस्को के एक सामान्य कान्फ्रेंस (2001) के अनुच्छेद–1 संस्कृतिक विविधता के उद्घोषणा में कहा गया कि –

"मानव जाति के सांस्कृतिक विविधता उसी प्रकार से उपयोगी है जिस प्रकार से प्रकृति के लिए जैव विविधता।" सांस्कृतिक विविधता के अनेक कारण हैं –

- गरीबी के कारण धार्मिक विश्वासों, रहन–सहन आचार विचार में प्रभाव नहीं पड़ता इससे विविधता बनी रहती है।

- धर्म भी सांस्कृतिक विविधता का कारण है।
- भौगोलिक विविधता भौतिक एवं अभौतिक दोनों प्रकार की संस्कृति को प्रभावित करती है।
- जलवायु भी सांस्कृतिक विविधता का कारण है क्योंकि यह मानव जीवन के सम्पूर्ण पक्ष को प्रभावित करता है।
- शिक्षा भी सांस्कृतिक विविधता का कारण है।
- औद्योगिक विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति भी सांस्कृतिक विविधता का कारण है।
- जनसंचार माध्यमों का प्रयोग सांस्कृतिक विविधताओं के विकास एवं समाप्त करने का आधार है।
- आर्थिक स्थिति भी सांस्कृतिक विविधता का कारण है क्योंकि यह सम्पूर्ण मानव जाति के कारण को प्रभावित करता है।
- भाषा भी सांस्कृतिक विविधता का आधार है। विभिन्न भाषायें संस्कृति का धरोहर रही है। और हस्तान्तरण का आधार भी है।
- भूमण्डलीकरण भी सांस्कृतिक विविधता को प्रभावित किया है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. सांस्कृतिक विविधता किसे कहते हैं?

....

....

....

5. सांस्कृतिक विविधता का ज्ञान क्यों आवश्यक है?

....

....

....

4.5 सामाजिक आर्थिक विविधता

अभी आप पूर्व में सांस्कृतिक विविधता के विषय में विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं। सामाजिक क्षेत्र के कई पक्ष हैं– आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक, शैक्षणिक इत्यादि। ये सभी पक्ष एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सामाजिक जीवन के दो पहलू हैं– आर्थिक और गैर–आर्थिक। आर्थिक पक्ष के अन्तर्गत उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रियायें आती हैं और सामाजिक जीवन के गैर आर्थिक पक्ष में सम्मिलित है। सामाजिक संरचना, राजनीतिक व्यवस्था, स्तरीकरण व्यवस्था और सोस्कृतिक व्यवस्था। सामाजिक जीवन के ये दोनों पहलू अन्तः सम्बन्धित है और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आर्थिक कार्यशैली का जो रूप अर्थव्यवस्था निर्धारित करती है उसी से सामाजिक अन्तःक्रिया का प्रकृति निर्धारित हो जाती है। आर्थिक दशायें सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था की प्रकृति निर्धारित करती हैं वरन् सामाजिक सांस्कृतिक दशायें भी अर्थव्यवस्था की प्रकृति निर्धारित करती है। सामाजिक संरचना आर्थिक विकास को प्रभावित कर ली है। एकमस्मिथ श्रम पर बल देते हैं और श्रम को ही धन एवं मूल्य का स्रोत है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में क्रान्तिकारी मोड आया। दूसरे विश्व समाज को अनेक वर्गों एवं स्वरूपों में बाट दिया। इसके ही सामाजिक आर्थिक स्थिति जैसे अवधारणा को जन्म दिया।

सामाजिक, आर्थिक स्थिति में किसी व्यक्ति विशेष के आर्थिक एवं सामाजिक ऋग्वेद रूप से दोनों के प्रभाव को उस व्यक्ति के अथवा उसके परिवार के आर्थिक अथवा सामाजिक प्रस्थिति जो कि उसके आय, शिक्षा एवं व्यवसाय से बनती है सम्मिलित होता है।

सामाजिक, आर्थिक मानव के समाज में आदिकाल से ही रही है। विश्व के समेत भारत के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो अंग्रेजी शासन के आते ही गांवों की आत्मनिर्भरता समाप्त हुयी नगरों ने कारखाना व्यवस्था का रूप लेना प्रारम्भ कर दिया। समाज में राज–प्रजा सामाजिक आर्थिक स्थिति से जमीदार, कृषक, मजदूर, पूंजीपति औद्योगिक मजदूर एवं प्रशासकीय अधिकारी का उदय हुआ। पूरे विश्व ने औद्योगिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक युग ने मुख्यतया इन सामाजिक आर्थिक विविधता से परिपूर्ण वर्गों को जन्म दिया।

- **जमीदार** – ये भू–स्वामी होते हैं और उँचे सामाजिक आर्थिक परिस्थिति वाला भी होते थे।
- **पूंजीपति** – वर्ग जो उद्योगों में अपनी पूंजी लगाता है ये अमीर घराने के होते

हैं। यह उद्यम की भूमिका तैयार करते हैं।

- **नौकरशाही** – वह वर्ग जो समाज के सभी क्षेत्रों को अपनी सेवायें देते और सेवाओं के आधार पर वेतन व प्रस्थिति तय होती है।
- **कृषक** – यह वर्ग भारत के इतिहास में सबसे पुराना और व्यवसाय के कारण बना था। कृषकों में भी उच्च मध्यम एवं उच्च वर्ग हैं ये वर्ग जमीन पर अधिपत्य एवं शक्ति से ही बने ।
- **मजदूर/सर्वहारा** – यह वर्ग भी पूंजीवाद एवं औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप कारखाना युग की उपज है यह अधिकांश : समाज में आर्थिक प्रस्थिति के आध ाार पर निम्न मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग में ही स्थिति प्राप्त किया है।

अभिजन वर्ग – यह समाज का उच्च वर्ग है जो प्रभुता एवं सुविधा सम्पन्न होता है और इनके पास जनसामान्य के बारे में निर्णय लेने की शक्ति होती है। यह समाज का शासक वर्ग कहा जाता है इस वर्ग की शक्ति का निर्धारण उसकी आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति से होती है। यह एक वर्ग है व्यक्ति नहीं।

आधुनिक समाजों में अभिजन की है स्थित अर्जित एवं परिवर्तनीय होती है इसमें शिक्षा और निचले वायी विशेष सुविधायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक परिस्थिति दो प्रकार से समाज को जन्म दे रहे हैं :–

विकसित समाज एवं विकासशील समाज की अवधारणा सापेक्षिक है। विकासशील समाज व विकसित समाज का स्वरूप आर्थिक प्रस्थिति के कारण ही निर्धारित होती है जबकि शिक्षा भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विकासशील समाज – समाज जहाॅ विकास की प्रक्रिया नवीन है इसमें शिक्षा और औद्योगीकरण की प्रक्रिया धीमी होती है। यह कारण है कि भौतिक संस्कृति का विकास अति धीमा रहता है इनमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय विकसित देशों के लोगों से कम होती है । एक विकासशील देश वह है जिसमें प्राविधिक तथा भौद्विक साधनों की मात्रा उत्पादन एवं बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है। इसके परिणामस्वरूप श्रमिक को बहुत कम वेतन मिलता है। इसमें जैकब वाइनर के अनुसार पूंजी अधिक श्रम अधिक व प्राकृतिक साधनों आया इन सभी का उचित उपयोग करने की सम्भावना हो जिससे कि समाज अपनी जनंसंख्या को उॅचा जीवन स्तर प्रदान कर सके और प्रति व्यक्ति आय अधिक होने पर रहन सहन के स्तर को कम किये बिना अधिक लोगों का भरण–पोषण किया जा सके।

आर्थिक सामाजिक विविधता का रूपक समान है। विकासशील समाज जिसकी

मुख्य विशेषता है –

- प्रति व्यक्ति आय विकसित राष्टों की तुलना में कम हो।
- निर्धनता प्रत्यक्ष हो।
- मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग न हुआ हो।
- धार्मिक भावनाओं की अधिकता ।
- जन साधारण का निम्न जीवन स्तर।
- विकास की सम्भावनाएं प्रत्येक पहलू में परिलक्षित हों।
- कई व्यवसाय की प्रधानता।
- त्रुटिपूर्ण कई नीतियॉं।
- औद्योगीकरण की कमी ।
- निर्यात पर निर्भरता।
- धन का उपसमान वितरण ।
- मौसमी बेरोजगारी ।
- जनसंख्या का अधिक्य ।
- औसत आयु का आधिक्य।
- प्रौद्योगिकी विकास की कमी ।
- प्रौद्योगिकी ज्ञान की कमी।
- बाजार की खराब व्यवस्था।
- ग्रामीण अति संख्या।
- स्त्रियों की निम्न स्थिति।

विकसित समाज – वे समाज जहॉं आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सार्वजनिक प्रतिमान को अपनाते हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति हेतु लोगों की भूमिका विशिष्ट होती है। इन समाजों में आर्थिक कार्य व्यापक रूप में होता है। जनसंख्या सीमित एवं आर्थिक साधनों के साथ सामंजस्य होता है । इनकी विशेषतायें हैं :–

- प्रति व्यक्ति बहुत अधिक होती है।
- आय का प्रमुख भाग विनियोजन पर खर्च होता है।

- कृषि कार्य उन्नत आविष्कारों से परिपूर्ण होती है।
- प्रतिव्यक्ति पोषक भोजन की उपलब्धता।
- शिक्षा की उचित व्यवस्था
- महिलाओं की उच्च प्रस्थिति।
- कानून की महत्वा।
- प्रौद्योगिकीय विकास एवं उपयोग की अधिकता।
- यातायात एवं संचार अध्ययनों की अधिकता।
- नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र ।
- अर्जित प्रस्थिति की महत्ता।
- साक्षरता दर अधिक।
- नौकरशाही का विकसित रूप।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि विभिन्न समाजों के प्रगति का मापदण्ड विभिन्न प्रकार का होता है। प्रगति की निश्चितता ही व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति का निर्धारण करता है और यह विशेष परिवर्तनीय भी है जिसका प्रमुख माध्यम शिक्षा है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6. आर्थिक, सामाजिक विविधता के कारण बताइये।

....

....

....

7. समाज अधिकांशतः कितने प्रकार का होता है?

....

....

....

4.6 भाषायिक विविधता

भाषा भावाभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का संकेतिक साधन है। विचार शक्ति विधाता ने केवल मनुष्य को ही दी है। वह भावाव्यक्ति के साथ–साथ विचार भी करता है और विचार –विनिमय भी करता है। अपने आदि काल में भावाभिव्यक्ति तक सीमित था और मानव ने अपने अंग–प्रत्ययों के संचालन, भाव मुद्राओं और विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के माध्यम से करने लगा और फिर विचार प्रधान निश्चित ध्वनि संकेतों और उन ध्वनि संकेतों के लिये निश्चित लिपि का विकास कर लिया। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में रहने वाले लोगों ने विभिन्न प्रकार की भाषाओं का विकास कर लिया। भाषा का विकास सामाजिक अन्तःक्रिया द्वारा होता है और सामाजिक अन्तःक्रिया भाषा के माध्यम से होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भाषा का विकास मानव के मनोवेगों मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति के प्रयत्न स्वरूप हुआ है इस प्रकार से भाषा विचार प्रक्रिया का परिणाम एवं आधार दोनों है। विचार भाषा का विकास तो भाषा से विचार की अभिव्यक्ति नहीं है भाषा और विचार दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

पतंजलि ने भाषा को परिभाषित करते हुये कहा है "भाषा वह व्यापार है जिससे वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

स्वीट के अनुसार – "भाषा ध्वनियों द्वारा मानव के विचारों की अभिव्यक्ति है।" भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के स्वरूप, महत्व तथा कार्यों का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण किया उनकी दृष्टि में भाव एवं विकारों की अभिव्यक्ति के लिए किसी समाज द्वारा स्वीकृत ध्वनि संकेतों के समूह की सत्ता भाषा है। एक क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों ने विशेष भाषा का विकास कर लिया। जब मानव का सम्पर्क क्षेत्र बढ़ा वैसे–वैसे अनेक विभाषाओं और विभाषाओं से अनेक बोलियों का विकास हुआ। समान बोलियों की प्रतिनिधि बोली को विभाषा कहते और समान विभाषाओं से आधा क्षेत्र में अनेक बोलियों बांगरू, खड़ी बोली, बुन्देली, कन्नौजी, मेवाड़ी, मेधावी, हड़ौती, जैसे मेरी कुमांयुनी, गढ़वाली, अवधी ब्रज, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथली, बिहारी इत्यादि विकसित हुयी।

इन सभी भाषाओं ने भाषायिक विविधता उत्पन्न कर दिया। वेसे एक ही भाषा की बोलियों में काल, रचना, कारक, रचना, लिंग एवं भेद इत्यादि समान होते हैं। भाषा मानव जीवन के सम्पूर्ण विकास का आधार भी है। भाषायिक विविधता भी मानव समूहों को अलग करती है। क्योंकि भाषा विशेष क्षेत्र विशेष की पहचान बन जाती है और

ये भाषायिक संघर्ष को जन्म भी दे रहा है अपने भाषा के अस्तित्व से जोड़ता है क्योंकि –

- भाषा मानव व्यक्तित्व का आधार होती है।
- भाषा क्षेत्र विशेष की क्षेत्रीय एकता का आधार एवं पहचान होती है।
- भाषा क्षेत्र विशेष की सभ्यता व संस्कृति का संरक्षण एवं हस्तान्तरण करता है।
- भाषा मानव के भाव, विचार, अनुभव एवं आकांक्षाओं को सुरक्षित रखती है।

विश्व भर में हमारी भाषायें बोली जाती हैं कहा भी जाता है कि तीन कोस में बानी बदले कोस–कोस में बानी। विश्व भर की सभी भाषाओं को सीखना कठिन है परन्तु इन्हें इनके प्रयोग के आधार पर सात वर्गों में रखा जाता है। जिनके बारे में संक्षेप में आपको बताया जा रहा है।

मातृभाषा – जिस भाषा को व्यक्ति अपने शिशु काल में अपनी माता एवं सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का अनुकरण करके सीखता है उसे उस व्यक्ति की मातृभाषा कहते हैं। भाषा वैज्ञानिक कई समान बोलियों की प्रतिनिधि बोली को विभाषा और कई समान विभाषाओं की प्रतिनिधि विभाषा को मातृभाषा कहलाती है।

संस्कृति भाषा – जिस भाषा के साहित्य में किसी जाति अथवा राष्ट को मूल सभ्यता एवं सांस्कृतिक निहित होती है वह उस जाति अथवा राष्ट की संस्कृति भाषा कही जाती है।

राष्टीय भाषा – संसार के प्रायः सभी राष्टों में उनके भाषाओं का प्रयोग होता है। इनमें से कुछ भाषायें ऐसी होती हैं जिनके साहित्य में यथा राष्ट के इतिहास सभ्यता एवं संस्कृति और आकांक्षायें सुरक्षित रहती हैं उन्हें उस राष्ट की राष्टीय भाषा कहते हैं।

राष्टभाषा – सभी देशों में अनेक भाषाओं का प्रयोग होता है इनमें से कुछ भाषाओं को राष्टीय भाषाओं का दर्जा प्राप्त होता है। इन भाषाओं में जो सबसे सशक्त होती है जिसका साहित्य सबसे अधिक समृद्ध होता है और जो सबसे अधिक प्रयोग में लाई जाती है उसे राष्ट भाषा का दर्जा प्रदान किया जाता है।

राजभाषा – जिस भाषा का प्रयोग किसी राज्य की प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है उसे उस राज्य की राज भाषा अथवा शासकीय भाषा कहते हैं।

अन्तर्राष्टीय भाषा – वह भाषा जो विभिन्न राष्टों के मध्य विचारों। सूचनाओं के आदान प्रदान का माध्यम बनती है वह अन्तर्राष्टीय भाषा कहलाती है।

देशी भाषायें – वे सब भाषायें जिनका जन्म व विकास किसी देश विशेष में हुआ है उस देश की देशी भाषायें कहलाती हैं।

इस प्रकार से विविध प्रकार की भाषाओं का प्रयोग विविध देशों/प्राकृतिक क्षेत्रों की पहचान बन गयी और यह विविधता शिक्षा को भी प्रभावित करती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. भाषा क्या है?

....

....

....

9. विविध प्रकार की भाषाओं के नाम बताइये।

....

....

....

10. भाषायिक विविधता के कारण बताइये।

....

....

....

4.7 शारीरिक विभिन्नता/अक्षमता

कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। व्यक्तिगत भिन्नता प्रकृति द्वारा प्रदत्त स्वाभाविक गुण है। स्किनर ने लिखा है – व्यक्तिगत विभिन्नता में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है जिसका माप किया जा सके।

टायलर के अनुसार – *"शारीरिक आकार, स्वरूप, शारीरिक कार्यों, गति सम्बन्धी क्षमताओं, बुद्धि उपलब्धि, ज्ञान रूचियों अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों में माप की जा सकने वाली विभिन्नताओं की उपस्थिति सिद्ध की जा चुकी है।"*

सामान्य शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक स्थिति से अलग स्थिति के व्यक्ति

से अक्षमता के श्रेणी में रखा जाता है।

अक्षमता का अर्थ है कि सामान्य जीवन जीने योग्य अक्षमताओं की कमी। अक्षमता तीन प्रकार की होती है।

- शारीरिक अक्षमता
- मानसिक अक्षमता
- संवेगात्मक अक्षमता

शारीरिक अक्षमता – इसमें व्यक्ति के सामान्य रूप में सभी अंग नहीं होते हैं और इसीलिये वह सभी सामान्य कार्यों को करने में अक्षम रहता है।

मानसिक अक्षमता – इस प्रकार की अक्षमता में व्यक्ति का मस्तिष्क सामान्य कार्यों को करने में अक्षम हो जाता है।

संवेगात्मक अक्षमता – इस प्रकार की अक्षमता में व्यक्ति का अपने संवेगों पर नियन्त्रण नहीं रहता है। इसीलिये सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं करता है।

अक्षम विद्यार्थियों की विशेषतायें– इनका कोई न कोई शारीरिक अंग भंग होने से क्षतिग्रस्त होता है और मानसिक पिछड़ापन तो जन्मजात भी हो सकता है इसका एक कारण लगातार बीमारी भी हो सकता है।

- ये अपने दैनिक क्रियाकलापों को आम बालकों की तरह नहीं कर पाते हैं।
- इनका संवेगात्मक असंतुलन पाया जाता है प्रायः ये भावनाओं को रोक नहीं पाते।
- ये बच्चे प्रायः समस्याग्रस्त होते हैं।
- इनका व्यवहार बच्चों से अलग होता है।
- अधिकांशतः सामान्य जीवन का समस्यात्मक होने के कारण हीन भावना के शिकार हो जाते हैं।
- ये विद्यार्थी किसी के सहारे का आस तो रखते हैं परन्तु प्रेरणा सभी प्रकार के विकास का मार्ग प्रशस्त कर देती है।
- अक्षमता के कारण :–
- जन्मजात विकृति या कमी भी अक्षमता का कारण होती है।
- लम्बी बीमारी जो किसी अंग / मस्तिष्क / संवेगों को असंतुलित कर देती है।
- दुर्घटना के कारण भी किसी भी प्रकार की अक्षमता आ जाती है।

- दोषपूर्ण शारीरिक बनावट मानसिक अस्थिरता एवं संवेगात्मक असंतुलन को जन्म दे देती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. अक्षमता क्या है?

....

....

....

12. अक्षम बच्चों के कुछ गुण बताइये।

....

....

....

4.8 लैंगिक विविधता

सम्पूर्ण मानव जाति लिंग के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जाता है।

1. स्त्री, 2. पुरुष एवं 3. अलिंगी। मानव समाज में स्त्री एवं पुरुष बराबर ही हैं परन्तु आदिकाल से ही आनुपातिक स्तर कई बार डगमगाया सा रहा। नारी को पुरुष समाज में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही अपने शारीरिक बनावट के अनुसार अपने कार्यों को बांटकर आदिकाल से ही करते आये। स्त्री घर के अन्दर के सारे कार्यों को करती है। भारत समेंत विश्व के तमाम देशों की आधी आबादी लैंगिक विभेद के दंश को सह रही है। मानव प्रजाति की उत्पत्ति के साथ ही यह विभेद तब प्रारम्भ हुआ जब स्त्रिी एवं पुरुष ने अपने आपको जीविका सम्बन्धी कार्यों एवं प्रजनन की क्षमता एवं भूमिका के आधार पर स्वयं को बाट लिया परन्तु समय और परिस्थिति के साथ–साथ इस बटवारे की लकीर गाढ़ी होती गयी। और पुरुष को वर्चस्व तथा स्त्री को आर्थिक, सामाजिक शारीरिक पिछड़ापन हिस्से में मिल गया। लम्बे समय तक पारिवारिक एवं सामाजिक परतन्त्रता अब स्त्री के व्यवहार में परिलक्षित हो रहा

है। जिसका प्रभाव उसके अधिगम पर पड़ रहा है। हालांकि महिलायें समय बदलने के साथ अब अवसर पाकर समाज के शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, विधिक, प्रशासनिक, चिकित्सा, तकनीकी, वाणिज्यिक एवं कृषि के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा को प्रमाणित कर रही हैं। परन्तु समाज में लैंगिक विविध् ाता है, इसका जीता–जागता प्रमाण स्त्री साक्षरता दर में पिछड़ापन और महिला सुरक्षा को लेकर हमारी चिन्ता में परिलक्षित होता है। इसलिए इसका प्रमुख कारण भी हमें जानना होगा जो कि निम्नवत है–

1. स्त्रियों एवं पुरुषों को प्रदत्त दायित्व एवं प्रकार्यों में अन्तर के कारण पुरुषों के कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण और महिलाओं के कार्यों को कम महत्वपूर्ण समझाा जाना भी लैंगिक विभेद उत्पन्न कर रहा है।

2. स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता एक प्रमुख कारण है। यह निर्भरता आर्थिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी अधिक है। स्त्रियों की इस निर्भरता को पुरुष ने अपने वर्चस्व का आधार बनाया और इसी निर्भरता ने स्त्रियों की पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को नीचे कर दिया और परम्परागत रूप से पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति में महिलाओं को बराबर का दर्जा नहीं दिया जाता है।

3. शारीरिक बनावट एवं शक्ति भी लैंगिक विभेद का एक प्रमुख कारण है। इसी कारण प्रकृति ने जैविक रूप से महिला, पुरुष एवं अलिंगी तीन वर्गों में बाट दिया। इसके कारण पुरुष को आदिकाल से ही शारीरिक रूप से अधिक ताकतवर होने के कारण घर के बाहर के कार्यों एवं सुरक्षा के कार्यों को करने लगा। और स्त्री को भी अपनी सुरक्षा में रख पाया। यह कारण भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसी के कारण समाज के कई कार्य उदाहरण के तौर पर सुरक्षा इत्यादि के कार्यों में महिलाओं को भागीदारी बहुत देर से मिली।

4. मानसिक गुण एवं प्रवृत्तियां भी लैंगिक विभेद का एक प्रमुख कारण है। पुरुष एवं स्त्री आपस में मानसिक गुणों एवं प्रवृत्तियों के कारण अलग होता है। पुरुष जहाँ अधिक धैर्यवान, गूढ़, संघर्षशील, चुनौतियों को लेने वाला, कठोर इत्यादि गुणों से परिपूर्ण होता है वहीं स्त्री अधिक संवेदनशील, कोमलहृदय, समर्पण, प्रेम, दयालुता, सहिष्णु, इत्यादि गुणों के लिये जानी जाती है। ये प्रवृत्तियां जीवन पर्यन्त स्त्री एवं पुरुष के व्यवहार एवं जीवन शैली को प्रभावित करती है।

5. शैक्षिक प्रस्थिति भी लैंगिक विभेद का एक कारण बनी है। आदिकाल से ही बालिकाओं की शिक्षा की अपेक्षा बालकों की शिक्षा को अधिक बल दिया गया।

क्योंकि यह माना गया कि शिक्षा पुरुषों को सामाजिक धार्मिक एवं जीविका सम्बन्धी कार्यों के लिए आवश्यक है। शैक्षिक रूप से महिलाओं का पिछड़ापन उन्हें आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन की ओर ले गया।

6. धर्म भी पुरुष एवं महिलाओं को उनके गृह कार्यों एवं प्रजनन सम्बन्धी कार्यों के आधार पर विभाजित करता है। अधिकांश धर्मों में पुरुषों एवं महिलाओं के दायत्विों का स्पष्ट वर्णन किया है जिसके कारण महिलाओं को धर्म के विरोध में जाकर बराबरी का दर्जा देने की इच्छा कर पाना अधिंकांश समाजों ने कठिन माना है।

अलिंगी – पुरुष एवं महिला के शारीरिक बनावट एवं प्रजनन क्षमता तथा विशेषताओं के विपरीत अलिंगी वर्ग में वे लोग आते हैं जिनमें पुरुष अथवा महिला होने के शारीरिक बनावट एवं प्रजनन क्षमता से सम्बन्धित गुण स्पष्ट रूप से जन्म से ही परिलक्षित नहीं होते हैं। यह वर्ग आदिकाल से ही सभी समाजों में उपेक्षा का शिकार रहा है। इन्हें शैक्षिक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं पारिवारिक प्रस्थिति नहीं दी गयी परन्तु मानवाधिकारों के लिये आवाज बुलन्द करने वाले इस युग में अब इस वर्ग के विकास के लिए भी कुछ पैमाने एवं अधिकार तय किये गये हैं।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13. लैगिक विविधता क्या है?

....

....

....

14. लैंगिक विभेद के क्या कारण हैं?

....

....

....

4.9 सारांश

विविधता की परिभाषा में भी विविधता है। प्रश्न यह है कि विविधता को कितने दूर तक वृहद रूप में लेकर परिभाषित किया जाये। विविधता आयु एवं जाति से वृहद तथ्य है। विविधता वृहदता अर्थ में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। विविधता का अर्थ है, अन्तर है। 28 अप्रैल 2010 को एक सर्वेक्षण में पाया गया जिसमें विविधता के विषय में ये तथ्य उभरे।

- वृहद स्तर पर रूचि एवं अनुभव ।
- प्रजाति, सामाजिक आर्थिक स्थिति, भाषायिक, भौगोलिक आकार–प्रकार, सांस्कृतिक स्तर पर अन्तर।
- अनुभव, विचारों एवं जीवन अनुभवों में विविधता।
- विविधता को प्रजाति, आयु, आर्थिक, भौगोलिक, दार्शनिक, लैंगिक, धर्म, राजनैतिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत अनुभव इत्यादि के आधार पर मापा जा सकता है।
- विविधता मानव के विचारों अनुभवों, रूचियों, स्थितियों, प्रस्थितियों, आदतों के अन्तर के रूप में देखा जा सकता है।
- वो अन्तर जो एक व्यक्ति को अन्य से अलग करता है जो प्रजाति लैंगिक आकार रंग सामर्थ्य में प्रतीत होता है।
- कुछ के अनुसार प्रजाति, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रस्थिति में अन्तर ही विविधता कहा जा सकता है।
- कुछ के अनुसार रंग, भाषा, आयु, लिंग, सांस्कृतिक, भाषायिक एवं प्रजातीय अन्तर ही विविधता का मापक है।
- विविधता में मानव प्रजाति से सम्बन्धित सभी प्रकार के अन्तर आते हैं।

  विविधता में भाव प्रजाति से सम्बन्धित सभी प्रकार के अन्तर आते हैं।
- विविधता दो प्रकार से परिभाषित होती है :–

  अ. **आन्तरिक विविधता** – वैचारिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक रूचि, आदत, अनुभव ।

  ब. **बाह्य विविधता** – रंग, मान्यतायें, आकार, प्रजाति, भौगोलिक, आर्थिक–सामाजिक, प्रस्थिति, लैंगिक धार्मिक, व्यावसायिक।

विविधता के विभिन्न आयाम में लैंगिक, धार्मिक मान्यतायें, प्रजाति वैवाहिक, प्रस्थिति, अभिभावकों की प्रस्थिति, आयु, शिक्षा, शारीरिक एवं मानसिक अभियोग्यता व्यवसाय, भाषा, भौगोलिक स्थिति भी सम्मिलित है।

इससे एक बात स्पष्ट है कि विविधता का तथ्य सम्मान एवं मान्यता को परिपूर्ण है अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग विशेषतायें एवं अस्तित्व है।

विविधता वास्तव में अन्तर को सम्मानपूर्वक मान्यता देने से है। विविधता को सम्भव चलने वाली सचेत प्रयासों एवं मान्यताओं को प्रक्रम माना जाता है जिसमें निहित है।

- मानव प्रजाति के सांस्कृतिक एवं प्रकृतिक वातावरण सम्बन्धी विशेषताओं को समझाना एवं प्रशंसा करना।
- हमारे विचारों से दूसरों के विचारों में विभिन्नता को भी सम्मान स्वीकार करना।
- विभिन्नता को समझने में होने के अनुभव के साथ जानने के तरीके भी सम्मिलित होते हैं।
- व्यक्तिगत, सांस्कृतिक एवं संस्थागत विभिन्नतायें किसी के लिये लाभदायक तो दूसरे के लिए कष्टप्रद होता है।
- एक साथ रहने व एक कार्य करने की अभिक्षमता एक स्वस्थ मानसिक स्थिति उत्पन्न करना।

मानव एक समाज में रहता है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये यह उसे पूर्ण रूप से संगठित करता है और इस व्यवस्था को निश्चित एवं स्थापित करता है यही व्यवस्था संस्कृति कहलाती है। संस्कृति वास्तव में समाज में रहने का ढंग है।

टायलर ने कहा है – "संस्कृति वह जटिल पूर्णता है जिसमें रिवाज और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित की जाने वाली अन्य विशेषतायें और आदतें सम्मिलित रहती है।

वहीं **रोसके** ने किसी विशेष समूह व स्थान में निवास करने वाले विशेष व्यक्तियों के जीवन व्यतीत करने की सामूहिक विधि ही को संस्कृति बताया है।

संस्कृति वास्तव में मूल्यों, शैलियों, भावनात्मक लगावों, बौद्धिक अभियानों का संसार है। संस्कृति की कुछ निश्चित विशेषताएं हैं जैसे –

- संस्कृति अपने शारीरिक, मानसिक क्षमताओं में अंतर के कारण विविध प्रकार

की संस्कृति को निर्मित व विकसित करते हैं।

- संस्कृति सीखी जाती है। संस्कृति मानव के सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों का ही योग होती है।
- संस्कृति हस्तान्तरित की जाती है। संस्कृति को नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी के द्वारा ही प्राप्त करती है। इसमें भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि भाषा संस्कृति को संजोने व हस्तान्तरित करने का माध्यम बनते हैं।

संस्कृति की अपनी विशिष्टता एवं विभिन्नता होती है। प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है।

सांस्कृतिक विविधता का अर्थ –

संस्कृतियों में विविधता समाजों की विविधता के कारण ही होती है। संस्कृति का प्रचार–प्रसार एक निश्चित क्षेत्र में होता है और यह सांस्कृतिक क्षेत्र कहलाता है। हॉवल के अनुसार– एक सांस्कृतिक क्षेत्र भौगोलिक क्षेत्र के उस भाग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे संस्कृति इतनी मात्रा में समानता प्रकट करती है और उसे उन संस्कृतियों से पृथक कर देती है। जो क्षेत्र के बहाव है।" समाजशास्त्री हरकोबिस्ट लिखते हैं कि – "संस्कृति क्षेत्र महत्वपूर्ण है चूँकि यह दिखाता है कि किस प्रकार से आन्तरिक संगठन की भॉति भूमि के विस्तार में भी मानव सभ्यता की एकतायें कायम रहती हैं। इसी प्रकार से यह सांस्कृतिक क्षेत्र से बाहर दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र होते हैं जिसमें भौतिक एवं अभौतिक तत्व दोनों में ही आपसी अन्तर होता है। अभौतिक तत्व में परिवर्तन बहुत ही धीमा होता है परन्तु वह सभी संस्कृतियों में यह अन्तर दीर्घकालीन होता है क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव के विचार, चिन्तन भावनाओं, आचार–विचार, ज्ञान विश्वास कला, आदतों, दर्शन एवं अन्य क्षमताओं से होता है। सांस्कृतिक विविधता वास्तव में विभिन्न संस्कृतियों के मध्य अन्तर से ही जिसमें विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के प्रति सम्मान व समान दृष्टि उत्पन्न हो।

सामाजिक क्षेत्र के कई पक्ष हैं – आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक, शैक्षणिक इत्यादि। ये सभी पक्ष एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सामाजिक जीवन के दो पहलू हैं – आर्थिक और गैर आर्थिक। आर्थिक पक्ष के अन्तर्गत उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रियायें आती हैं और सामाजिक जीवन के गैर आर्थिक पक्ष में सम्मिलित है – सामाजिक संरचना, राजनीतिक व्यवस्था, स्तरीकरण व्यवस्था, और सांस्कृतिक व्यवस्था। सामाजिक जीवन के ये दोनों पहलू अन्तः सम्बन्धित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आर्थिक कार्यशैली का जो रूप अर्थव्यवस्था निर्धारित करती

है उसी से सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रकृति निर्धारित हो जाती है। आर्थिक दशायें सामाजिक –सांस्कृतिक व्यवस्था की प्रकृति निर्धारित करती है वरन सामाजिक सांस्कृतिक दशायें भी अर्थव्यवस्था की प्रकृति निर्धारित करती है। सामाजिक संरचना आर्थिक विकास को प्रभावित कर ली है। एडमस्मिथ श्रम पर बल देते हैं और श्रम को ही धन एवं मूल्य का स्त्रोत माना है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में क्रान्तिकारी मोड़ आया। दूसरे विश्व समाज के अनेक वर्गों एवे स्वरूपों में बाट दिया। इसके ही सामाजिक आर्थिक स्थिति जैसे अवधारणा को जन्म दिया।

विकसित समाज एवं विकासशील समाज की अवधारणा सापेक्षिक है। विकासशील समाज व विकसित समाज का स्वरूप आर्थिक प्रस्थिति के कारण ही निर्धारित होती है जबकि शिक्षा की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका, भाषा भावाभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का संकेतिक साधन है। विचार शक्ति विधाता ने केवल मनुष्य को ही दी है। वह भावाभिव्यक्ति के साथ–साथ विचार भी करता है। और विचार विनिमय भी करता है। अपने आदि काल में भावाभिव्यक्ति तक सीमित था और मानव ने अपने अंग–प्रत्ययों के संचालन, भाव मुद्राओं और विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के माध्यम से करने लगा और फिर विचार प्रधान निश्चित ध्वनि संकेतों और उन ध्वनि संकेतों के लिये निश्चित लिपि का विकास कर लिया। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में रहने वाले लोगों ने विभिन्न प्रकार की भाषाओं का विकास कर लिया। भाषा का विकास सामाजिक अन्तःक्रिया द्वारा होता है और सामाजिक अन्तःक्रिया भाषा के माध्यम से होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भाषा का विकास मानव के मनोवेगों मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति के प्रयत्न स्वरूप हुआ है इस प्रकार से भाषा विचार परिणाम एवं आधार दोनों हैं। विचार भाषा का विकास तो भाषा से विचार की अभिव्यक्ति नहीं है भाषा और विचार दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

शारीरिक विभिन्नता / अक्षमता

कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। व्यक्तिगत भिन्नता प्रकृति द्वारा प्रदत्त स्वाभाविक गुण है। स्किनर ने लिखा है – व्यक्तिगत विभिन्नता में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है जिसका माप किया जा सके।

टायलर के अनुसार – *"शारीरिक आकार, स्वरूप, शारीरिक कार्यों , गति सम्बन्धी क्षमताओं, बुद्धि, उपलब्धि ज्ञान रूचियों अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों की माप की जा सकने वाली विभिन्नताओं की उपस्थिति सिद्ध की जा चुकी है।'*

लैंगिक विविधता

1. स्त्री 2. पुरुष एवं 3. अलिंगी। मानव समाज में स्त्री एवं पुरुष बराबर ही है। परन्तु आदिकाल से ही आनुपातिक स्तर कई बार डगमगाया सा रहा। नारी को पुरुष समाज में अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही अपने शारीरिक बनावट के अनुसार अपने कार्यों को बांटकर आदिकाल से ही करते आये। स्त्री घर के अन्दर के सारे कार्यो को करती है। भारत समेंत विश्व के तमाम देशों की आधी आबादी लैंगिक विभेद के दंश को सह रही है। मानव प्रजाति की उत्पत्ति के साथ ही यह विभेद तब प्रारम्भ हुआ जब स्त्री एवं पुरूष ने अपने आपको जीविका सम्बन्धी कार्यों एवं प्रजनन की क्षमता एवं भूमिका के आधार पर स्वयं को बांट लिया परन्तु समय और परिस्थिति के साथ –साथ इस बटवारे की लकीर गाढ़ी होती गयी और पुरुष को वर्चस्व तथा स्त्री को आर्थिक सामाजिक शारीरिक पिछड़ापन हिस्से में मिल गया। लम्बे समय तक पारिवारिक एवं सामाजिक परतन्त्रता अब स्त्री के व्यवहार में परिलक्षित हो रहा है जिसको प्रभाव उसके अधिगम पर पड़ रहा है। हालॉकि महिलायें समय बदलने के साथ अब अवसर पाकर समाज के शैक्षिक आर्थिक सामाजिक राजनैतिक विधिक प्रशासनिक चिकित्सा तकनीकी वाणिज्यिक एवं कृषि के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा को प्रमाणित कर रही है। परन्तु समाज में लैंगिक विविधता है। इसका जीता जागता प्रमाण स्त्री साक्षरता दर में पिछड़ापन और महिला सुरक्षा को लेकर हमारी चिन्ता में परिलक्षित होता है।

4.10 अभ्यास के प्रश्न

1. विविधता का अर्थ एवं अवधारणा को स्पष्ट करें एवं विविध प्रकार की विविधता का विस्तार से वर्णन कीजिये।
2. मानव समूहों में विविधता क्यों होता है? सांस्कृतिक विविधता किस प्रकार से मानव समूहों को प्रभावित करता है?

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विविधता आयु एवं जाति से बृहद तथ्य है। विविधता वृहदता अर्थ में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। विविधता का अर्थ है, अन्तर है।
2. विविधता विश्व में विशिष्ट शिक्षा हेतु एक मौलिक तत्व के रूप में उभर रहा है। शिक्षा तन्त्र भी इस तथ्य से अधूरा नहीं रह गया है। जब उपनिवेशवाद की समाप्ति के पश्चात समाजवाद एवं लोकतन्त्रत्मक शासन पद्धति का उदय हुआ।

3. विविधता को प्रजाति, आयु, आर्थिक, भौगोलिक, दार्शनिक, लैंगिक, धर्म, राजनैतिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत अनुभव इत्यादि के आधार पर मापा जा सकता है।

4. एक सांस्कृतिक क्षेत्र से बाहर दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र होते हैं जिसमें भौतिक एवं अभौतिक तत्व दोनों में ही आपसी अन्तर होता है।

5. संस्कृति क्षेत्र महत्वपूर्ण है चूँकि यह दिखाता है कि किस प्रकार से आन्तरिक संगठन की भांति भूमि के विस्तार में भी मानव सभ्यता की एकतायें कायम रही है।

6. सामाजिक जीवन के ये दोनों पहलू अन्तः सम्बन्धित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आर्थिक कार्यशैली का जो रूप अर्थव्यवस्था निर्धारित करती है उसी से सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रकृति निर्धारित हो जाती है।

7. विकासशील समाज विकसित समाज अविकसित समाज ।

8. भाषा भावाभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का संकेतिक साधन है।

9. मातृभाषा, संस्कृति भाषा, राष्टीय राजभाषा, अन्तर्राष्टीय भाषा

10. किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों ने विशेष भाषा का विकास कर लिया। जब मानव का सम्पर्क क्षेत्र बढ़ा वैसे–वैसे अनेक विभाषाओं और विभाषाओं से अनेक बोलियों का विकास हुआ।

11. सामान्य शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक स्थिति से अलग स्थिति के व्यक्ति से अक्षमता के श्रेणी में रखा जाता है।

12. ये अपने दैनिक क्रियाकलापों को आम बालकों की तरह नहीं कर पाते हैं। इनका संवेगात्मक असंतुलन पाया जाता है प्रायः ये भावनाओं को रोक नहीं पाते। ये बच्चे प्रायः समस्याग्रस्त होते हैं।

13. मानव जाति लिंग के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जाता है।

14. स्त्रियों एवं पुरुषों को प्रदत्त दायित्व एवं प्रकार्यो में अन्तर के कारण स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता एक प्रमुख कारण है। शारीरिक बनावट एवं शक्ति भी लैंगिक विभेद का एक प्रमुख कारण है।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत, 2004 , प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

2.. मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, (ए.आई.आर. 1992, एस.पी., 1858)

3. फ्रांसिस कोरेली मुल्लिन बनाम प्रशासक केन्द्र शासित राज्य दिल्ली (ए.आर. आर. 1981)

4. दैनिक जागरण, शनिवार, 3 अप्रैल, 2010, गोरखपुर, पृष्ठ 10 ।

इकाई – 5 : खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 खेल की परिभाषा एवं अवधारणा

5.4 खेल और विविधता

5.5 अधिगम प्रणाली एवं विविधता

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास के प्रश्न

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

इस संसार में कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते हैं। वंशानुक्रम एवं वातावरणीय कारक मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं और ये दोनों कारक के साथ कारण भी हैं। इसीलिये सभी बच्चों को बचपन से ही खेल एवं अधिगम में विविधता आती है उसका कारण शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, पारिवारिक, विद्यालयी, कारण हो सकते हैं। विद्यार्थियों में अनेक योग्यतायें, रूचियॉं, समस्यायें, खेल व अधिगम में विविधता लाते हैं इस इकाई में हम खेल व अधिगम में विभिन्नता के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. खेल एवं अधिगम की अवधारणा को समझते हुये स्पष्ट कर सकेंगे ।

2. खेल एवं अधिगम की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. खेल एवं अधिगम के सिद्धान्त का वर्णन कर सकेंगे।
4. खेल के विविध प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 खेल की परिभाषा एवं अवधारणा

भिन्नता की अवधारणा एवं कारण – विभिन्नता के अवधारणा को स्पष्ट करते हुये बयचर ने स्पष्ट किया कि– *"एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से अन्तर एक सार्वजनिक घटना है।"* विभिन्नतायें इतनी अधिक हैं कि हम मात्र सोच ही सकते हैं। ये सभी अन्तर व्यक्तियों में लैंगिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रस्थिति, भाषायिक, सांस्कृतिक एवं शारीरिक कारणों से होता है। खेल व अधिगम में जो अन्तर हम शिक्षण के दौरान पाते हैं उनका कई कारण हो सकते हैं इन विभिन्नताओं के विषय में हम आगे जानकारी प्राप्त करेंगे।

- **शारीरिक विभिन्नता** – शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में अनेक प्रकार का अन्तर दृष्टिगत होता है जेसे रंग, रूप, भार, कद, बनावट, यौन भेद।
- **मानसिक विभिन्नता** – मानसिक विभिन्नता दृष्टि से व्यक्तियों में विभिन्नताओं को हम देख सकते हैं इनसे व्यक्ति प्रभावशाली, अत्यधिक बुद्धिमान, कम बुद्धिमान, सामान्य बुद्धिमान हो सकता है। यह आयु के साथ परिस्थिति होता रहता है। मानसिक विभिन्नता खेल एवं अधिगम में अन्तर कर देता है। खेल चयन के प्रकार व अधिगम की गति प्रभावित होती है।
- **संवेगात्मक विभिन्नता** – संवेगात्मक दृष्टि से व्यक्तियों की विभिन्नता को सहज ही जाना जा सकता है। संवेगात्मक विभिन्नता व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। कोई व्यक्ति अधिक संयमी शान्त, समायोजित हो जाता है तो दूसरी ओर उसकी शिक्षा के स्तर एवं खेल चयन पर भी प्रभाव डालती है उदाहरणार्थ– बचपन के खेल में बालिकायें उस खेल को चुनती हैं जो शान्तिपूर्ण हो तो अधिक चंचल बालक बन्दूक चलाने का खेल खेलता है।
- **रूचिगत विविधता**– रूचियों का मानव जीवन में एक खास महत्व है। किसी भी रूचि कथा साहित्य, खेल अन्य सृजनात्मक कार्यों में हो सकती है। इससे विद्यार्थियों में सीखने की गति, आदत, क्षमता को प्रभावित कर देता है। कई अध्ययन यह बताते हैं कि रूचि का अधिगम व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। और रूचि खेल व्यवहार को भी प्रभावित करता है।
- **विचारगत विभिन्नता** – विचारों की विभिन्नता एक सहज प्रवृत्ति है विचार व्यक्ति का जीवन जीने का तरीका बन जाता है। विचार एक बहुत ही गूढ़ विविध

ाता उत्पन्न करता है क्योंकिय इसका प्रभाव अप्रत्यक्ष है और इस पर दूसरों का प्रभाव कम पड़ता है।

- **गत्यात्मक विभिन्नता** – गत्यात्मक विभिन्नता व्यक्ति को अधिक कियाशील बना देती है। यह आयु के साथ बनती है। क्रो एवं क्रो के अनुसार – शारीरिक क्रियाओं में सफल होने की योगयता में एक समूह के व्यक्तियों में भी महान विभिन्नता होती है।
- **व्यक्तित्व विभिन्नता** – व्यक्तित्व की विभिन्नता व्यक्ति की सहज गुण है। **बिग व हण्ट** – "व्यक्तित्व एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान और इसकी विशेषताओं के योग का उल्लेख करता है।" 'व्यक्तित्व' की अवधारणा की व्यापकता को इंगित करते हुए डेवर ने स्पष्ट किया है कि – "व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन में आदान–प्रदान में व्यक्त करता है।" स्पेंगर ने समाजशास्त्रीय आधार पर व्यक्तित्व विभिन्नता के छः प्रकार के सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक एवं कलात्मक हैं।

बालक की सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों में खेल की प्रवृत्ति सबसे अधिक व्यापक एवं महत्वपूर्ण है मनोवैज्ञानिक ने खेल का अर्थ व्यक्त करते हुए **मैक्टगल** ले स्पष्ट किया है कि – "खेल स्वयं अपने लिये की जाने वाली एक क्रिया है, या खेल एक निरुद्देश्य क्रिया है, जिसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।"

हरलॉक के अनुसार – "अन्तिम परिणाम का विचार किये बिना कोई भी क्रिया जो उससे प्राप्त होने वाले आनन्द के लिये की जाती है।"

खेल की विशेषतायें – रायबर्न ने खेल की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुये कहा है कि खेल एक साधन है। जिसका उपयोग दूसरे स्व द्वारा उस समय किया जाता है जब हमारी विभिन्न मूलप्रवृत्तियां अपने आप को प्रकाश में लाने की चेष्टा करती है।"

खेल की ये विशेषतायें हैं :–

- खेल एक जन्मजात और स्वाभाविक प्रवृत्ति है।
- खेल स्वतन्त्र एवं आत्मप्रेरित होता है।
- खेल स्फीर्ति एवं आनन्त प्रदान करते हैं।
- खेल एक खेल ही है।
- खेल सम्पूर्ण ध्यान रूचि को केन्द्रित करता है।

- यह शारीरिक एवं मानसिक क्रिया है।
- खेल कई प्रकार के होते हैं ।
- परीक्षणात्मक खेल – ये व्यक्तिगत खेल है।

खेल के विविध प्रकार

गतिशील खेल – इसमें भाग–दौड़ , उछल–कूद शरीर की गति इत्यादि आते हैं।

रचनात्मक खेल – इसमें बच्चे कुछ नया निर्माण करके आनन्द लेते हैं।

लड़ाई के खेल – इन खेलों में हार–जीत का महत्व अधिक है। इसमें कबड्डी, मुक्केबाजी, कुश्ती इत्यादि ।

बौद्धिक खेल – ये बुद्धि का प्रयोग करने वाले खेल हैं जैसे शतरंज, पहेलियॉ क्विज इत्यादि ।

भूमिका सम्बन्धी खेल – इसमें बच्चे किसी की भूमिका में वह कर व्यस्क के जेसे व्यवहार करते हैं।

खेल अक्सर स्वाभाविक आनन्द के लिये ही खेले जाते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक ने इनके कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये हैं।

1. **अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त** – यह प्राचीन जिसे शलिर एवं हरबर्ट स्पेन्सर ने प्रतिपादित किया है इन्होंने यह माना कि बालक अपना अतिरिक्त शक्ति खेलने में व्यय करता है।
2. **पूर्व अभिनय का सिद्धान्त** – इसका प्रतिपादन मालेब्रेन्स इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन दोनों ने यह व्यक्त किया कि खेल में बच्चे पूर्व जीवन की तैयारी करते हैं स्किनर एवं हैरीमन ने भी कहा है कि खेल में बच्चा अनायास ही वह सीख लेता है जिसे वह ज्ञात रूप में सीखने के लिए खेल खेलता है।
3. **पुनरावृत्ति का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जी0 स्टेनले हाल ने की है उनके अनुसार बालक अपने खेलों में प्रजातीय अनुभवों की पुनरावृत्ति करता है वह अपने पूर्वजों द्वारा किये गये कार्य को ही दोहराता है।
4. **मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मैक्कडगल ने स्पष्ट किया है कि खेल, मूलप्रवृत्तियों का ही प्रदर्शन है। बच्चा अपने मूलप्रवृत्तियों को खेल में प्रदर्शित करता है।

5. **पुनः प्राप्ति का सिद्धान्त** – इस का प्रतिपादक लाजारस और डब्लू पैटिक ने किया है। इनके अनुसार खेल खोयी शक्ति का पुनः अहसास एवं प्राप्ति होती है खेल कार्य से विश्राम देता है और पुनः व्यक्ति को संजीवती देकर नीवसता को दूर करता है।

6. **परिष्कार का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त में परिष्कार का अर्थ है **शुद्धिकरण** और खेल व्यवहार को शुद्ध करता है यह मन के अवरूद्ध प्रवृत्तियों एवं संवेगों को प्रस्तुत करके मन को भी तृप्त करता है।

7. **कियाशीलता का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जॉन डी0 वी0 ने किया जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि खेल व्यक्ति को क्रियाशील बनाते हैं।

8. **व्यक्तित्व का सिद्धान्त** – ये प्रकार कालान्तर में नहीं बाल्यावस्था से ही व्यवहार में परिलक्षित होने लगता है और इससे अधिगम व खेल के चयन प्रकार, गति इच्छा पर प्रभाव पड़ता है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. खेल क्या है?

....

....

....

2. विविधता का प्रभाव कक्षा–कक्ष में किस प्रकार दिखता हैं?

....

....

....

5.4 खेल और विविधता

अनेक अध्ययनों में इस तथ्य को उजागर किया है कि खेल बच्चों की विविधता के प्रति जागरुकता प्रस्तुत करते हैं। बच्चे धीरे–धीरे अपने मध्य अन्तर को समझते हैं और यह वो सच है कि हम कई मायने में एक दूसरे से अलग हैं पर खेल में ही

आयु के साथ अन्तर प्रदर्शित होने लगता है।

प्रजातीय जागरूकता एवं खेल में विविधता :–फेगेट एवं लीनबैच (1989) ने यह अध्ययन करके पाया कि प्रजातीय जागरूकता एवं विविधता बच्चों को आयु के प्रारम्भिक चरणों में ही स्पष्ट होने लगती है। खेल के चयन में भी प्रजातीय विशेषतायें प्रदर्शित होती हैं कई मनोवैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह विविधता 18 माह की आयु में ही दिखायी देने लगता है। 04 से 05 आयु तक की आयु में प्रजातीय गुणों को लेकर बच्चों में तनाव आता है वे शरीर के रंग के प्रति सतर्क हो जाते हैं।

लेजरवर्ग, चैपिन, रोजेन बलॉए एवं लोवो वानडेय (1988) ने अपने अध ययन में यह स्पष्ट किया कि 3–4 आयु वर्ग के बच्चे ही अपने समान समूहों का चयन करने लगते हैं इसमें वे अपने रंग को बदुधा आधार बना लेते हैं ये अधिकांशतः क्षेत्रीयता के आधार पर भी हो सकते हैं । बच्चे उन्हीं खिलौनों का भी चयन करना पसन्द करते हैं। जिनका रंग रूप उनकी अपनी प्रजाति जैसा है। 1958 में एक अध्ययन में यह भी निष्कर्ष निकला कि कई बार अपनी प्रजाति विशेषताओं से दूर होकर दूसरे प्रजातीय विशेषताओं को भी पसन्द करने लगते हैं।

फिन्केलसटिन एवं हासकिन (1983) ने अपने एक अध्ययन में यह पाया कि अधिकांश बच्चे अपने जैसे रंग वाले बच्चों को ही दोस्त बनाकर खेलते हैं।

खेल एवं लैंगिक भेद – खेल मानव की स्वाभाविक प्रकृति है यह मानव के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। फामेट एवं थीन बैच के अनुसार बच्चे 24 माह की आयु में ही लैंगिक विभेद पहचानने लगते हैं। बच्चे लैंगिक विभेद के प्रति सतर्क हो जाते हैं और यह भी देखा गया कि आयु बढ़ने के साथ साथ लैंगिक विभेद के प्रति सतर्कता बढ़ती जाती है। बच्चे अपने–अपने भावी जीवन के दायित्वों को भूमिका के रूप में खेलते हैं। लड़के उन खेलों को खेलते हैं जो शक्ति वाले, लड़ाई वाले, कृंद रचना करने वाले, क्रिकेट, फुटबाल इत्यादि हो सकते हैं। लड़का बचपन में भी गुड़िया का खेल नहीं खेलता वरन लड़कियॉ गुड़ियों को बचपन में बहुत पसन्द करती हैं। गुड़ियो को खाना बनाकर खिलाना, नहलाना, स्कूल भेजना इत्यादि का खेल खेलती हैं वो लड़के घर के खेल में भी आफिस जाते हैं कार चलाते हैं और वही सब अपने परम्परागत कार्यों को भूमिका के रूप में देखते हैं। खेलों के प्रकार एवं उनके चयन पर लैंगिक विभेद स्पष्ट दिखायी पड़ता है। आयु बढ़ने के साथ ही मित्रता व खेल दोनों ही समान लिंगों में ही होने लगता है। समलिंगों आपस में ही मित्रता करते हैं और यह दीर्घ कालीन होता है।

समाजिक आर्थिक विभेद एवं खेल – समझना तो बहुत ही कठिन है कि क्या खेलों का किसी के सामाजिक, आर्थिक स्थिति के साथ कोई सम्बन्ध होगा । इस तथ्य को भी मनोवैज्ञानिकों ने बहुत ध्यान दिया और इस पर भी अध्ययन हुये। और जो परिणाम प्राप्त हुये उसी के आधार पर हम ये तथ्य को समझ सकेंगे।

सिमलान्सकी (1983) ने अपने एक अध्ययन में पाया कि जो बच्चे निम्न आर्थिक–सामाजिक प्रस्थिति वाले होते हैं वे उसी स्तर के निचले स्तर के सामाजिक नाटकों को प्रस्तुत करते हैं। पियाजे परटेन एवं एबिन (1976) ने अपने अध्ययन में यह भी प्राप्त किया कि मध्यम वर्ग घरों के बच्चों निम्न वर्ग के घरों के बच्चों की अपेक्षा अधिक रचनात्मक, सहयोगपूर्ण एवं समन्वयपूर्ण खेलों का चयन करते हैं। उड़विन एवं शुमकतर (1984) ने अपने अध्ययन में देखा कि सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि का खेल चयन के साथ सीधा सम्बन्ध है।

ग्रीकिंग (1980) ने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि मध्य वर्गीय परिवारों के बच्चे विविध प्रकार के खेलों का चयन करते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया कि कल्पनात्मक खेलों का चयन पर किसी प्रजाति पारिवारित पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर यह तो स्पष्ट है कि सुविधा सम्पन्न परिवारों के बच्चों को किसी भी प्रकार के खेलों के चयन की सुविधा रहती है। वहीं सुविधा विहीन परिवारों के बच्चों को यही सुविधायें प्राप्त करना कठिन है। यह भी देखा गया है कि बच्चे अपने समान गुण रखने वाले बच्चों के समूह को चुनते हैं।

असमर्थता एवं खेल –

खेल अधिकांशतः सम्पूर्ण सुख के लिये खेले जाते हैं। खेल में यह भी देखा जाता है कि खेलने हेतु समान रूचि वालों को ही चयनित किया जाता है। असमर्थ बच्चों के साथ सामान्य क्षमता वाले बच्चों को खेलने में रूचि कम प्रदर्शित होती है परन्तु दूसरी ओर कई अध्ययन भी यह विभेद प्रदर्शित करते हैं कि समान क्षमता व समान रूचि खेल खेलने का पहला नियम है। अक्षम बच्चों पर किये गये अध्ययन यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि असमर्थता सामान्य बच्चों में खेलने के बजाय समान अक्षमता वाले बच्चों को खेलने हेतु चयनित करते हैं।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. खेल में विविधता किस प्रकार दिखती है?

....

....

....

5.5 अधिगम प्रणाली एवं विविधता

यह तो आप जानते है कि एक कक्षा में सभी बच्चे समान नहीं होते ये

असमानता शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विशेषताओं के अतिरिक्त सामाजिक आधार पर भी हम स्पष्ट देख सकते हैं। आइये यह भी जाने कि ये विविधतायें क्या अधिगम को भी प्रभावित करते हैं। यह जो स्पष्ट है कि कक्षा में शिक्षक का व्यवहार एवं शिक्षण प्रविधियाँ एवं युक्तियाँ इन विविधताओं से प्रभावित नहीं होती हैं परन्तु इतनी विविधताओं के बावजूद ये अपेक्षित है कि कक्षा एकता का प्रतिरूप बने और शिक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति करें। आगे हम इन विविधताओं के अधिगम के सापेक्ष देखेंगे।

अधिगम एवं लैंगिक विभेद – कक्षा में लड़के लड़कियाँ दोनों एक साथ पढ़ते हैं। बालिकायें समाज में उस वर्ग से सम्बन्धित हैं जिनकी शिक्षा के प्रति समाज वर्षों तक जागरूक नहीं रहा। गुलाम भारत में महिला शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गयी। अंग्रेजी शासन के बुड के घोषणा पत्र में महिला शिक्षा पर देने की बात कही है। भारत में स्वतंत्र होने के पश्चात कई शिक्षा आयेगी।

सीखने की अवधारणा –

व्यक्ति जीवन पर्यन्त नये अनुभवों को एकत्र करता है ये अनुभव व्यक्ति के व्यवहार में संशोधन करते रहते हैं **स्किनर** ने इसी बात को स्पष्ट करते हुये का है कि – "सीखना, व्यवहार में उत्तरोत्तर सामन्जस्य की प्रक्रिया है।" गेट्स व अन्य – "सीखना, अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।"

कानवेक ने भी इसी बात को कहा है कि – "सीखना अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।"

इसके अनुसार कहा जा सकता है कि –

- सीखना सम्पूर्ण जीवन चलता रहता है।
- सीखना, व्यवहार के परिणाम स्वरूप व्यवहार में कोई परिवर्तन है।
- सीखना सार्वभौमिक है।
- सीखना विकास है।
- सीखना अनुकूलन है।
- सीखना नया कार्य करना है।
- सीखना अनुभवों का संगठन है।
- सीखना उद्देश्यपूर्ण है।
- सीखना विवेकपूर्ण होता है।

- सीखना सक्रिय है।
- सीखना व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों होता है।
- सीखना वातावरण की उपज है।
- सीखना खोज करना है।

अधिगम वास्तव में व्यवहार का परिमार्जन कर ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोगत्यात्मक क्षेत्रों में वृद्धि करता है। कक्षा शिक्षण में अधिगम ही महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है परन्तु कक्षा में एक जैसी सुविधायें, एक जैसी योजना, एक जैसी शिक्षण विधियां होते हुये भी अधिगम में विविधता प्रदर्शित होती क्योंकि अधिगम की यही विविधता उपलब्धि में अधिक प्रदर्शित होती है।

सिम्पसन नामक मनोवैज्ञानिक ने सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख किया है –

"सीखने के अनेक दशाओं में – स्वास्थ्य, वातावरण, शारीरिक अभिक्षमता, अध्ययन की आदतें, संवेगात्मक संतुलन, मानसिक योग्यता, कार्य योग्य परिपक्वता दृष्टिकोण, रूचि, लैंगिक विभेद, आर्थिक प्रस्थिति इत्यादि भी सम्मिलित होते हैं।"

आगे यह सोचना आवश्यक है कि सीखना पर कौन–कौन से विविधतायें प्रभाव डालती हैं इन्हीं विविधताओं को सीखने के सापेक्ष हम आगे पढ़ेंगे। समितियों ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया। बालिका शिक्षा एवं साक्षरता के अनेक प्रयासों का सार्थक प्रभाव पड़ा और साक्षरता दर में वृद्धि हुयी। नामांकन दर बढ़ा और हाई स्कूल एवं इण्टर के परिणामों में बालिकाओं की उपलब्धि दर बालकों की अपेक्षाकृत अधिक उन्नत प्रतीत है। परन्तु इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों एवं शिक्षा के विविध स्तरों पर बालिकाओं की सहभागिता में भारी अन्तर है।

अनेक अध्ययनों में यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि परिवारों में बालिकाओं के अध्ययन हेतु अधिक समय व प्रेरणा नहीं प्राप्त होती है इसका प्रभाव उनके अधिगम सम्बन्धी समस्याओं को शिक्षकों के समक्ष नहीं रखती है। व्यक्तित्व के लगातार दबाते रहने के कारण झिझक दूर नहीं होती है। इसका प्रभाव अधिगम पर पड़ता है। पाण्डेय (2008) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष प्राप्त किया था कि ग्रामीण समाजों में बालिकाओं को घर में बच्चों को सम्भालने के अतिरिक्त अनेक गृह कार्य करना पड़ता है जिसके कारण वे घर व विद्यालय में बालाकें की अपेक्षा कम समय दे पाती हैं।

विदेश में किये गये अनेक अध्ययनों में कई विषयों के अधिगम व उपलब्धि में

लैंगिक विभेद को स्पष्ट किया है कि बालिकायें सरल एवं घरेलू एवं सामाजिक विषयों की ओर अधिक आकर्षित होती हैं ये विषय जीव विज्ञान, गृहविज्ञान, भाषा, समाजशास्त्र जैसे विषय हैं तो बालक प्रारम्भ से ही चुनौतियों को लेने में तत्पर रहते है। इसीलिये वे गणित जैसे विषयों को चयनित करते हैं और उनकी उपलब्धि इन कठोर विषयों गणित व रसायनशास्त्र इत्यादि में अधिक होती है। बालक कक्षाकक्ष की कियाओं में अधिक कियाशील होकर प्रतिभाग लेते हैं।

अक्षमता/असमर्थता/अधिगम विविधता –

फैन्डसन के अनुसार – "मन्दबुद्धि बालक धीरे धीरे सीखते हैं, अनेक गलतियॉ करते हैं, जटिल परिस्थितियों को ठीक तरह से नहीं समझते हैं, कार्य कारण सम्बन्धों को समझने में साधारणतः असफल होते हैं और अनेक कार्यों के परिणामों व्यवहार करते हैं । अधिकांशतः इन बच्चों की शिक्षा सामान्य बच्चों के साथ ही होती है और ये बच्चे इन बच्चों की बराबरी नहीं कर पाते हैं। यदि विशिष्ट बालकों को सामान्य बालकों के साथ ही शिक्षा दी जायेगी, तो वे पिछड़ जायेंगे और वे सामान्य बच्चों की बराबरी न कर सकने के कारण हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और सामान्य बच्चे इन्हें अने में घुलने मिलने नहीं देते या फिर शिक्षक अभिभावक और विद्यार्थी आवश्यकतानुसार सहानुभूति या सहारा देते हैं जिससे बच्चो की यह अधिगम विविधता स्पष्ट हो जाती है।

भाषा एवं अधिगम विविधता –

सभी प्रकार की विविधताओं में भाषागत विविधता का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषायिक पक्षतायें व्यक्ति को•आत्म विश्वास देता है। तो भाषायिक दक्षतायें कम हो तो आत्मविश्वास में कमी हो जाती है।

- दूसरा अधिगम समस्या तब भी होती है जब बच्चा उस भाषा से अनभिज्ञ हो जब कि शिक्षण में प्रयुक्त भाषा रही हो।
- कक्षा के बच्चे विभिन्न परिवारों से आते हैं जिनकी भाषायें विभिन्न होती है परन्तु कक्षा शिक्षण में एक ही भाषा को प्रयुक्त किया जाता है इससे बच्चों को कक्षा में सीखने में समस्या होती है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि बच्चे अपने घर में बोली जाने वाली भाषा को ज्यादा जानते हैं।
- भाषायिक विविधता कक्षा में विद्यार्थियों के मध्य एक जैसे वातावरण नहीं बनाता है यह भी देखा गया है कि एक तरह की भाषा बोलने वाले बच्चे आपस में खेलते हैं, मित्रता करते हैं और साथ में ही सीखते हैं।

सांस्कृतिक विविधता एवं अधिगम

मानव एक समाज में रहता है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये यह उसे पूर्ण रूप से संगठित करता है और इस व्यवस्था को निश्चित एवं स्थापित करता है यही व्यवस्था संस्कृति कहलाती है। संस्कृति वास्तव में समाज में रहने का ढंग है।

टायलर ने कहा है – 'संस्कृति वह जटिल पूर्णता है जिसमें रिवाज और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित की जाने वाली अन्य विशेषतायें और आदतें सम्मिलित रहती हैं।

वहीं रोसके ने किसी विशेष समूह व स्थान में निवास करने वाले विशेष व्यक्तियों के जीवन व्यतीत करने की सामूहिक विधि ही हो संस्कृति बताया है।

संस्कृति के दो भाग हैं :–

- **भौतिक संस्कृति** – इसमें सभी मूर्त वस्तुयें आती हैं जिनका निर्माण मानव ने किया जैसे मकान, सड़क, आभूषण, इंजन, मशीन इत्यादि ।
- **अभौतिक संस्कृति** – अभौतिक संस्कृति में सभी अमूर्त बातें आती हैं जैसे कि धर्म, भाषा, कला, संगीत, रूढ़ियाँ, प्रथायें, संस्कार, संस्थायें इत्यादि।

संस्कृति और शिक्षा का अटूट सम्बन्ध है। संस्कृति में गतिशीलता होती है और संस्कृति दूसरे संस्कृति उपकरणों से अलग होती है और कई बार उन उपकरणों को अपनाया भी जाता है।

संस्कृति और शिक्षा के अटूट सम्बन्ध के विषय में **ब्रांमेल** ने इंगित करते हुये कहा है कि – "संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप में निर्माण होता है और यही सामग्री शिक्षा को न केवल उसके स्वयं के उपकरण अस्तित्व का कारण प्रदान करती है।"

सांस्कृतिक परम्परा ही एक जाति के जीवित रहने की आवश्यक शर्त है।

स्पेन्स रिपोर्ट में लिखा गया है कि विद्यालय वह साधन प्रदान करते हैं जिनके द्वारा राष्ट्र का जीवन अखण्ड रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

ओटावे ने तो शिक्षा का एक कार्य – समाज से सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसके तरूण और समर्थ सदस्यों में हस्तान्तरित करना है।

शिक्षा का कार्य यदि संस्कृति का हस्तान्तरण करना है तो फिर शिक्षा व्यवस्था कैसी है जो कि सांस्कृतिक तत्वों को सफलतापूर्वक हस्तान्तरित कर सके तब शिक्षक की चुनौती और बढ़ जाती है कि विविध संस्कृति वाले बच्चों की समूह को कैसी विधि अपनाये जिससे अधिगम एक जैसा हो।

सम्पूर्ण कक्षा–कक्ष विविधताओं का समूह होता है और उन विविधताओं में सांस्कृतिक विविधता महत्वपूर्ण है। रहन–सहन, विचार, धर्म, प्रजाति इत्यादि मनुष्य की अपनी अस्तित्व का आधार है इसीलिये मानव समूहों में विविधता रहती है इस प्रकार की विविधता अधिगम में भी विविधता उत्पन्न कर देती है। बच्चों को धर्म, भाषा, कला रूढ़ियॉ, रीतियॉ, प्रथायें, संस्कार इत्यादि बच्चों में वैचारिक विभेद उत्पन्न करती है इससे शिक्षक मानसिक रूप से इन विभेदों के प्रति सजग नहीं रहते है। और उनके लिये भी यह समरूा होती है कि वह कैसे शिक्षण अधिगम प्रणाली का संयोजन करे कि सभी बच्चों का अधिगम एक सा हो। संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व में बहुत अधिक प्रभाव डालती है और अभौतिक संस्कृति का प्रभाव सबसे अधिक होता है और इस प्रभाव को परिवर्तित करने का कार्य शिक्षा ही कर सकती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. अधिगम में विविधता किस प्रकार प्रदर्शित होती है?

....

....

....

5. सामाजिक प्रस्थिति का विद्यार्थी जीवन से क्या सम्बन्ध है?

....

....

....

6. आर्थिक प्रस्थिति का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है?

....

....

....

7. शारीरिक एवं मानसिक प्रस्थिति का अधिगम से क्या सम्बन्ध है?

....

....

....

8. दिव्याग बच्चे कक्षा में पिछड़ क्यों जाते है?

....

....

....

5.6 सारांश

भिन्नता की अवधारणा एवं कारण विभिन्नता के अवधारणा को स्पष्ट करते हुये बयचर ने स्पष्ट किया कि – "एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से अन्तर एक सार्वजनिक घटना है।" विभिन्नतायें इतनी अधिक हैं कि हम मात्र सोच ही सकते हैं ये सभी अन्तर व्यक्तियों में लैंगिक आर्थिक सामाजिक प्रस्थिति भाषायिक, सांस्कृतिक एवं शारीरिक कारणों से हो सकता है। खेल व अधिगम में जो अन्तर हम शिक्षण के दौरान पाते हैं उनके कई कारण हो सकते हैं इन विभिन्नताओं के विषय में हम आगे जानकारी प्राप्त करेंगे।

- **शारीरिक विभिन्नता** – शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में अनेक प्रकार का अन्तर दृष्टिगत होता है जैसे रंग, रूप, भार, कद, बनावट, यौन भेदं
- **मानसिक विभिन्नता** – मानसिक दृष्टि से व्यक्तियों में विभिन्नताओं को हम देख सकते हैं इनसे व्यक्ति प्रतिभाशाली, अत्यधिक बुद्धिमान, कम बुद्धिमान, सामान्य बुद्धिमान हो सकता है। यह आयु के साथ परिस्थिति होता रहता हैं मानसिक विभिन्नता खेल एवं अधिगम में अन्तर कर देता है। खेल चयन के प्रकार व अधिगम की गति प्रभावित होती है।
- **संवेगात्मक विभिन्नता** – संवेगात्मक दृष्टि से व्यक्तियों की विभिन्नता को सहज ही जाना जा सकता है। संवेगात्मक विभिन्नता व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। कोई व्यक्ति अधिक संयनी शान्त, समायोजित हो जाता है वो दूसरी ओर उसके शिक्षा के स्तर एवं खेल चयन पर भी प्रभाव डालती है उदाहरणार्थ – बचपन के खेल में बालिकायें उस खेल को चुनती हैं जो

शान्तिपूर्ण हो तो अधिक चंचल बालक बन्दूक चलाने का खेल खेलता है।

- **रूचिगत विविधता** – रूचियों का मानव जीवन में एक खास महत्व है। किसी भी रूचि कथा साहित्य, खेल अन्य सृजनात्मक कार्यों में हो सकती है इससे विद्यार्थियों की सीखने की गति, आदत, क्षमता को प्रभावित कर देता है। कई अध्ययन यह बताते हैं कि रूचि का अधिगम व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है और रूचि खेल व्यवहार को भी प्रभावित करता है।
- **विचारगत विभिन्नता** – विचारों की विभिन्नता एक सहज प्रवृत्ति है विचार व्यक्ति का जीवन जीने का तरीका बन जाता है। विचार एक बहुत ही गूढ़ विविधता उत्पन्न करता है क्योंकि इसका प्रभाव अप्रत्यक्ष है और इस पर दूसरों का प्रभाव कम पड़ता है।
- **गत्यात्मक विभिन्नता** – गत्यात्मक विभिन्नता व्यक्ति को अधिक क्रियाशील बना देती है। यह आयु के साथ बनती है। क्रो एवं क्रो के अनुसार – "शारीरिक क्रियाओं में सफल होने की योग्यता में एक समूह के व्यक्तियों में भी महान विभिन्नता होती है।
- **व्यक्तित्व विभिन्नता** – व्यक्तित्व की विभिन्नता व्यक्ति की सहज गुण है। बिग व हण्ट – "व्यक्तित्व एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान और इसकी विशेषताओं के योग का उल्लेख करता है।" 'व्यक्तित्व' की अवधारणा की व्यापकता को इंगित करते हुए ड्रेवर ने स्पष्ट किया है कि – "व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन में आदान–प्रदान में व्यक्त करता है।" स्प्रेंगर ने समाजशास्त्रीय आधार पर व्यक्तित्व विभिन्नता के छः प्रकार सैद्धान्तिक।

खेल और विविधता

प्रजातीय जागरूकता एवं खेल में विविधता :– फेगेट एवं लीनबैच (1989) ने यह अध्ययन करके पाया कि प्रजातीय जागरूकता एवं विविधता बच्चों को आयु के प्रारम्भिक चरणों में ही स्पष्ट होने लगती है। खेल के चयन में भी प्रजातीय विशेषतायें प्रदर्शित होती है कई मनोवैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह विविधता 18 माह की आयु में ही दिखायी देने लगता है। 04 से 05 आयु तक की आयु में प्रजातीय गुणों को लेकर बच्चों में तनाव आता है वे शरीर के रंग के प्रति सतर्क हो जाते हैं।

लेजरवर्ग, चैपिन, रोजेन बलाएँ एवं लोवो वानडेय (1988) ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि 3–4 आयु वर्ग के बच्चे ही अपने समान समूहों का चयन करने लगते हैं इसमें वे अपने रंग को बदुधा आधार बना लेते हैं ये अधिकांशतः क्षेत्रीयता के आधार पर भी हो सकते हैं। बच्चे उन्हीं खिलौनों का भी चयन करना पसन्द करते हैं। जिनका रंग रूप उनकी अपनी प्रजाति जैसा है। 1958 में एक अध्ययन में यह भी निष्कर्ष निकला कि कई बार अपनी प्रजाति विशेषताओं से दूर होकर दूसरे प्रजातीय विशेषताओं को भी पसन्द करने लगते हैं।

फिन्केलसटिन एवं हासकिन (1983) ने अपने एक अध्ययन में यह पाया कि अधिकांश बच्चे अपने जैसे रंग वाले बच्चों को ही दोस्त बनाकर खेलते हैं।

खेल एवं लैंगिक विभेद – खेल मानव की स्वाभाविक प्रकृति है यह मानव के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। फामेट एवं थीन बैच के अनुसार बच्चे 24 माह की आयु में ही लैगिक विभेद पहचानने लगते हैं। बच्चे लैंगिक विभेद के प्रति सतर्क हो जाते हैं। और यह भी देखा गया कि आयु बढ़ने के साथ–साथ लैंगिक विभेद के प्रति सतर्कता बढ़ती जाती है। बच्चे अपने–अपने भावी जीवन के दायित्वों को भूमिका के रूप में खेलते हैं। लड़के उन खेलों को खेलते हैं जो शक्ति वाले, लड़ाई वाले, कूंद रचना करने वाले, क्रिकेट, फुटबाल इत्यादि हो सकते हैं। लड़का बचपन में भी गुड़िया का खेल नहीं खेलता वरन् लड़कियॉ, गुड़ियों को बचपन में बहुत पसन्द करती है। गुड़ियों को खाना बनाकर खिलाना, नहलाना, स्कूल भेजना इत्यादि का खेल खेलती हैं वो लड़के घर के खेल में भी आफिस जाते हैं कार चलाते हैं और वही सब अपने परम्परागत कार्यों को भूमिका के रूप में देखते हैं। खेलों के प्रकार एवं उनके चयन पर लैंगिक विभेद स्पष्ट दिखायी पड़ता है। आयु बढ़ने के साथ ही मित्रता व खेल दोनों ही समान लिंगों में ही होने लगता है। समलिंगों आपस में ही मित्रता करते हैं और यह दीर्घ कालीन होता है।

समाजिक आर्थिक विभेद एवं खेल –

समझना तो बहुत ही कठिन है कि क्या खेलों का किसी के सामाजिक आर्थिक स्थिति के साथ कोई सम्बन्ध होगा। इस तथ्य को भी मनोवैज्ञानिकों ने बहुत ध्यान दिया और इस पर भी अध्ययन हुये और जो परिणाम प्राप्त हुये उसी के आधार पर हम ये तथ्य को समझ सकेंगे।

सिमलान्सकी (1983) ने अपने एक अध्ययन में पाया कि जो बच्चे निम्न आर्थिक–सामाजिक प्रस्थिति वाले होते हैं वे उसी स्तर के निचले स्तर के सामाजिक

नाटकों को प्रस्तुत करते हैं। पियाजे परटेन एवं एबिन (1976) ने अपने अध्ययन में यह भी प्राप्त किया कि मध्यम वर्ग के घरों के बच्चों निम्न वर्ग के घरों के बच्चों की अपेक्षा अधिक रचनात्मक, सहयोगपूर्ण एवं समन्वयपूर्ण खेलों का चयन करते हैं। उड़विन एवं शुमकतर (1984) ने अपने अध्ययन में देखा कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि का खेल चयन के साथ सीधा सम्बन्ध है।

ग्रीकिंग (1980) ने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि मध्य वर्गीय परिवारों के बच्चे विविंध प्रकार के खेलों का चयन करते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया कि कल्पनात्मक खेलों का चयन पर किसी प्रजाति पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर यह तो स्पष्ट है कि सुविधा सम्पन्न परिवारों के बच्चों को किसी भी प्रकार के खेलों के चयन की सुविधा रहती है। वहीं सुविधाविहीन परिवारों के बच्चों को यही सुविधायें प्राप्त करना कठिन है। यह भी देखा गया है कि बच्चे अपने समान गुण रखने वाले बच्चों के समूह को चुनते है।

असमर्थता एवं खेल

खेल अधिकांशतः सम्पूर्ण सुख के लिये खेले जाते हैं। खेल में यह भी देखा जाता है कि खेलने हेतु समान रूचि वालों को ही चयनित किया जाता है। असमर्थ बच्चों के साथ सामान्य क्षमता वाले बच्चों को खेलने में रूचि कम प्रदर्शित होती है परन्तु दूसरी ओर कई अध्ययन भी यह विभेद प्रदर्शित करते हैं कि समान क्षमता व समान रूचि खेल खेलने का पहला नियम है। अक्षम बच्चों पर किये गये अध्ययन यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि असमर्थता सामान्य बच्चों में खेलने के बजाय समान अक्षमता वाले बच्चों को खेलने हेतु चयनित करते हैं।

अधिगम प्रणाली एवं विविधता

एक कक्षा में सभी बच्चे समान नहीं होते ये असमानता शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विशेषताओं के अतिरिक्त सामाजिक आधार पर भी हम स्पष्ट देख सकते हैं। आइये यह भी जाने कि ये विविधतायें क्या अधिगम को भी प्रभावित करते है। यह जो स्पष्ट है कि कक्षा में शिक्षक का व्यवहार एवं शिक्षण प्रविधियॉ एवं युक्तियॉ इन विविधताओं से प्रभावित नहीं होती हैं परन्तु इतनी विविधताओं के बावजूद ये अपेक्षित है कि कक्षा एकता का प्रतिरूप बने और शिक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति करें। आगे हम इन विविधताओं के अधिगम के सापेक्ष देखेंगें ।

अधिगम एवं लैंगिक विभेद –

कक्षा में लड़के लड़कियॉ दोनों एक साथ पढ़ते है। बालिकायें समाज में उस वर्ग

से सम्बन्धित है जिनकी शिक्षा के प्रति समाज वर्षों तक जागरूक नहीं रहा। गुलाम भारत में महिला शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गयी। अंग्रेजी शासन के बुड के घोषणा पत्र में महिला शिक्षा पर देने की बात कही है। भारत में स्वतन्त्र होने के पश्चात कई शिक्षा आयेगी।

5.7 अभ्यास के प्रश्न

1. खेल को परिभाषित करते हुये उसके सिद्धान्तों एवं उपयोगिता की चर्चा कीजिये।
2. अधिगम को परिभाषित करते हुये इसकी विशेषताओं एवं सिद्धान्तों की चर्चा कीजिये। अधिगम में विविधता किस प्रकार से प्रदर्शित होती है?

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. उपलब्धि एवं अधिगम शैली के रूप में ।
2. लैंगिक, प्रजातीय, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि।
3. उपलब्धि में अन्तर के रूप में ।
4. बच्चों के व्यवहार, चिन्तन, कार्य करने के तरीके, आचार–विचार में।
5. विद्यार्थी उच्च सामाजिक प्रस्थिति का होता है तो उसका आत्मविश्वास बना रहता है निम्न सामाजिक प्रस्थिति समायोजन में बाधक बनती है। हीन भावना लाती है।
6. शिक्षा की सुविधाओं को प्राप्त करने में ।
7. स्वस्थ शारीरिक व मानसिक स्थिति अधिगम को तीव्र कर देती है।
8. शारीरिक समस्याओं एवं शिक्षकों की उपेक्षाओं के कारण ।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत, 2004, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, (ए.आई.आर. 1992, एस.पी., 1858)
3. फ्रांसिस कोरेली मुल्लिन बनाम प्रशासक केन्द्र शासित राज्य दिल्ली (ए.आई. आर. 1981)
4. दैनिक जागरण, शनिवार, 3 अप्रैल, 2010, गोरखपुर, पृष्ठ 10 ।

इकाई – 6 : वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विविधता एवं शिक्षण

6.4 विविधता एवं शिक्षण विधियॉ

6.5 विविधताओं को चुनौती देती शिक्षण विधियॉ एवं रणनीतियॉ

6.6 विविधता एवं शिक्षण अधिगम सामग्री

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास के प्रश्न

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

विविधता प्रकृति का नियम है। शिक्षक के लिये आवश्यक है कि वह विविधता एवं एकता के मध्य एक संतुलन बनाये। विविधता के प्रति उदासीनता शिक्षा के उद्‌देश्यों के लिये समस्यात्मक हो जाता है जो कि विद्यालय में अपनी मान्यताओं एवं व्यवहारों को सबसे अलग करके रखना चाहते हैं। बच्चों के मध्य विविधतायें आपसी संघर्ष को उत्पन्न करती है। विविधतायें बच्चों में भी आत्मसंघर्ष उत्पन्न कर देती है। इस इकाई में हम वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता के मध्य सम्बन्ध कैसे स्थापित हो इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. विविधता की अवधारणा को समझते हुये स्पष्ट कर सकेंगे।
2. विविधता के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. विविधता के विविध प्रकारों का वर्णन करते हुये उनके कारणों को भी इंगित कर सकेंगे।

6.3 विविधता एवं शिक्षण

अधिगम में विविधता एवं शैक्षिक रणनीति विद्यालय एक सामाजिक इकाई है, ऐसे अनेक कारक हैं जो विद्यालय को एकता स्थापित करने के लिये ऽावश्यक भूमिका देता है। वो दूसरी ओर विद्यालय ऐसे कारक के रूप में भी उभर रहे हैं इसके लिए विद्यालय का वातावरण अभिवृत्ति, समुदाय की संलग्नता एवं पाठ्यक्रम का संस्कृति, भाषा एवं सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसका स्वरूप। इन सबके ऊपर यह बात और भी बड़ी है कि शिक्षकों का विद्यार्थियों के साथ शैक्षिक एवं व्यक्तिगत सम्बन्ध एवं अन्तःक्रिया। कुछ ऐसे रणनीतियों के बारे में हमें जानना आवश्यक है कि विविधताओं से भरी कक्षा में शिक्षक का व्यवहार कैसा हो और किस रणनीति से वह विविधता को पार पा सकता है। सर्वप्रथम हम शिक्षक के व्यवहार की बात करेंगे कि शिक्षक का व्यवहार इस प्रकार का हो कि –

- **विद्यार्थियों की संस्कृतियों की विविधता एवं समानता की प्रशंसा करना** – प्रभावशाली शिक्षक, सांस्कृतिक विविधता की पहचान कर धनात्मक तरीके से उन्हें जानने का प्रयास करते हैं इसके लिये शिक्षक को प्रभावशाली सम्प्रेषण एवं अनुदेशक तकनीकी का सहारा लेना पडता है। शिक्षक इसके लिये विद्यार्थियों को दूसरे के संस्कृति का संम्मान करना सिखा सकता है।
- **विद्यार्थियों के साथ तादात्म स्थापित करना** – विद्यार्थियों के साथ शिक्षकों को ऐसी समझ स्थापित करना होता है शिक्षक के साथ विद्यार्थी अपने भावों एवं विचारों को साझा कर सके।
- **विद्यार्थियों के कियाकलापों को ध्यान से निरीक्षण करना** – विद्यार्थियों के मध्य विविधताओं को ध्यान से निरीक्षण कर शिक्षक इस प्रकार की क्रियाओं

का संयोजन करे जो विद्यार्थियों को एकता की समझ उत्पन्न कर सके। शिक्षक को विद्यार्थियों के अधिगम के तरीकों को सीखना चाहिये।

विद्यार्थियों को उनके व्यवहार को मिलाने हेतु शिक्षण प्रदान करना – हम सभी व्यावहारिक दृष्टि से ही अलग नहीं हैं वरन् हम व्यवहार भी अलग–अलग करते हैं परन्तु हम परिस्थितिजन्य एक जैसा व्यवहार करते हैं तो शिक्षक को यह सिखाना चाहिये कि हम घर समुदाय और विद्यालय में कैसे अलग है। परन्तु यह आवश्यक है कि परिस्थिति के अनुसार हमें एक जैसा व्यवहार कब और कैसे करना चाहिये।

विविधता एवं विश्व परिदृश्य – विविधता विश्व में विशिष्ट शिक्षा हेतु एक मौलिक तत्व के रूप में उभर रहा है। शिक्षा तन्त्र भी इस तथ्य से अधूरा नहीं रह गया है जब उपनिवेशवाद की समाप्ति के पश्चात समाजवाद एवं लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति का उदय हुअ उसके साथ ही मानवाधिकारों की बात भी प्रारम्भ हो गयी व्यक्ति की व्यक्तित्वकता को महत्व देना आवश्यक माना गया। सभी को समानता के अधिकार हेतु शिक्षा को विकास का मुख्य उपकरण मानते हुये इस बात पर बल दिया जाने लगा कि शिक्षा इस प्रकार से दी जाये कि सभी विविधताओं से परे सभी का समान विकास हो जाये। यह चिन्ता का विषय इसीलिये बना क्योंकि अमेरिका जैसे शक्तिशाली एवं विकसित देशों के समाज में सांस्कृतिक, भाषायिक एवं सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति की भिन्नता का प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं विकास पर प्रभाव दिखाई पड़ने लगा।

अनेक अध्ययनों ने इस बात की पुष्टि की। हप्स एवं स्टप्स (2002) के अनुसार अमेरिकी समाज में श्वेत एवं अश्वेत वर्ण के विद्यार्थियों के मध्य उपलब्धि में पर्याप्त अन्तर था।

कॉनहॉस, नॉग्यूरा एवं सैण्डर्स (2004) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि उपलब्धि प्राप्तांक, ग्रेड, प्रोन्नति दर एवं स्नातक होने की दर विद्यालय उपलब्ध एवं विकास के संकेतक हैं, परन्तु सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति का प्रभाव विद्यार्थियों को उपलब्धि पर पड़ता है अनेक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि निम्न सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति वाले बच्चों की उपलब्धि स्तर अधिकांश नीचे रहता है। (एन0ए0इ0पी0 2007) ने अपने अध्ययन में दिया कि निम्न आय वाले परिवारों के बच्चे अपने सहपाठियों की अपेक्षाकृत पढ़ने एवं गणित में खराब प्रदर्शन करते है। 2007 के एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार 18 प्रतिशत बच्चे निर्धनता में रहते हैं जिसमें से 10 प्रतिशत श्वेत

बच्चे, 13 प्रतिशत एशियाई बच्चे, 29 प्रतिशत हिसपैनिक बच्चे एवं 34 प्रतिशत अश्वेत बच्चे इसमें आते हैं क्योंकि निम्न आय के घरों से बच्चों की संख्या बहुत अधिक है इसीलिये गरीबी के सम्बन्ध को अकादमिक उपलब्धि के साथ जोड़कर देखा जाता है।

अनेक अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि शिक्षकों की विद्यार्थियों को उनके प्रदर्शन एवं शिक्षक विद्यार्थी के सम्बन्ध के साथ अपेक्षा करते हैं इस प्रकार की अपेक्षायें पूर्ति न होने पर शिक्षक के दृष्टिकोण में पक्षपात/विभेद उत्पन्न कर सकता है और शिक्षक को यह आभास हो सकता है कि निम्न आर्थिक सामाजिक प्रस्थिति का प्रभाव विद्यार्थी के अकादमिक उपलब्धि पर पड़ता है इसे इस प्रकार से समझे कि शिक्षक यह सोच सकता है कि निम्न आर्थिक प्रस्थिति विद्यार्थी को शैक्षणिक सुविधायें जुटाने में समस्या होती है जिसका प्रभाव उपलब्धि पर नकारात्मक पड़ता है।

इस प्रकार के शिक्षक के दृष्टिकोण का शिक्षक के कक्षा व्यवहार पर स्पष्ट दिखाई देता है। अधिकांशतः कक्षा कक्ष में यह व्यवहार दिखाई देता है।

- शिक्षक निम्न उपलब्धि वाले बच्चों का समूह बना देता है।
- इस समूह को कम चुनौती वाले प्रश्न हल करने को देता है।
- शिक्षण के समय इन बच्चों को अन्य बच्चों की बराबरी करने हेतु उद्वेलित नहीं करता है।
- बच्चों को शिक्षक से अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अलग तरह का निर्देश प्राप्त होता है।
- आज सम्पूर्ण विश्व में जब मानवतावादी दृष्टिकोण का बोलबाला है तब प्रश्न यह है कि मनुष्य की विविधताओं का सम्मान करते हुये समतावादी विकास कैसे हो इसीलिये अब यह जानने की आवश्यकता है कि आखिर विविधता को ध्यान में रखते हुये शिक्षा देना क्यों आवश्यक है।
- विविधताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का संचालन कैसे किया जाये।
- विविधताओं का विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव कितना पड़ रहा है।
- विविधताओं के बावजूद सभी विद्यार्थियों का समान सम्भव हो सके। समानता के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।
- विद्यार्थियों में एकता की भावना का विकास हो।

- विद्यार्थियों की विविधतायें उन्हें भावी जीवन में बांट न पायें।
- विद्यार्थियों में इन विविधताओं के प्रति सही समझ उत्पन्न हो और वे इनके प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न हो।
- कक्षा–कक्ष में शिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार से सम्पादित हो सभी विद्यार्थियों के समान लाभ हो सके।
- सभी विद्यार्थियों का शिक्षा के माध्यम से सन्तुलित विकास हो।
- शिक्षक को विद्यार्थियों की विविधताओं का पूर्ण ज्ञान होगा वो शिक्षक उसके अनुकूल शिक्षण विधा की योजना बना सकता है।
- विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के शिक्षण विधाओं का लाभ मिल सकता है जिससे उनकी उपलब्धि बढ़ेगी।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. विविधता की जानकारी शिक्षकों को क्यों होनी चाहिए ?

....

....

....

2. शिक्षक का कक्षा के सभी विद्यार्थियों के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये?

....

....

....

6.4 विविधता एवं शिक्षण विधियॉ

शिक्षक के लिये विविधता को समझना और उसको महत्व देते हुये शिक्षण करना आसान काम नहीं है, परन्तु ऐसी कई विधायें हैं जो कक्षा कक्ष में असमानताओं को समझते हुये संतुलित अध्ययन किया जा सकता है। अनेक शिक्षाशास्त्री जॉन गुडलैंड, सेलैण्ड बार्थ, टेड सीजर ने शिक्षण एवं विविधता के मूल्य पर बहुत कुछ लिखा है इनके

द्वारा लिखा गया है कि –

- जो कि शिक्षक विविध प्रकार की सांस्कृतिक विविधताओं को जानकर अपने अप्रत्याशित कौशल एवं दक्षताओं का प्रयोग करके शिक्षण व्यूह की रचना करता है अपने विद्यार्थियों की सफलता हेतु अधिक अवसर देता है।
- जो भी शिक्षक विद्यार्थियों की भाषायिक, सांस्कृतिक आर्थिक–सामाजिक विविधताओं को समझते हुये विद्यार्थियों को अधिगम अवसर देते हैं वे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को धनात्मक प्रतिक्रिया देने में सफल होते हैं।
- जो भी शिक्षक विद्यार्थियों की भाषायिक, सांस्कृतिक आर्थिक–सामाजिक विविधताओं को समझते हुये विद्यार्थियों को अधिगम अवसर देते हैं वे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को धनात्मक प्रतिक्रिया देने में सफल होते हैं।
- विविधताओं के प्रति संवेदना लगातार समझने की क्षमता उत्पन्न करती है।

हिलियार्ड (1989) के अनुसार – प्रशिक्कों को विद्यार्थियों के विविध विशेषताओं को नजर अंदाज नहीं करना चाहिए और परम्परागत शिक्षण तकनीकी को अपनाने के कारण विद्यार्थियोयं की विविधताओं के विषय में गहन छानबीन होनी चाहिए। शेड एवं हीलियार्ड ने अपने एक अध्ययन में बताया कि अमेरिकी स्वतन्त्रता, तार्किक चिन्तन, वस्तुन्ष्ठिता एवं वास्तविकता जैसे जीवन मूल्यों को स्वीकार करते हैं ये सभी मूल्य उनके सीखने के अनुभवों में योगदान करते हुये उन्हें सूचनाओं पर केन्द्रित होने प्रतियोगिता परीक्षा, ग्रेड एवं तार्किक चिन्तन करने की प्रेरणा देते हैं। यह स्पष्ट है संस्कृति का अधिगम शैलियों पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिये यह आवश्यक है अनुसंध ान कर्ताओं को विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के अधिगम शैलियों का अध्ययन उनके विचारों मूल्यों, चिन्तन, आचार–विचार के सापेक्ष देखे। अधिकांश शिक्षक यह भी सोचते हैं कि शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थी की पृष्ठभूमि को जाने। रेमिरेज (1989) ने यह स्पष्ट किया कि यह आवश्यक है कि हम किसी भी विद्यार्थी के व्यक्तिगत विशेषताओं को जानने एवं विकास का अध्ययन को जानने हेतु प्रयोग की जाने वाले उपकरणों का प्रयोग करते समय सचेत रहे।

यह भी स्पष्ट है कि किसी भी संस्कृति प्रजाति जाति लिंग आयु, योग्यता, दक्षता, आर्थिक–सामाजिक प्रस्थिति के बच्चे को समान अवसर विद्यालय में प्रगति हेतु मिलन ही चाहियें । इसीलिये प्रत्येक बच्चों को इन विशेषताओं को जानना आवश्यक है जिससे बच्चों को अधिगम की वास्तविक परिस्थितियॉ उपलब्ध करायी जा सके।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. कक्षा में विद्यार्थियों के मध्य और किस प्रकार की विविधतायें होती हैं?

....

....

....

6.5 विविधताओं को चुनौती देती विधियॉ एवं रणनीतियॉ

मानव अनेक मायनों में दूसरे से अलग होते हैं। मानव हर परिस्थितियों में अलग प्रकार से सीखते हैं और सूचनाओं को अलग प्रकार से ग्रहण करते हैं यदि शिक्षक अधिगम के उन शैलियों को जान ले जो उसे इन विविधताओं के प्रति समझ उत्पन्न कर समान अधिगम का वातावरण दे सकें। सबसे पहले हम यह जान लें कि असमान अधिगम एवं अधिगम विविधता के कारण क्या हैं? इसको हम आगे पढ़ेगें।

- स्कूल एवं घर के वातावरण में विविधता – यह तो आप सभी जानते हैं कि घर विद्यालय की अपेक्षा बच्चे के जीवन में अहम भूमिका रखते हैं अधिकांशतः यह भी स्पष्ट ही है कि विद्यालय एवं घर के वातावरण में बहुत अधिक अन्तर होता है जिसके कारण बच्चों को दोनों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने में समस्या होती है। घर एवं विद्यालय के पर्यावरण में सांस्कृतिक विविधताओं, सामाजिक स्वरूपों, भाषायिक विविधता होती है। विद्यालय एवं गृह वातावरण में किसी में भी यह किसी भी पक्ष की समानता विद्यार्थियों को समान अधिगम में सहायता करता है। अपने घर के वातावरण का ही अनुकरण करता है। वरनॉन, फीगेन, हैसर, मिकीओ एवं मैनलॉर (2002) ने अपने अध्ययन में पाया कि अमेरिकी एवं अफ्रीका अमेरिकी बच्चों की दक्षतायें विभिन्न होती है। ये अन्तर बच्चों के पठन–पाठन एवं अधिगम में प्रदर्शित हो रही थी। यह अन्तर निश्चय ही विद्यार्थियों की पारिवारिक, आर्थिक सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण हो सकती है। नेशनल रिसर्च काउंसिल (2002) के अनुसार सांस्कृतिक एवं भाषायिक विविधता जनसंख्या को बहुत अधिक प्रभावित करता है।

शिक्षक के गुण एवं तैयारी –

अधिकांशतः विद्यालयी शिक्षा में विविधता जो कि अधिगम में विविधता के रूप में प्रदर्शित होती है इसका एक कारण शिक्षक के गुण एवं तैयारी भी है। अधिकांशतः शिक्षक शिक्षित एवं प्रशिक्षित होते हैं अनेक अध्ययनों में यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि विद्यार्थी की उपलब्धि का शिक्षक के अनुभव एवं ज्ञान से सीधा सम्बन्ध होता है। शिकागों, मिलवाकी एवं क्लेवलैण्ड में किये गये एक शिक्षित अध्यापकों ने कक्षागत विभिन्नताओं को नहीं समझा और इसके कारण बच्चों की उपलब्धि बुरी तरह प्रभावित हुर्यी । मेयर, म्यूचेन एवं मूरे (2000) ने एक अध्ययन में यह पाया कि अधिक गरीबी वाले परिवारों के बच्चे कम प्रशिक्षित अध्यापकों से पढ़ रहे थे जिसका प्रभाव उनकी उपलब्धि पर पड़ रहा था।

अनुपयुक्त परीक्षण प्रणाली – कई अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि जिसने भी परीक्षणों का निर्माण किया जाता है वे बच्चों को बुद्धि के स्तर पर तो बाट लेते हैं परन्तु बच्चों के व्यवहार में उनकी पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक चर तो सन्निहित रहते हैं इसके अतिरिक्त उनका ज्ञान, भाषा शैली, परिवार एवं घर जैसे चर भी उपलब्धि को प्रभावित करते हैं परन्तु मानकीकृत परीक्षण भी पक्षपातपूर्ण तब हो जाते हैं जबकि वह बव्वों के इन विभेदों को मिटा नहीं पाते और स्थिति यह बन जाती है कि सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं भाषायिक विविधतायें उपलब्धि को लागातार प्रभावित करते हैं।

परिवार का दृष्टिकोण एवं सहयोग – ` परिवार एक और प्रत्येक परिवार की अपने सामाजिक आर्थिक शैक्षिक स्थिति के साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टतायें होती है। संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार रहन–सहन, दृष्टिकोण, आचार–विचार को प्रभावित कर देता है वही विशेषताएं बच्चे को कक्षा में दूसरे से अलग कर देता है यह विशेषतायें शिक्षकों को कुछ दिखाई देते हैं पर इनको समान करने की दक्षता शिक्षकों को एक चुनौती देती है।

शिक्षकों की अज्ञानता/अक्षमता – कक्षा विविध विविधताओं वाले विद्यार्थियों का समूह है जिसके समूह में सांस्कृतिक, आर्थिक, पारिवारिक, भाषायिक, शारीरिक रूप में विविधता वाले बच्चे सम्मिलित रहते हैं सच यह है कि विविध बुद्धि स्तर वाले बच्चों के बारे में तो शिक्षक को ज्ञान होता है परन्तु इन विविधताओं के विषय मे न तो शिक्षक को जानकारी होती है न ही उसकी तैयारी रहती है शिक्षक इन विभिन्नताओं की पेचीदगी को समझे बिना समान शिक्षण करते हैं जिसका प्रभाव बच्चों की उपलब्धि पर पड़ता है। तब प्रश्न यह है कि आखिर हम भूमण्डलीकरण के दौर एवं चुनौतियों के सापेक्ष किस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करें, जिसमें सभी विविधताओं को समान महत्व मिलता भी रहे और सामन्जस्य पूर्ण दृष्टिकोण का विकास भी हो और गुणवत्ता

पूर्ण ,शिक्षण भी हो जाये।

सांस्कृतिक एवं भाषायिक विविधता एवं शिक्षण

शिक्षकों को यह समझना होगा कि उनके समक्ष कक्षा में बैठे विद्यार्थियों की अपने आचार–विचार, रहन–सहन परम्पराओं को मानने वाले, मान्यताओं बोल–चाल की अपनी विशेषता है यह भी सच है कि शिक्षक की अपेक्षा के विपरीत परिस्थितियों में अपने आपको पाता है अच्छी बात तो यह होगी कि –

- शिक्षक स्थानीय संस्कृति एवं सभ्यता को समझने का प्रयास करें।
- शिक्षक यह भी समझने का प्रयास करे कि बच्चे किन परिस्थितियोयं एवं पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है।
- शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों के कक्षागम व्यवहार उपलब्धि, समायोजन पठन–पाठन को ध्यान से देखकर उससे विद्यार्थियों के सांस्कृतिक सामाजिक पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।
- शिक्षक को सभी संस्कृति एवं भाषा के प्रति एक समन्वयवादी व सामनजस्यपूर्ण रवैया अपनाना चाहिये ।
- शिक्षक किसी भी विशेष संस्कृति को प्राश्रय न देकर सभी के लिये समान दृष्टिकोण अपनाये जिससे किसी भी संस्कृति की अपेक्षा न हो।
- आर्थिक सामाजिक रूप से पिछड़े परिवारों के बच्चों का कक्षाओं में शिक्षकों की ओर से समान ध्यान दिया जाये।
- स्थानीय भाषा देशी भाषा राष्ट्रीय भाषा के साथ ही विविध भाषायें जो विद्यार्थियों द्वारा बोली जाती है।
- लैठसन – बिलिंग्स (1995) के अनुसार शिक्षक को सांस्कृतिक रूप से उपयोगी शिक्षण विधि का चयन करना चाहिये।

संस्कृति प्रश्राय शिक्षण विधि एक बहुत ही स्वस्थ शिक्षण प्रारूप है जो विद्यार्थियों को अपनी गृह भाषा कौशल एवं व्यक्तिगत रूचियों को उपयोग करने की स्वीकृति देता है। इसके लिए शिक्षण यह कर सकता है –

- कक्षा शिक्षण में शिक्षक संगीत को समाहित करके सांस्कृतिक उपयोगी शिक्षण को रोचक बना सकता है।
- शिक्षक कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों को अपने अनुभवों को बांटने को प्रेरित करे इससे

विभिन्न विषयों के प्रति शिक्षकों की समवृत्ति, दृष्टिकोण, समस्याओं मजबूतियों एवं कियाकलापों की जानकार मिल सकेगी।

- शिक्षक विद्यार्थियों को दतकायों, अधिगम क्रियाओं एवं परियोजना कार्यों को समूहों में दे जिससे बच्चो को अपनी भाषायिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं को बांटने का मौका मिल सकेगा।
- शिक्षक विद्यार्थियों को क्रिया आधारित शिक्षण का अवसर देना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को दूसरों की भावनाओं, चिन्तन, विचारों एवं कोशिशों को समझने का अवसर मिल सके।
- शैक्षिक एवं सहशैक्षिक कियाकलापों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। विद्यार्थियों को सहशैक्षिक कियाकलापों को रोकने का अवसर दें जिससे बच्चों के मध्य अन्तःसांस्कृतिक भावनाओं का विकास हो सके।
- शिक्षक सभी विद्यार्थियों को समान रूप से समायोजित करने का अवसर दे। विद्यार्थियों को ऐसा वातावरण किया जाये जिससे सभी को लगे कि वे एक समूह के सदस्य हैं।

इन सभी प्रयासों के शिक्षक कैसे करें ये भी सोचने की बात है तब अनेक शिक्षाशास्त्रियों ने इसके लिये सुझाव दिया। (रयान 2005 एवं 2003) के सहयोगियों समेंत ये स्पष्ट किया है कि विविधता की चुनौतियों को समझने वाला शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की हमें आवश्यकता होगी। लॉबमैन, रयान एवं मैकलाहलिन ने यह स्पष्ट किया कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हमें इर्न्टनशिप एवं कोर्स वर्क को सम्मिलित करना होगा। जिससे कि शिक्षकों को आज की आवश्यकता के अनुरूप विविधताओं से परिपूर्ण आरम्भिक कक्षाओं के लिये तैयार किया जा सके।

विश्व के विकसित राष्ट्रों में भी विविधताओं से भरपूर आरम्भिक कक्षाओं का शिक्षण एक चुनौती बना हुआ है। अधिकांश देशों के जनांकिकीय आंकड़े समाज में व्याप्त विविधताओं को इंगित कर रहे हैं अब आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को इन विविधताओं को समझते हुये शिक्षा देने हेतु क्यों तैयार करें।

- कक्षा कक्ष की विविधतायें शिक्षकों को तैयार नहीं करने की और न होने का आभास कराता है।
- विविधतायें शिक्षकों को शिक्षण के दौरान हतोत्साहित करती है।

- बेनेट (1986) ने आगाह किया कि संस्कृति एवं अधिगम शैलियों की प्रभावों की उपेक्षा सभी विद्यार्थियों को प्रभावित करती है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि विद्यालय एवं शिक्षक उनके बच्चों को अच्छे प्रकार से समझें।
- अनेक अनुसंधानों ने यह बात स्पष्ट भी कर लिया है कि एक तरह की अधिगम शैलियां सभी विविध विशेषताओं वाले समूहों के लिए उपयुक्त नहीं मानी जा सकती है। तो शिक्षकों को इसके लिए तैयार करना होगा । प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रशिक्षु शिक्षकों को यह सिखाया जाता है कि वह तीन स्तरों पर विद्यार्थियों को समझने का प्रयास करें।
- विद्यार्थी कैसे सोचते हैं? – कुछ बच्चे अधिक तार्किक दृढ़, अपने विचार रखने वाले कई तरफ से चिन्तन करने वाले होते हैं। कुछ अधिक सोचते हैं। कुछ अधिक व्यावहारिक चिन्तन करते हैं तो कुछ प्रयासों को समझने के लिए अपने अनुभवों को प्रयोग करते हैं। कुछ बहुत जल्दी सोचते है। आकस्मिक चिन्तन भी कर लेते हैं कुछ प्रतिक्रियावादी चिन्तन भी करते हैं।

इसकी समझ शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में ही प्रशिक्षु शिक्षकों को विकसित कर लेनी चाहिए। विद्यार्थियों के इन विशेषताओं को समझने हेतु प्रशिक्षणार्थियों को उन अवसरों का निर्माण करना सिखाना होगा जिसमें वे अपनी भावी शिक्षण व्यवसाय में प्रयास कर सकें।

विद्यार्थी निर्णय कैसे लेते हैं ? विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि बच्चों के प्रोत्साहन, निर्णायन, मूल्यों एवं संवेगात्मक प्रतिक्रिया पर प्रभाव डालते हैं। कुछ बच्चों में आन्तरिक प्रेरित होते कुछ बाह्य पुरस्कारों के लिये प्रेरित होते हैं। कुछ परिवारों को आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि बच्चों के निर्णयन क्षमता को बल देता है या बलहीन बना देता है। कुछ बच्चे अपने निर्णयन को तर्क के आधार पर लेते हैं। कुछ वस्तुनिष्ठ निर्णयन करते हैं कुछ अपने संवेगों पर विचारों को दूसरों पर थोपने को आदत विकसित कर लेते। कुछ बच्चे सीधे विषय वस्तु पर केन्द्रित होते हैं तो कुछ माध्यम को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

प्रश्न यह है कि बच्चों की निर्णयन क्षमता को समझने हेतु दक्षता उत्पन्न करने का कार्य शिक्षक प्रशिक्षण को ही करना होगा।

विद्यार्थी कार्य कैसे करते हैं ? संज्ञानात्मक अवधारणात्मक एवं भावनात्मक पैटर्न किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में सन्निहित होता है और यह व्यवहार उसके कार्य में परिलक्षित होता है। कुछ बच्चे इसी प्रकार से कार्य करने से पूर्व उसकी परिस्थिति रूप में सोच समझकर तो कुछ बिना सोचे तत्काल प्रतिक्रिया देते हैं। विद्यार्थी की ये विशेषतायें उसकी शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, आर्थिक, सामाजिक, विशेषताओं के

कारण भी हो सकती है।

प्रारम्भिक जीवन के अनुभव एवं किसी व्यक्ति के लिये उसकी शारीरिक, मानसिक, विशेषतायें, आर्थिक, सामाजिक प्रस्थिति उसके जीवन मूल्यों एवं उपेक्षायें अधिगम शैलियों को तय करती हैं और उसे प्रभावित भी करती हैं।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. सांस्कृतिक विविधता का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

....

....

5. शिक्षकों को विविधता के लिये सही समझ उत्पन्न करने हेतु हमें क्या करना होगा ?

....

....

....

6.6 विविधता एवं शिक्षण अधिगम सामग्री

अनेक प्रकार की शिक्षण अधिगम सामग्री शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को न केवल सुगम बना देती है परन्तु यह समझना और भी आवश्यक है कि शिक्षक बिना प्रकार के शिक्षण अधिगम सामग्री का चयन करे कि सभी विविधताओं से परिपूर्ण कक्षाओं का शिक्षण हो। शिक्षक को इसके लिये तैयार करें कि वह बच्चों को दूसरों की विविधताओं को समझने व आदर करने की आदत विकसित हों। इसके लिए अब कुछ नये प्रयोग हो रहे हैं शिक्षकों को यह जानने की आवश्यकता कि वह संस्कृति से सम्बन्धित शिक्षण सामग्री का निर्माण वह कैसे करें इसमें खिलौने, पुस्तकें, संगति, सन्दर्भ पुस्तकों इत्यादि को करें।

शिक्षक किया एवं विविधतायें – इस खण्ड में यह हन जानने का प्रयास करेंगे कि विविधताओं से भरे कक्षा समूह को शिक्षण करते समय शिक्षक का व्यावहार कैसा होना चाहिये।

- विद्यार्थियों की विविधताओं की प्रंशंसा एवं समायोजन करने हेतु लगातार विद्यार्थियों से चर्चा करना चाहिये।
- धनात्मक दृष्टिकोण अपनाये हुये कक्षा समूह से अलग पड़े से अलग पड़े विद्यार्थियों को समायोजन करने हेतु प्रेरित करना चाहिये।
- विद्यार्थियों को सामाजिक कौशल की शिक्षा देना चाहिए जिससे कि बच्चे अन्तः सांस्कृतिक सम्बन्धों को समझ सकें।
- शिक्षक बच्चों के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये जिससे कि वह विद्यार्थियों की सभी विशेषताओं का हम गहन अध्ययन कर सकें। आपसी समझ शिक्षकों को कक्षा में उनके जीवन से सम्बन्धित कर शिक्षण को अधिक सार्थक बना सकता है।
- शिक्षक विद्यार्थियों को कार्यों को करते हुये एक दूसरे को समझने का अवसर देना चाहिए। कार्य का नियोजन करने में उनकी परम्पराओं तैयारी दक्षता एवं मान्यताओं को देखने क सम्भावना बन जाती है।
- शिक्षक विद्यार्थियों को एक निश्चित प्रारूप में व्यवहार करने की शिक्षा देनी चाहिये। एक निश्चित प्रारूप में व्यवहार सभी के मध्य एक समानता लाने का उत्तम प्रयास हो सकता है। एक जैसे व्यवहार प्रारूप में विद्यार्थियों मे विविधता से सम्बन्धित संघर्ष एक हो जाता है।
- कई अध्ययन बताते हैं कि एक सामान्य कक्षा में दस से अधिक संस्कृति एवं सात प्रकार की भाषाओं की विद्यार्थी हो सकते हैं शिक्षण तब और अधिक प्रभावशाली होगा जब कि आपसी समझ प्रभावशाली होगी और यह विद्यार्थियों की रूचि संस्कृति एवं अनुभवों के प्रति समझ विकसित करके ही सम्भव है।
- विद्यार्थियों के लिये सप्ताहांत में एक सत्र ऐसा रखा जाये जिसमें उन्हें अपनी विविधताओं का प्रदर्शन करने और दूसरे की विविधताओं को समझने का अवसर मिल सके। इसमें शिक्षक साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामुदायिक एवं शारीरिक क्रियाओं को समाहित किया जा सकता है।
- विद्यालयी पाठ्यक्रम में भी इन विविधताओं के प्रति पर्याप्त संवेदनशीलता प्रदर्शित होनी चाहिये।
- शिक्षक खेल द्वारा शिक्षण करने का भी तकनीकी को भी प्रयोग करें। विद्यार्थियों को खेल के द्वारा अपनी विशेषताओं एवं दक्षताओं को प्रदर्शन करने का अवसर मिलेगा और विद्यार्थियों में आपसी समझ भी उत्पन्न होगी।
- विद्यार्थियों को पोशाक प्रदर्शन, रहन–सहन का प्रदर्शन, भाषायिक कौशल

प्रदर्शन, शारीरिक दक्षता प्रदर्शन, का पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए जिससे कि सभी सांस्कृतिक विशेषताओं, भाषाओं एवं सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति के विद्यार्थियों का एक दूसरे के प्रति सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न हो सके।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6. कक्षाकक्ष की विविधताओं के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण का क्या प्रभाव पड़ेगा?

....

....

....

7. शिक्षक को बच्चों की पृष्ठभूमि को जानना क्यों आवश्यक है ?

....

....

....

8. विद्यालय एवं घर का वातावरण में विविधता क्यों होता है?

....

....

....

9. संस्कृति का प्रभाव बच्चों को कैसे प्रभावित करता है?

....

....

....

10. शिक्षकों को बच्चों की कमजोरी के प्रति कैसा दृष्टिकोण रखना चाहिये?

....

....

....

11. शैक्षिक क्रियाकलाप क्यों आवश्यक है?

....

....

....

12. कक्षा में शिक्षक को स्वतन्त्रता किसे देना चाहिए?

....

....

....

13. विविधता के दौर में शिक्षक प्रशिक्षण कैसा होना चाहिए?

....

....

....

14. शिक्षक विद्यार्थियों को विद्यालय में निर्धारित मानकों के अनुरूप व्यवहार करने की आदत क्यों डालनी चाहिए?

....

....

....

6.7 सारांश

विविधता एवं विश्व परिदृश्य –

विविधता विश्व में विशिष्ट शिक्षा हेतु एक मौलिक तत्व के रूप में उभर रहा है। शिक्षा तन्त्र भी इस तथ्य से अधूरा नहीं रह गया है। जब उपनिवेशवाद की समाप्ति के पश्चात समाजवाद एवं लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति का उदय हुआ उसके साथ ही मानवाधिकारों की बात भी प्रारम्भ हो गयी। व्यक्ति की व्यक्तित्ववक्ता को महत्व देना आवश्यक माना गया। सभी को समानता के अधिकार हेतु शिक्षा को विकास का मुख्य उपकरण मानते हुये इस बात पर बल दिया जाने लगा कि शिक्षा इस प्रकार से दी जाये कि सभी विविधताओं से परे सभी का समान विकास हो जाय। यह चिन्ता का विषय इसलिये बना क्योंकि अमेरिका जैसे शक्तिशाली एवं विकसित देशों के समाज में सांस्कृतिक भाषायिक एवं सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति की भिन्नता का प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं विकास पर प्रभाव दिखाई पड़ने लगा।

अनेक अध्ययनों ने इस बात की पृष्टि की। **हप्स एवं स्ट्प्स (2002)** के अनुसार अमेरिकी समाज में श्वेत एवं अश्वेत वर्ण के विद्यार्थियों के मध्य उपलब्धि में पर्याप्त अन्तर था।

कॉनहॉस, नॉग्यूरा एवं सैन्डर्स (2004) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि उपलब्धि प्राप्तांक, ग्रेड, प्रोन्नति दर, एवं स्नातक होने की दर विद्यालय उपलब्ध एवं विकास के संकेतक हैं, परन्तु पिछड़ी सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति का प्रभाव विद्यार्थियों को उपलब्धि पर पड़ता है। अनेक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि निम्न सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति वाले बच्चों की उपलब्धि स्तर अधिकांश नीचे रहता है। (एन0ए0इ0पी0 2007) ने अपने अध्ययन में दिया कि निम्न आय वाले परिवारां के बच्चे अपने सहपाठियों की अपेक्षाकृत पढ़ने एवं गणित में खराब प्रदर्शन करते हैं। 2007 के एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार 18 : बच्चे निर्धनता में रहते हैं जिसमें से 10 श्वेत बच्चे 13 एशियाई बच्चे, 29 हिसपैनिक बच्चे एवं 34 अश्वेत बच्चे इसमें आते हैं क्योंकि निम्न आय के घरों से बच्चों की संख्या बहुत अधिक है इसीलिये गरीबी के सम्बन्ध को अकाद शिक्षक के दृष्टिकोण का शिक्षक के कक्षा व्यवहार पर स्पष्ट दिखाई देता है अधिकांशतः कक्षा कक्ष में यह व्यवहार दिखाई देता है।

- शिक्षक निम्न उपलब्धि वाले बच्चों का एक समूह बना देता है।
- इस समूह को कम चुनौती वो प्रश्न हल करने को देता है।
- शिक्षण के समय इन बच्चों को अन्य बच्चों की बराबर करने हेतु उद्वेलित नहीं करता है।
- बच्चों को शिक्षक से अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अलग तरह का निर्देश प्राप्त होता है।
- आज सम्पूर्ण विश्व में जब मानवतावदी दृष्टिकोण का बोलबाला है तब प्रश्न यह है कि मनुष्य की विविधताओं का सम्मान करते हुये समतावादी विकास कैसे हो इसीलिये अब यह जानने की आवश्यकता है कि आखिर विविधता को ध्यान में रखते हुये शिक्षा देना क्यों आवश्यक है।
- विविधताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का संचालन कैसे किया जाये।
- विविधताओं का विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव कितना पड़ रहा है।
- विविधताओं के बावजूद सभी विद्यार्थियों का समान सम्भव हो सके। समानता के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।
- विद्यार्थियों में एकता की भावना का विकास हो।
- विद्यार्थियों की विविधतायें उन्हें भावी जीवन में बांट न पायें।

- विद्यार्थियों में इन विविधताओं के प्रति सही समझ उत्पन्न हो और वे इनके प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न हो।
- कक्षा–कक्ष में शिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार से सम्पादित हो सभी विद्यार्थियों को समान लाभ हो सके।
- सभी विद्यार्थियों का शिक्षा के माध्यम से सन्तुलित विकास हो।
- शिक्षक को विद्यार्थियों की विविधताओं का पूर्ण ज्ञान होगा वो शिक्षक उसके अनुकूल शिक्षण विधा की योजना बना सकता है।
- विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के शिक्षण विधाओं का लाभ मिल सकता है जिससे उनकी उपलब्धि बढ़ेगी।

शिक्षक के लिए विविधता को समझना और उसको महत्व देते हुये शिक्षण करना आसान काम नहीं है परन्तु ऐसी कई विधायें हैं जो कक्षा कक्ष में असमानताओं को समझते हुये संतुलित अध्ययन किया जा सकता है। अनेक शिक्षा शास्त्री जॉन गुडलैंड, रोलैण्ड, बार्थ, टेड सीजर ने शिक्षण एवं विविधता के मूल्य पर बहुत कुछ लिखा है इनके द्वारा लिखा गया है कि –

- जो कि शिक्षक विविध प्रकार की सांस्कृतिक विविधताओं को जानकर अपने अप्रत्याशित कौशल एवं दक्षताओं का प्रयोग करके शिक्षण व्यूह की रचना करता है अपने विद्यार्थियों को सफलता हेतु अधिक अवसर देता है।
- जो भी शिक्षक विद्यार्थियों की भाषायिक, सांस्कृतिक आर्थिक सामाजिक विविधताओं को समझते हुये विद्यार्थियों को अधिगम अवसर देते है। वे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को धनात्मक प्रतिक्रिया देने मे सफल होते है।
- विविधताओं के प्रति संवेदना लगातार समझने की क्षमता उत्पन्न करती है।

विविधताओं को चुनौती देती शिक्षण विधियॉ एवं रणनीतियॉ

शिक्षक के गुण एवं तैयारी –

अधिकांशतः विद्यालयी शिक्षा में विविधता जो कि अधिगम में विविधता के रूप में प्रदर्शित होती है इसका एक कारण शिक्षक के गुण एवं तैयारी भी है। अधिकांशतः शिक्षक शिक्षित एवं प्रशिक्षित होते हैं अनेक अध्ययनों मे यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि विद्यार्थी की उपलब्धि का शिक्षक के अनुभव एवं ज्ञान से सीधा सम्बन्ध होता है। शिकागो, मिलवाकी एवं क्लेवलैण्ड में किये गये एक शिक्षित अध्यापकों ने कक्षागत विभिन्नताओं को नहीं समझा और इसके कारण बच्चों की उपलब्धि बुरी तरह प्रभावित हुयी। मेयर, म्यूचेन एवं मूरे 2000 ने एक अध्ययन में यह पाया कि अधिक गरीबी वाले परिवारों के बच्चे कम प्रशिक्षित अध्यापकों से पढ़ रहे थे जिसका प्रभाव उनकी उपलब्धि पर पड़ रहा था।

अनुपयुक्त परीक्षण प्रणाली – कई अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि जितने

भी परीक्षणों का निर्माण किया जाता है वे बच्चों को बुद्धि के स्तर पर तो बाट लेते हैं परन्तु बच्चों के व्यवहार में उनकी पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक चर तो सन्निहित रहते हैं इसके अतिरिक्त इसके अतिरिक्त उनका ज्ञान, भाषा शैली, परिवार एवं घर जैसे चर भी उपलब्धि को प्रभावित करते हैं परन्तु मानकीकृत परीक्षण भी पक्षपातपूर्ण तब हो जाते हैं जबकि वह बच्चों के इन विभेदों को मिटा नहीं पाते और स्थिति यह बन जाती है कि सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं भाषायिक विविधतायें उपलब्धि को लगातार प्रभावित करते हैं।

परिवार के दृष्टिकोण एवं सहयोग – परिवार एक और प्रत्येक परिवार की अपने सामाजिक आर्थिक शैक्षिक स्थिति के साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टतायें होती है। संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार रहन–सहन, दृष्टिकोण, आचार विचार को प्रभावित कर देता है। वहीं विशेषतायें बच्चे को कक्षा में दूसरे से अलग कर देता है यह विशेषतायें शिक्षकों को कुछ दिखाई देते है। पर इनको समान करने की दक्षता शिक्षकों को एक चुनौती देती है।

शिक्षकों की अज्ञानता/अक्षमता – कक्षा विविध विविधताओं वाले विद्यार्थियों का समूह है जिसके समूह में सांस्कृतिक, आर्थिक, पारिवारिक, भाषायिक, शारीरिक रूप में विविधता वाले बच्चे सम्मिलित रहते हैं सच यह है कि विविध बुद्धि स्तर वाले बच्चों के बारे में तो शिक्षक को ज्ञान होता है परन्तु इन विविधताओं के विषय में न तो शिक्षक को जानकारी होती है न ही उसकी तैयारी रहती है। शिक्षक इन विभिन्नताओं की पेचीदगी को समझे बिना समान शिक्षण करते है। जिसका प्रभाव बच्चों की उपलब्धि पर पड़ता हैं तब प्रश्न यह है आखिर हम भूमण्डलीकरण के दौर एवं चुनौतियों के सापेक्ष किस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करें, जिससे सभी विविधताओं को समान महत्व मिलता भी रहे और सामन्जस्य पूर्ण दृष्टिकोण का विकास भी हो और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षण भी हो जाये।

सांस्कृतिक एवं भाषायिक विविधता एवं शिक्षण

शिक्षकों को यह समझना होगा कि उनके समक्ष कक्षा में बैठे विद्यार्थियों की अपने आचार–विचार, रहन–सहन परम्पराओं को मानने वाले, मान्यताओं, बोल–चाल की अपनी विशेषता है यह भी सच है कि शिक्षक की अपेक्षा के विपरीत परिस्थितियों में अपने आपको पाता है। अच्छी बात तो यह होगी कि –

- शिक्षक स्थानीय संस्कृति एवं सभ्यता को समझने का प्रयास करे।
- शिक्षक यह भी समझने का प्रयास करे कि बच्चे किन परिस्थितियों एवं पृष्ठभूमि सें सम्बन्धित है।
- शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों के कक्षागम व्यवहार उपलब्धि समायोजन, पठन–पाठन को ध्यान से देखकर उससे विद्यार्थियों के सांस्कृतिक सामाजिक पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

- शिक्षक को सभी संस्कृति एवं भाषा के प्रति एक समन्वयवादी व सामन्जस्यपूर्ण रवैया अपनाना चाहिये।
- शिक्षक किसी भी विशेष संस्कृति को प्राश्रय न देकर सभी के लिये समान दृष्टिकोण अपनाये जिससे किसी भी संस्कृति की उपेक्षा न हो ।
- आर्थिक सामाजिक रूप से पिछड़े परिवारों के बच्चों को कक्षाओं में शिक्षकों की ओर से समान ध्यान दिया जाये।
- स्थानीय भाषा, देशी भाषा, राष्ट्रीय भाषा के साथ ही विविध भाषायें जो विद्यार्थियों द्वारा बोली जाती है उनको शिक्षकों द्वारा समान दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाना चाहिए।
- लैठसन–बिलिंग्स – 1965 के अनुसार शिक्षक को सांस्कृतिक रूप से उपयोगी शिक्षण विधि का चयन करना चाहिये।

संस्कृति प्रश्राय शिक्षण विधि एक बहुत ही स्वस्थ शिक्षण प्रारूप है जो विद्यार्थियों को अपनी गृह भाषा कौशल एवं व्यक्तिगत रूचियों को उपयोग करने की स्वीकृति देता है। इसके लिये शिक्षण यह कर सकता है।

– कक्षा शिक्षण में शिक्षक संगीत को समाहित करे सांस्कृति उपयोगी शिक्षण को रोचक बना सकता है।

– कक्षा शिक्षण में शिक्षक संगीत को समाहित करके सांस्कृति उपयोगी शिक्षण को रोचक बना सकता है।

– शिक्षक कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों को अपने अनुभवों को बांटने को प्रेरित करें इससे विभिन्न विषयों के प्रति शिक्षकों की समवृत्ति, दृष्टिकोण, समस्याओ मजबूतियों एवं क्रियाकलापों की जानकारी मिल सकेगी।

– शिक्षक विद्यार्थियों को दत्तकायो, अधिगम, क्रियाओं एवं परियोजना कार्यों को समूहों में दे जिससे बच्चों को अपनी भाषायिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं को बांटने का मौका मिल सकेगा।

– शिक्षक विद्यार्थियों को क्रिया आधारित शिक्षण का अवसर देना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को दूसरों की भावनाओं, चिन्तन, विचारों एवं कोशिशों को समझने का अवसर मिल सकें।

– शैक्षिक एवं सहशैक्षिक क्रियाकलापों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। विद्यार्थियों को सहशैक्षिक क्रियाकलापों को करने का अवर दें जिससे बच्चों के मध्य अन्तःसंस्कृतिक भावनाओं का विकास हो सकें।

– शिक्षक अपने पाठ नियोजन में भी विद्यार्थियों की विशेषताओं, संस्कृति अनुभवों एवं रूचियों को ध्यान देकर करें, जिससे वह पाठ को अधिक ध्यान देकर, अधिक महत्वपूर्ण एवं उत्तेजक बना सकता है।

- कक्षा में बच्चों को ऐसे अवसर दिये जाने चाहिये कि वे अपने को सुविधापूर्वक कक्षा में अपनी भाषा व सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग कर सकें। जिससे विद्यार्थी अपने को सहज अनुभव कर सकें।
- शिक्षक सभी विद्यार्थियों को समान रूप से समायोजित करने का अवसर दें। विद्यार्थियों को ऐसा वातावरण दिया जाये जिससे सभी को लगे कि वे एक समूह के सदस्य हैं।

इन सभी प्रयासों के शिक्षक कैसे करें ये भी सोचने की बात है तब अनेक शिक्षाशास्त्रियों ने इसके लिये सुझाव दिया। रयान 2005 एवं 2003 के सहयोगियों समेत ये स्पष्ट किया है कि विविधता की चुनौतियों को समझने वाला शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की हमें आवश्यकता होगी। लॉबमैन, रयान, एवं मैकलॉहलिन ने यह स्पष्ट किया कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हमें इर्न्टशिप एवं कोर्स वर्क को सम्मिलित करना होगा। जिससे कि शिक्षकों को आज की आवश्यकता के अनुरूप विविधताओं से परिपूर्ण आरम्भिक कक्षाओं के लिये तैयार किया जा सके।

विश्व के विकसित राष्ट्रों में भी विविधताओं से भरपूर आरम्भिक कक्षाओं का शिक्षण एक चुनौती बना हुआ है। अधिकांश देशों के जनांकिकीय आंकड़े समाज में व्याप्त विविधताओं को इंगित कर रहे हैं अब आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को इन विविधताओं को समझते हुये शिक्षा देने हेतु क्यों तैयार करें।

- कक्षा कक्ष की विविधतायें शिक्षकों को तैयार नहीं करने की और न होने का आभास कराता है।
- विविधतायें शिक्षकों को शिक्षण के दौरान हतोत्साहित करती है।
- बेनेट (1986) ने आगाह किया कि संस्कृति एवं अधिगम शैलियों के प्रभावों की उपेक्षा सभी विद्यार्थियों को प्रभावित करती हैं प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि विद्यालय एवं शिक्षक उनके बच्चों को अच्छे प्रकार से समझें ।

6.8 अभ्यास के प्रश्न

1. शिक्षण में विविधता का प्रत्यय क्यों आया? शिक्षक को विविधता के प्रति कैसा दृष्टिकोण रखना चाहिये? कुछ शिक्षण विधियों पर प्रकाश डालिये।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षक सभी विद्यार्थियों को समान ध्यान विविधता की आवश्यकतानुसार कर सकें।
2. समान व सामंजस्यपूर्ण व्यवहार ।
3. अधिगम शैलियों व उपलब्धि पर प्रभाव ।

4. सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, लैंगिक, व्यक्तिगत, शारीरिक एवं भाषायिक विविधता।
5. एक व्यवस्थित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम।
6. अकादमिक उपलब्धियों पर नकारात्मक प्रभाव ।
7. बच्चों को पूर्ण विकास हेतु पूर्ण सहयोग।
8. वातावरणीय सांस्कृतिक आर्थिक भाषायिक।
9. व्यवहार, रहन–सहन, परम्पराओं, मान्यताओं, चिन्तन सुविधाओं, बोल–चाल का तरीका।
10. धनात्मक दृष्टिकोण रखकर बच्चे के मजबूतियों को सहारा देना चाहिये।
11. सामाजिक कौशलों के विकास हेतु ।
12. बच्चों को स्वतन्त्रता देनी चाहिए जिससे वे अपनी सन्निहित विशेषताओं एवं खूबियों का प्रदर्शन कर सके एवं एक सामन्जस्य दृष्टिकोण विकसित कर सके।
13. विविधता को समझने, आकलन, व्यवहार करने एवं शिक्षण करने की दक्षता उत्पन्न करने हेतु।
14. विद्यार्थियों में हम की भावना का विकास हो।

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, लाल रमन बिहारी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ 2010–11.
2. शर्मा, आर. ए. विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2007 ।
3. पाण्डेय रामशकल, उदीयमान भारत समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ।

खण्ड : तीन

समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई - 7 5
विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई - 8 16
गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे
भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्त जनों के संदर्भ में

इकाई - 9 26
समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्रा	आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डा0 रामेन्द्र गुप्ता	एसोसियएट प्रोफेसर, डी0वी0 कालेज, उरई जालौन (इकाई-1,2,3)
प्रो0 सुमित्रा सिंह	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई- 7,8,9,10,11,12)
प्रो0 सुषमा पाण्डे	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई-4,5,6)
डा0 बुद्ध प्रिय	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (इकाई- 13,14,15)

सम्पादक

प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0उषा मिश्रा	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ० जी० एस० शुक्ल	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-UP-978-93-83328-04-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन -उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02 : समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड–एक शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई–3 भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

खण्ड–दो विविधता का अवबोध

इकाई–4 विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई–5 खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई–6 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

खण्ड–तीन समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई–8 गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे – भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्तजनों के संदर्भ में

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

खण्ड–चार शैक्षिक आयोग एवं नीतियॉ

इकाई–10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियॉ : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992), निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई–12 कार्यक्रम, योजनाएँ, अर्न्तराष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियॉ

खण्ड–पॉच शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियॉ

इकाई–13 शिक्षा की चुनौतियॉ और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई–14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई–15 सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

खंड–तीन – समकालीन मुद्दे और संबंध

खण्ड परिचय

शिक्षा के क्षेत्र में समकालीन मुद्दे और समाज से सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा सम्बन्धी परिवर्तन का आधार भी इन्हीं से प्राप्त होता है।

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनिकरण और शिक्षा के अधिकार तथा सार्वजनिक पहुँच से संबंधित है।

इसके अन्तर्गत प्रावधानों का सार्वजनीकरण, नामांकन का सार्वजनीकरण, अवधरणा का सार्वजनीकरण, भागीदारी का सार्वजनीकरण और उपलब्धियों का सार्वजनीकरण सम्मिलित है। सार्वजनीकरण की अवधारणा को कार्य रूप में परिणत करने के लिए केन्द्र सरकार ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम का सहारा लिया, जिससे शिक्षा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध हो सके।

इकाई–8 गुणवत्ता और समानता के मुद्दे, विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों तथा अक्षम व्यक्तियों के संदर्भ में भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर गुणवत्ता युक्त और समान शिक्षा प्राप्त करने से संबंधित शैक्षिक प्रावधानों और प्रयासों की चर्चा करती है।

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर तथा विद्यालयी असमानता से संबंधित यह इकाई सभी के लिए शैक्षिक अवसर की समानता तथा विद्यालयी स्तर पर असमानता के कारणों पर विचार करती है। समाज के पिछड़े एवम् वंचित वर्ग को समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने हेतु किये गये प्रयासों एवम् विद्यालयों में व्याप्त असमानता को दूर करने के उपायों की चर्चा करती है।

खण्ड–3 समकालीन मुद्दे और संबंध

इकाई – 7 : विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे, शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शिक्षा के सार्वजनीकरण की अवधारणा

7.4 विद्यालयी शिक्षा के सार्वभौमीकरण से संबंधित मुद्दें

7.5 संविधान एवं न्यायालय की दृष्टि में सार्वजनीकरण

7.6 शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास के प्रश्न

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

7.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक सामाजिक प्रकिया है और सामाजिक परिवर्तनों तथा अपेक्षाओं का सीधा असर इस पर पड़ता है। स्वाधीनता के उपरांत व्यापक निरक्षरता को दूर करने की चिन्ता संविधान में उजागर हुई और तभी कम से कम 14 वर्ष तक के बालकों की निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया गया। आगे चलकर शिक्षा को मूल अधिकार का दर्जा देने की वकालत सर्वोच्च न्यायालय ने की। इन सभी की मंशा रही कि विद्यालय जाने की आयु से लेकर 14 वर्ष तक के सभी बच्चे विद्यालय में रहें और सभी की पहुँच

शिक्षालयों तक बन सके। व्यापक स्तर पर जमीनी कार्यक्रमों का प्रारम्भ किया गया और अभियान चलाकर इसकी प्राप्ति के लिए सतत प्रयास आज भी जारी है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. शिक्षा के सार्वजनीकरण का अर्थ और इसकी विशेषताएं बता सकेंगे।
2. इस संदर्भ में सरकारों द्वारा अब तक किये गये प्रयासों से अवगत हो सकेंगे।
3. शिक्षा के अधिकार अधिनियम की प्रमुख बातों को लिख सकेंगे।
4. शिक्षा प्राप्त करने की आयु वाले बच्चों के संदर्भ में उनकी पहुँच को सुनिश्चित करने वाले प्रावधानों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.3 शिक्षा के सार्वजनीकरण की अवधारणा

शिक्षा के सार्वजनीकरण से तात्पर्य सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और सुविधाएं प्रदान करना है। इस प्रकार सार्वभौमिकरण शैक्षिक अवसरों के विस्तार से है, जिसमें सभी का समावेश हो सके। कोई व्यक्ति शैक्षिक प्रक्रिया से छूटे न। किसी भी प्रजातांत्रिक देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होते हैं। इसीलिए सभी को विकास के लिए समान अवसर प्रदान किये जाते हैं, क्योंकि प्रजातन्त्र के सफल संचालन के लिए शिक्षित तथा प्रबुद्ध नागरिकों की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में प्रजातांत्रिक देशों में प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दिया गया है। इसलिए सार्वभौमिकरण से तात्पर्य शिक्षा की ऐसी पद्धति को विकसित करने से है, जिससे समाज के पिछड़े कम विकसित, सुविधाओ से वंचित, कमजोर वर्गों, उपेक्षित जातियों तथा गरीब व्यक्तियों को शिक्षा की सभी सुविधाएं समान रूप से उपलब्ध हो सके, जो समाज के सम्पन्न व्यक्तियों को प्राप्त है। भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने कहा "शिक्षा किसी वर्ग का विशेषाधिकार नहीं है, बल्कि यह सार्वभौतिक अधिकार है।" शिक्षा का सार्वभौमिकरण शिक्षा के समान अवसरों को इंगित करता है। समान अवसर से तात्पर्य एक सा अवसर नहीं है, बल्कि इसका तात्पर्य प्रत्येक योग्य व्यक्ति को शिक्षा उपलब्ध कराना है। एबीस ने सार्वभौमिकरण को अवसर के रूप में स्पष्ट करते हुए कहा "शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ सभी नागरिकों को शिक्षा के लिए समान मात्रा में अवसर उपलब्ध होना है।"

इसका तात्पर्य समग्र रूप से पॉच तथ्यों में निहित है – इसके अन्तर्गत प्रावधानों का सार्वजनीकरण, नामांकन का सार्वजनीकरण, अवधारणा का सार्वजनीकरण, भागीदारी का सार्वजनीकरण और उपलब्धियों का सार्वजनीकरण सम्मिलित है।

1. प्रावधानों का सार्वजनीकरण उपर्युक्त विद्यालयी सुविधा से संबंधित है, जिसमें 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की प्राथमिक स्तर की शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए निवास से एक किसी के दायरे में विद्यालय के होने से संबंधित है। इसके लिए अधिक संख्या में पूरे देश में विद्यालय की आवश्यकता है।

2. बच्चों के लिए प्रावधान के बाद यह आवश्यक है कि उपयुक्त आयु के बच्चों का नामांकन प्राथमिक विद्यालयों में कराया जाय। सरकार की भी यही मंशा है कि 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चे विद्यालयों में नामांकित हों। नई शिक्षा नीति, 1986 कार्य योजना, 1992 तथा शिक्षा के अधिकार अधिनियम 14 वर्ष तक क आयु के सभी बच्चों को नामाकित कराने के लिए अपना संकल्प व्यक्त कर चुके है।

3. शिक्षा के सार्वजनीकरण में केवल नामांकन ही पर्याप्त नहीं है, वरन् नामांकित बच्चों को विद्यालयों में बनाये रखना भी आवश्यक है। विद्यालय शिक्षा की अवधि तक बच्चों को विद्यालय में रखना शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए महत्वपूर्ण है।

4. प्राथमिक स्तर की शिक्षा को सार्वजनिक बनाने के लिए समुदाय की भागीदारी भी आवश्यक है। इसके लिए समुदाय को भी अपनी आवश्यकताओं के हिसाब से महत्वपूर्ण भूमिका निभाना आवश्यक है।

   इसके लिए शिक्षा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप जब शिक्षा प्रशासन से जुड़े लोग स्थानीय समुदाय के प्रति जवाबदेह होंगे, तो समुदाय भी औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्रमों के माध्यम से सहायता का हाथ बढ़ायेगा।

5. अन्ततः यह भी सुनिश्चित करना होगा कि सीखने वाले परिणामी उपलब्धि प्रदर्शित करें। औपचारिक तथा अनौपचारिक माध्यमों द्वारा अधिगम का न्यूनतम स्तर प्राप्त किया जाना आवश्यक है। इसके लिए बच्चों की उपलब्धि का सतत मूल्यांकन भी किया जाना चाहिए।

मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र 1948 में कहा गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने योग्यता के अनुसार

उच्च शिक्षा प्राप्त होगी। संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी घोषणा में कहा गया था कि 2015 तक सम्पूर्ण विश्व में प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण हो। प्रजातांत्रिक भावना के आधार पर सर्वप्रथम 1870 में ब्रिटेन में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया और उसे जनसाधारण के सर्वसुलभ कर दिया गया। तत्पश्चात यूरोप के अन्य देशों में भी एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा को अनिवार्य किया गया। भारतीय शिक्षा परिदृश्य को देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि वैदिक काल से ही शिक्षा की समृद्ध परम्परा रही है, परन्तु यह शिक्षा समाज के ब्राह्मण एवं उच्च वर्गों तक ही सीमित थी। सामान्य जनमानस के लिए शिक्षा उपलब्ध नहीं रही। यही स्थिति बौद्धकार एवं मध्यकाल में भी रहीं। भारत में सर्वप्रथम सभी के लिए शिक्षा की मांग को अंग्रेजों के शासनकाल सन 1910 ई0 में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा किया गया । तत्पश्चात महात्मा गांधी एवं जाकिर हुसैन ने इसकी आवश्यकता एवं महत्व को रेखांकित किया।

15 अगस्त, 1947 को देश आज़ाद हुआ और 26 जनवरी, 1950 को अपना संविधान लागू किया गया। शिक्षा के संदर्भ में संविधान में दो महत्वपूर्ण घोषणाएं की गयी। संविधान के अनुच्छेद 45 में यह कहा गया कि राज्य संविधान के लागू होने के समय से 10 वर्ष के अंदर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा और अनुच्छेद 29 में यह घोषणा किया गया कि राज्य द्वारा घोषित अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में किसी भी बच्चे को धर्म, मूलवंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जायेगा। इस प्रकार संविधान द्वारा भारत में सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध करायी गयी है।

शिक्षा के सार्वभौमिकरण से तात्पर्य 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को कक्षा 1 से 8 तक की प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क की जाय और किसी भी वर्ग के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जाय। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार समाज के सभी वर्गों के लिए है, न कि कुछ चुने हुए लोगों के लिए। यह सामाजिक न्याय तथा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। वर्तमान में प्रत्येक बच्चे के लिए निःशुल्क तथा सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था प्रमुख शैक्षिक लक्ष्य है –

1. शिक्षा अवधि तक छात्रों को विद्यालय में अध्ययन करना : विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों को निर्धारित शिक्षा अवधि तक विद्यालय में अध्ययन करना शिक्षा सार्वभौमिकीकरण का महत्वपूर्ण प्रश्न है शिक्षा अवधि के बीच में छोड़कर जाने वाले बच्चों की दर अत्यधिक है। जब तक शिक्षा अवधि के दौरान विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों की संख्या में कमी नहीं लायी जायेगी, तब तक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का उद्देश्य पूर्ण नहीं किया जा सकेगा।

2. विद्यालय में शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता
3. विद्यालयों में सभी छात्रों का नामांकन

7.4 विद्यालय शिक्षा के सार्वभौमीकरण से संबंधित मुद्दे

1. विद्यालयी शिक्षा से छात्रों का पलायन
2. शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में अन्तर
3. गुणवत्ता की कमी
4. क्षेत्रीय विषमता
5. सरकारी व्यय में कमी
6. स्कूली व्यवस्था में अंतर
7. गरीबी और कुपोषण

7.5 संविधान एवं न्यायालय की दृष्टि में सार्वजनीकरण

संविधान लागू होने के समय सन 1950 में 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा देने का प्रावधान किया गया और इसकी समय सीमा 10 वर्ष रखी गयी। इसे समय–समय पर संशोधित भी किया गया। गुणात्मक सुधार के साथ–साथ सार्वजनिक नामांकन और विद्यालय में बनाये रखने की नीतियों पर अमल करने के कारण लक्ष्यों में संशोधन किये जाते रहे। कोठारी आयोग ने 1986 तक विद्यालयी शिक्षा को सार्वजनिक बनाने की समय सीमा तय की थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में यह स्पष्ट किया गया कि जो बच्चे वर्ष 1990 तक 11 वर्ष की आयु के हो चुके है, उनको पॉच वर्ष की विद्यालयी शिक्षा या जो बच्चे 1995 अनौपचारिक माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे है। उनको 14 वर्ष की आयु तक अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाये।

मार्च 1990 में सभी के लिए शिक्षा से संबंधित विश्व सम्मेलन का आयोजन थाइलैण्ड के जोमतियन नामक स्थान पर किया गया, जिसमें सभी देशों एवं अभिकरणों को आमंत्रित करके सदी के अंत तक (वर्ष 2000 तक) सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने पर सहमति बनी। राष्ट्रीय विकास परिषद 1991 की 43वी बैठक में 15 से 35 आयु वर्ग के लोगों की निरक्षता के पूर्ण उन्मूलन के लिए प्रयास करने पर बल दिया गया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की संशोधित कार्य योजना, 1992 में 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा संतोषजनक गुणवत्ता के

साथ 21वीं सदी के प्रारम्भ के पूर्व राष्ट्रीय मिशन के तहत उपलब्ध कराने की बात की गयी।

संविधान के 73वें एवम् 74वें संशोधन 1992 के द्वारा शिक्षा के लिए ग्रामीण व शहरी निकायों को दायित्व सौपा गया। मोहिनी जैन बनाम केरल राज्य 1992 में यह कहा गया कि "शिक्षा मूल अधिकार है, प्रत्येक नागरिक को संविधान के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। निजी शिक्षण संस्थानों को मान्यता देने का अधिनियम राज्य का एक उपकरण है जिसे राज्य के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

जे0पी0 उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश 1993 में सर्वोच्च न्यायालय में अपने पूर्व के निर्णय 1992 पर पुनर्विचार किया जिसमें मुख्यतः कहा गया कि प्रत्येक बालक को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार है और आगे यह राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करेगा।

उपर्युक्त निर्णयों एवम् सुझावों के अनुपालन में सरकारों की प्रयत्नशीलता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष/विश्व बैंक से आर्थिक सहायताएं प्राप्त की गयी और सभी के लिए शिक्षा परियोजना, डी0पी0ई0पी0 योजना चलायी गयी। शिक्षा सुधार पर अम्बानी बिडला रिपोर्ट में भी यह कहा गया कि प्राथमिक शिक्षा पूर्ण रूप से राज्य का उत्तरदायित्व है। सर्व शिक्षा अभियान 2001 ने 210 मिलियन बच्चों को, एक मिलियन स्कूलों को तथा लगभग 4 मिलियन शिक्षकों को आच्छादित किया । बच्चों को विद्यालय में रोकने, विद्यालय न छोड़ने तथा पोषण बढ़ाने के उद्देश्य से मध्याह्न भोजन योजना 1995 को प्रारम्भ किया गया।

वर्ष 1993 में दिल्ली में नौ सर्वाधिक जनघनत्व वाले देशों ने बैठक करके वर्ष 2000 तक शिक्षा को सभी के लिए उपलब्ध कराने की रणनीतियों पर विचार विमर्श किया। वर्ष 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने भी निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की। वर्ष 1994 में केन्द्र सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का प्रारम्भ किया। इसके लिए व्यय किये जाने वाले धन की 85 प्रतिशत उपलब्धता केन्द्र सरकार के हिस्से में तथा 15 प्रतिशत संबंधित राज्य सरकार के हिस्से में आयी। वर्ष 2002 में 86वॉ संविधान संशोधन करके शिक्षा के अधिकार को जीवन के अधिकार के तहत मूलभूत अधिकार में योजित किया गया। अनुच्छेद 21 (क) के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में कहा गया कि – "राज्य 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करे, उपबन्ध करेगा।"

सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने के क्रम में भारत सरकार द्वारा समय–समय पर

विभिन्न कार्यक्रमों का नियोजन किया गया। सन 1980 से 1990 के मध्य कई योजनायें बनाई गयी, जिनमें आपरेशन ब्लैक बोर्ड, शिक्षाकर्मी परियोजना, महिला समाख्या, लोक जुंबिश, डायट की स्थापना इत्यादि सम्मिलित है। सभी को अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सर्व शिक्षा अभियान का प्रारम्भ 2000–2001 में किया गया।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय, संविधान एवं सरकार सभी के समवेत प्रयास रहे हैं कि शिक्षा को विशेषतः प्राथमिक शिक्षा को सभी के लिए उपलब्ध कराया जाय। बच्चे विद्यालय में पहुँचें और पूरे समय विद्यालय में टिके रहें। इसके लिए किये गये प्राविधानों का प्रतिफल भविष्य में अवश्य देखने को मिलेगा।

वैश्विक स्तर पर शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए यूनेस्को के द्वारा प्रयास किये जाते रहे हैं और वर्ष 2002 से निरंतर प्रतिवर्ष सर्वशिक्षा से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाते रहे है। वर्ष 2015 में प्रकाशित प्रतिवेदन ''सभी के लिए शिक्षा 2000–2015; उपलब्धियॉं एवं चुनौतियॉं'' एक विस्तृत दस्तावेज है, जो वैश्विक स्तर पर 2015 में अनुमानित नामांकन की दर 93 प्रतिशत रहने की संभावना व्यक्त की गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के वैश्विक अनुश्रवण प्रतिवेदन (ग्लोबल मानिटरिंग रिपोर्ट, 2015) में सभी को बारह वर्ष तक की विद्यालयी शिक्षा सन 2030 तक उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. शिक्षा के सार्वजनीकरण से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

2. प्राथमिक स्तर की शिक्षा को बनाने के लिये क्या आवश्यक है?

....

....

....

3. सर्व शिक्षा अभियान कब प्रारम्भ हुआ ?

....

....

7.6 शिक्षा का अधिकार और सार्वजनिक पहुँच

दिनांक 27 अगस्त, 2009 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित और 16 फरवरी, 2010 को जारी अधिसूचना के आधार पर 01 अप्रैल, 2010 से प्रभावशील शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रावधानों को सम्मिलित किया गया।

1. भारत के 6 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।
2. प्राथमिक शिक्षा समाप्त होने से पूर्व किसी भी बच्चे को न तो रोका जायेगा और न निकाला जायेगा। साथ ही बोर्ड परीक्षा पास करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।
3. वह बच्चा जिसकी आयु 6 वर्ष या उससे ऊपर है और जिसने किसी विद्यालय में प्रवेश लिया है या नहीं लिया है और अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाया है, तब उसे उसकी आयु के योग्य कक्षा में प्रवेश दिया जायेगा और अन्य बच्चों के समकक्ष लाने के लिए एक समय सीमा में उसे विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा। यदि बच्चे की आयु 14 वर्ष से अधिक है तो भी उसे प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूर्ण होने तक विद्यालय में रखा जायेगा।
4. प्रवेश हेतु आयु का प्रमाण या निर्धारण उसके जन्म प्रमाण पत्र मृत्यु एवं विवाह पंजीकरण कानून, 1856 या इसी प्रकार के अन्य पत्रक के आधार पर किया जायेगा। आयु का प्रमाण उपलब्ध न होने की दशा में भी किसी बच्चे को प्रवेश से वंचित नहीं किया जायेगा।
5. जो बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर चुके होंगे, उनको एक प्रमाण पत्र दिया जायेगा।
6. शिक्षक छात्र का अनुपात निश्चित किया जायेगा।

7. यह प्राविधान जम्मू–कश्मीर के अतिरिक्त सम्पूर्ण देश में लागू होगा।

8. आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों को सभी निजी विद्यालयों में पहली कक्षा में प्रवेश हेतु 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया जायेगा।

9. शिक्षा की गुणवत्ता में अनिवार्य रूप से सुधार किया जायेगा।

10. विद्यालय के शिक्षकों को पॉच वर्षों के भीतर उचित स्तर का व्यावसायिक प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेना होगा। इसके अभाव में उनको अपना शिक्षण व्यावसाय छोड़ना होगा ।

11. विद्यालयों का बुनियादी ढांचा यदि ठीक नहीं है, तो इसे तीन वर्षों के अन्दर सुधार लिया जाना अपेक्षित है अन्यथा इस स्थिति में विद्यालय की मान्यता समापत कर दी जायेगी।

12. आर्थिक व्यय को राज्य एवं केन्द्र सरकारों के मध्य बांट दिया जायेगा।

इसके अतिरिक्त यह अधिनियम विद्यालय कार्य दिवस, शिक्षक के कार्य के घण्टे, शारीरिक दण्ड और उत्पीड़न, निजी ट्यूशन, मान्यता रहित विद्यालय सम्बन्धी अनेक बिन्दुओं से संबंधित प्रावधान प्रारूपित करता है।

सार्वजनिक पहुॅच की दृष्टि से विचार करें तो विद्यालयों की संख्या और नामांकन में वृद्धि होने से इस पर सकारात्मक असर हुआ है। वर्ष 2000–2001 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 638,738 थी, जो 2013–14 में 858,916 हो गयी। इसी अवधि में उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों की संख्या 206,269 से बढ़कर 586,796 से बढ़कर 586,796 हो गयी। राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 98 प्रतिशत ग्रामीण बसावटों के लिए 1 किमी के दायरे में प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध है। इसी अवधि में प्राथमिक स्तर पर नामांकन 113.8 मिलियन से 132.4 मिलियन गया तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर 42.8 मिलियन से 66.5 मिलियन हो गया।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. शिक्षा के अधिकार का प्रावधान किस प्रदेश में लागू नहीं होगा।

....

....

....

5. आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों को सभी निजी विद्यालयों में पहली कक्षा में प्रवेश हेतु कितने प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है?

....

....

....

7.7 सारांश

शिक्षा का सार्वजनीकरण एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें विद्यालय जाने की आयु से लेकर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को विद्यालयों में नामांकित करना तथा उनको बनाये रखने से संबंधित है, इसके लिए विद्यालयों में आवश्यक शैक्षिक सुविधाओं का होना आवश्यक है। भारत का संविधान और सर्वोच्च न्यायालय अपने क्रिया कलपामों एवं हस्तक्षेपों से प्राथमिक शिक्षा की सर्वसुलभता के प्रति कटिबद्ध है। अनेक योजनाएं भी इस दिशा में चल रहीं हैं सरकार, संविधान, सर्वोच्च न्यायालय एवं समाज की सक्रियता तथा सहयोग के परिणामस्वरूप शिक्षा के अधिकार का अधिनियम, 2009 अपने अस्तित्व में आया और इसे मूल अधिकारों की श्रेणी में शामिल किया गया। इन सभी के परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति आई है।

7.8 अभ्यास के प्रश्न

1. शिक्षा के सार्वजनीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. विद्यालयी शिक्षा के सार्वजनीकरण की प्रमुख बाधाएँ कौन–कौन सी हैं?
3. शिक्षा का सार्वजनीकरण किये जाने की क्या आवश्यकता है?
4. प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनिक किये जाने से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
5. सभी को शिक्षा उपलब्ध करासे से संबंधित कौन–कौन से उपाय किये जाने

आवश्यक है?

6. शिक्षा के अधिकार अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने किस प्रकार शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने में योगदान किया है।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षा के सार्वजनीकरण से तात्पर्य सभी बातों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और सुविधायें प्रदान करना है।
2. समुदाय की सहभागिता ।
3. 2000 – 2001 में ।
4. जम्मू कश्मीर में ।
5. 25 प्रतिशत।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. मेहता, अरूण, सी : एजूकेशश्न फार आल इन इण्डिया, जनवरी, 1, 1998।
2. वार्षिक रिपोर्ट, 2010–11, शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
3. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार।
4. चौहान, सी. पी. एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004 ।
5. भारत 2004, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
6. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (भारत का राजपत्र)
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986।

इकाई – 8 : गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 शिक्षा में गुणवत्ता एवं समानता

8.4 भौतिक समस्या

8.5 आर्थिक समस्या

8.6 शैक्षिक नीतियॉ एवं समानता

8.7 सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी असमानताएँ

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास के प्रश्न

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

8.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है, जिसकी सहायता से जीवन की गुणवत्ता और मनुष्यों में परस्पर समानता की वृद्धि की जा सकती है। जीवन की गुणवत्ता का सीधा संबंध शिक्षा की गुणवत्ता से है, जबकि समानता आवश्यक लोकतांत्रिक मूल्य है। चाहे सुविधाओं की बात की जाय, सामाजिक स्तरों पर विभिन्नता की बात की जाय, संस्कृति संबंधी अन्तरालों की बात की जाय या भाषा संबंधी समस्याओं और विवादों की बात की जाय, इन सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा के माध्यम से न्यूनतम करने की कल्पना सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। महिलाएँ समाज के कमजोर वर्ग तथा निःशक्त व्यक्तियों पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय स्तर पर बने आयोगों एवं

समितियों के द्वारा दिये गये सुझावों में गुणवत्ता और समानता के मुद्दे महत्वपूर्ण स्थान पाते रहे हैं। बालिकाएँ , समाज के कमजोर वर्ग के लोग तथा विकलांग जन एक तो शारीरिक रूप से कम सक्षम होते हैं, विद्यालयी सुविधाएं एवं पोषण की कमी, आर्थिक पिछड़ापन, रीति रिवाजों एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अलग थलग रहने की प्रवृत्ति तथा क्षेत्रीय स्थानीय भाषा का उपयोग करने के कारण यह वर्ग पिछड़ जाता है। यदि इन्हें व्यापक समेकित सुविधाएं प्रदान की जायें तो ये भी राष्ट्रीय विकास में योगदान दे सकते हैं और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा भी फलीभूत हो सकती है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. गुणवत्ता तथा समानता के मुद्दे को समझ सकेंगे।
2. भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषायी आधारां पर बालिकाओं समाज के कमजोर वर्गों तथा निःशक्त व्यक्तियों के संदर्भ में गुणवत्ता और समानता पर आधारित शैक्षिक प्रयासों से अवगत हो सकेंगे।
3. गुणवत्ता तथा समानता से संबंधित कुछ सांख्यिकी आंकडों के माध्यम से निष्कर्ष प्राप्त कर सकेंगे।
4. प्रमुख शैक्षिक नीतियों के अंतर्गत दिये गये सुझावों एवं वर्तमान स्थिति के संदर्भ में अपना मत व्यक्त कर सकेंगे।

8.3 शिक्षा में गुणवत्ता एवं समानता

विद्यालयी संख्या में प्रसार के कारण गुणवत्ता की कमी की समस्या सामने आती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस बात को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि प्रत्येक बालक एवं न्यूनतम स्तर के कौशल, ज्ञान और दक्षताओं की प्राप्ति कर सके। प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त कर चुके बालकों से यह अपेक्षा की गयी कि वास्तविक प्रासंगिक तथा प्रकार्यात्मक स्तरों पर यह गुणवत्ता परिलक्षित हो। न्यूनतम अधिगम स्तर की प्राप्ति के इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर अधिगम उपलब्धि का मूल्यांकन, किसी अंग विशेष के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर को निर्धारित करना, पुनः अभिमुखीकरण, व्यापक सतत मूल्यांकन पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा, भौतिक सुविधाओं का प्रावधान, शिक्षक प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन जैसे उपबंध किये गये। इन सबका प्रमुख

ध्यान अनुवीक्षण, मूल्यांकन एवं सुधार संबंधी निर्देशों पर केन्दित था, जिससे कि एक समानता प्राप्त हो और असमानताएं घटें।

सन 1950 में संविधान के लागू होने के पश्चात भारत में समानता एवं न्याय के नये युग का सूत्रपात हुआ। इसके मुख्य, उद्देश्य समानता, स्वाधीनता, भाईचारा तथा न्याय है। समानता 'समानता के अवसर' दर्शाती है। आजादी की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक मनुष्य, धनवान या निर्धन अथवा उच्च या निम्न पूर्ण सम्बन्धी बिना किसी भेदभाव या अन्तर के सभी को समान अधिकार प्राप्त हैं तथा सभी ने समान रूप से जन्म लिया है। यह सरकार का मुख्य कर्तव्य है कि यथा सम्भव असमानता, ऊँच नीच तथा सामाजिक भेद–भावों को कम करने का प्रयास करें। शिक्षा प्राप्त करने के लिये सभी को समान अधिकार है तथा पूर्ण आजादी है। इसलिये सभी को मानसिक उत्थान के समान अवसर दिये गये है। इसके लिये समाज के अल्पसंख्यक, पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जातियों के समुदाय को विशेष मान्यता महत्व देने की आवश्यकता है। पहाड़ों पर रहने वाले नागरिक, पिछड़े क्षेत्रों एवं सुदूर आन्तरिक क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पुस्तकों की सहायता, दोपहर का खाना, फीस माफी की सुविधा, निर्धन लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में निपुण बालकों को सभी सुविधाएँ स्कूलों में मिलनी चाहिये। प्रतिभाशाली बालकों की पहचान करने तथा उनकी शिक्षा में आने वाली आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने की आवश्यकता है। ऐसे बालकों की शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा को दूर करने पर बल दिया जाये। धनवान व्यक्ति तथा सामाजिक उत्थान में कार्यरत व्यक्तियों को ऐसे बालकों की शिक्षा में उदारता पूर्वक सहायता करनी चाहिए। सरकार को भी सभी सम्भव विधियों से सहायता करनी चाहिए। लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होना चाहिए। सब बालकों को व्यक्तिगत विकास करने का समान अधिकार है चाहे वह लड़के हों अथवा लड़कियॉ। इस प्रकार के कार्यकलापों को देश के विभिन्न समुदायों के सामाजिक तथा प्रजातान्त्रिक प्रगति हेतु लम्बी यात्रा तय करनी है और आर्थिक सामाजिक क्षेत्र में विकास करना है।

शिक्षा में गुणवत्ता के साथ–साथ समानता का होना आवश्यक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप है। प्राप्त की जाने वाली शिक्षा के संदर्भ में गुणवत्ता का आश्वासन राज्य का उत्तरदायित्व है और इसकी प्राप्ति में या इस तक पहुँच में किसी को बाधा नहीं होनी चाहिए। यदि गुणवत्ता में कोई कमी हो या सबको समान रूप से यह उपलब्ध न हो पा रही हो, तो यह राष्ट्र और समाज के लिए चिन्ता का विषय है।

8.4 भौतिक समस्या

विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं का अभाव होने पर पठन–पाठन की प्रक्रिया सुचारू रूप से नहीं चल पाती और मौसमी समस्याओं का सामना करती है। स्वाधीनता की प्राप्ति के सात दशक बीत जाने के बाद भी विद्यालयों में आधारभूत भौतिक संसाध ानों की कमी और अभाव शैक्षिक चिन्ताओं में से एक है। आज यद्यपि संख्यात्मक दृष्टि से विद्यालयों की संख्या बढ़ी है। तथापि उनमें गुणवत्तायुक्त शिक्षा का स्तर संतोषजनक नहीं है। विद्यालय का भवन, उचित संख्या में प्रशिक्षित शिक्षक, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, खेल के मैदान, पेयजल सुविधा, प्रसाधन की उपलब्धता जैसे कई बिन्दुओं पर संतोषजनक स्थिति अभी प्राप्त नहीं की सकी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना का विवरण दिया गया, जिसे 1987 में लागू कर दिया गया। इसका प्रमुख जोर सभी प्राथमिक विद्यालयों में न्यूनतम आवश्यक भौतिक संसाधन जुटाने पर था। इसके अंतर्गत कम से कम प्रत्येक विद्यालय में दो बड़े कक्ष, आवश्यक खिलौने, श्यामपट्ट, नक्शे, चार्ट तथा अन्य अधिगम सामग्री उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया। कम से कम दो शिक्षक, जिसमें एक शिक्षिका प्रत्येक विद्यालय में हो तथा संख्या बढ़ाकर कम से कम एक कक्षा के लिए एक शिक्षक अवश्य हों। इस कार्यक्रम में 'आपरेशन' शब्द का उपयोग त्वरित गति के लिए तथा ब्लैक बोर्ड शब्द का उपयोग सांकेतिक रूप से भौतिक सुविधाओं को व्यक्त करता है।

छठॉ अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण 1998 के अनुसार 1993 में 16.27 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय भवन विहीन थे। 44.23 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पेयजल की सुविधा थी और 18.93 प्रतिशत विद्यालयों में शौचालय थे, जिनमें 8.66 प्रतिशत विद्यालयों में छात्राओं के लिए अलग शौचालय थे। बालिकाएं समाज के कमजोर वर्ग के लोग और अक्षम इससे अधिक प्रभावित हुए।

8.5 आर्थिक समस्या

विद्यालयों में भौतिक संसाधनों की उपलब्धता के लिए आवश्यक धन का प्रबंध एवं उनके अनुरक्षण व्यय पर ठीक से ध्यान न देना एक गंभीर समस्या है। एक बार धन का आवंटन हो जाने के उपरांत यदि रख रखाव हेतु आवश्यक धन न मिले, तो पूर्व सृजित संसाधनों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। अतः आवर्ती व्यय के

रूप में धन का प्रबंध सतत आवश्यकता है। धन की समस्या के कारण ही आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के चरणबद्ध रीति से लागू करने की बात की गई। इसी समस्या के कारण 1989–90 तक यह योजना सभी ब्लाकों में लागू नहीं पायी।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना कब लागू की गयी ?

....

....

2. आपरेशन ब्लैक बोर्ड शब्द क्या व्यक्त करते है?

....

....

....

8.6 शैक्षिक नीतियॉं एवं समानता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में समानता के लिए शिक्षा संबंधी सुझाव दिये गये। शैक्षिक सुविधाओं की समानता के लिए सुझावों में कहा गया कि – 1. शिक्षा को महिलाओं की समानता के लिए काम करना है। विकास को गति देने के लिए नवीन पाठ्यक्रम के माध्यम से मूल्यों का विकास, पुस्तकों शिक्षकों का प्रशिक्षण एवं अभिमुखीकरण आवश्यक बताया गया। निर्णयकर्ताओं एवं प्रशासकों के साथ–साथ शैक्षिक संस्थाओं को भी साथ–साथ काम करना आवश्यक है। महिलाओं के लिए उच्च प्राथमिकता के आधार पर साक्षरता अभियान प्राथमिक, व्यावसायिक, तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों हेतु प्रयास आवश्यक है। महिलाओं की गैर परंपरागत क्षेत्रों के साथ–साथ परंपरागत क्षेत्रों में भागीदारी भी इनके स्तर सुधार हेतु आवश्यक है।

अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को शिक्षित करने के लिए इसमें अनेक प्रावधान किये गये, जिससे कि समानता में वृद्धि हो। नीति में प्रत्येक स्तर पर समानता की प्राप्ति के लिए सुझाव दिये गये। इसमें प्रत्येक क्षेत्र तथा आयामों को ध्यान में रखा

गया। ग्रामीण पुरूष, ग्रामीण महिला, शहरी पुरूष, शहरी महिला एवं पूर्व मैट्रिक स्तर पर कम आय वाले परिवारों के बच्चों को नियमित विद्यालय भेजने के लिए वृत्तिक सहायता देने की बात तब तक की गई जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु न प्राप्त कर लें। अनुसूचित जाति के शिक्षकों की भर्ती, निरंतर सूक्ष्म नियोजन, नई विधियों एवं नवाचारों के प्रमाणन, विद्यालय में रोके रखना (अवधारणा) तथा पाठ्यक्रम को पूर्ण करना, विद्यालय भवन की स्थिति, बालबाड़ी तथा प्रौढ़शिक्षा के केन्द्र, जिला मुख्यालयों पर छात्रावास सुविधा के माध्यम से समानता की स्थापना का प्रावधान किया गया।

इसी प्रकार अनुसूचित जनजातियों को प्राथमिकता पर रखते हुए नये प्राथमिक विद्यालय खोलना, विद्यालय भवनों की निर्माण करना, आवासीय तथा आश्रम प्रकार के विद्यालय खोलना, आंगनबाड़ी, अनौपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्र खोलकर इनको समान स्तर पर लाने का सुझाव दिया गया। सामान्य वित्त के अतिरिक्त एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.जी.पी. के तहत धन उपलब्ध कराने की बात की गई। जनजातीय क्षेत्रों के युवकों को प्रशिक्षित करके उन्हीं क्षेत्रों में नियुक्त करना, पाठ्यचर्या का विकास तथा जनजातीय भाषाओं में इनको उपलब्ध कराना तथा साथ ही क्षेत्रीय भाषा से ऊपर उठाने का प्रयास करना, प्रोत्साहन एवं छात्रवृत्ति देना विशेषतः तकनीकी, व्यावसायिक एवं अनुषंगी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों एवं उपचारी शिक्षण विधियों का उपयोग करके समानता की वृद्धि की जा सकती है।

आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में 7 मई 1990 को एक समिति का गठन किया गया, जिसने 28 दिसम्बर 1990 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समानता और सामाजिक न्याय के अंतर्गत बालिकाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और समाज के कमजोर वर्गों के संबंध में सुझाव दिये गये। बालिकाओं की शिक्षा व समानता के संबंध में, क्षेत्रीय असमानताओं के संबंध में, पाठ्यक्रम और लिंग भेद के संबंध में, संप्रेषण के प्रकारों की भूमिका के संबंध में, व्यावसायिक शिक्षा के संबंध में, शिक्षक प्रशिक्षण के संबंध में, महिला शिक्षा में शोध एवं विकास के संबंध में, अध्ययन के पाठ्यक्रम तथा प्रसार सेवा के संबंध में, संसाधनों एवं व्यवस्था प्रबंधन के संबंध में, सुझाव दिये गये ताकि शिक्षा के संबंध में महिलाएं भी समान स्तर प्राप्त कर सकें।

प्रोत्साहन एवं पहुँच, क्षमता में सुधार एवं शैक्षिक वातावरण का निर्माण, अनुसूचित जाति जनजाति शिक्षकों की भर्ती, समान विद्यालय प्रणाली और नवोदय विद्यालयों की सहायता से समानता लाने की बात की गई। विकलांगों के लिये भी समिति ने शिक्षा संबंधी आवश्यकता का उल्लेख किया।

कार्य योजना, 1992 में नई शिक्षा नीति की समीक्षा के उपरांत आवश्यक रूप से तीन बड़े कक्षों, पुस्तकालय और अधिगम सामग्री के जुटाने की बात की गयी। तीन शिक्षक रखने की बात की गई। और योजना को उच्च प्राथमिक स्तर तक बढ़ाने का संकल्प व्यक्त किया गया। इसके लिए धन का प्रबंध जवाहर रोजगार योजना के तहत किया गया। इसमें कुछ राज्यों से वित्तीय अनियमितता की शिकायतें भी आई और योजना की प्रगति भी धीमी रही। प्रतिबद्धता की कमी और उदासीनता ने योजना की सम्पूर्ण सफलता पर प्रश्न खड़े किये।

8.7 सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी असमानताएँ

इन आधारों पर भी बालिकाएं, समाज के कमजोर वर्ग और अक्षम लोग शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े रहे। शिक्षा के प्रति उदासीनता, अरूचि और अलाभकर वर्ग के रूप में इनकी शिक्षा को अभिभावकों द्वारा भी उपेक्षित किया जाता रहा। अंधविश्वास और रूढ़ियों के कारण सभ्य समाज का संपर्क इनसे कम रहा है। जिसके कारण सामाजिक और सांस्कृतिक अपबंधन का शिकार यही वर्ग रहा है।

क्षेत्रीय और प्रान्तीय भाषाएं ही प्रमुखतः जानने के कारण यह वर्ग पिछड़ जाता है और उन्हें अपनी भाषा में पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप वे वास्तविक भाव तथा अर्थ नहीं समझ पाते और शिक्षा के प्रति अरूचि उत्पन्न हो जाती है। जो असफलता का कारण बनती है। भाषा की समस्या के कारण पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत सामग्री अधिगम के योग्य नहीं हो पाती। इससे ज्ञान और अधिगम का उचित एवं समान स्तर प्राप्त नहीं हो पाता।

मनोशारीरिक असमानताओं के कारण सभी बालक एक समान नहीं होते हैं। जिसके कारण प्रत्येक बालक दूसरे बालक से व्यक्तिगत रूप से भिन्न होता है। इनमें अधिकांशतः सामान्य बालक व कुछ विशिष्ट बालक होते हैं। विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से इतना अधिक भिन्न होते हैं कि इनको अलग से पहचाना जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निःशक्त जनों की शिक्षा का भी प्रावधान किया गया। जो बच्चे गतिक आधार पर और कम विकलांग है, उनको अन्य सामान्य बच्चों के साथ शिक्षित करने की सिफारिश राष्ट्रीय शिक्षा नीति में की गई। जिला स्तर पर विशिष्ट विद्यालयों की छात्रावास के साथ स्थापना, निःशक्त जनों के लिए व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षकों को प्रशिक्षण तथा स्वैच्छिक प्रयासों को बढ़ावा देने की सिफारिश की

गयी ताकि समानता की प्राप्ति हो सके।

वर्तमान समय में जब विश्व में अवसर की समानता एवं समता के लिए शिक्षा की मांग हो रही है तब विकलांग बालकों के लिए शिक्षाविद अलग शिक्षा देने के स्थान पर सामान्य बालकों के साथ शिक्षा देने पर बल दे रहे हैं, जिससे शिक्षा में सभी को समता और अवसर की समानता प्राप्त हो सके, यह लोकतंत्र की अनिवार्यता ही नहीं, जिम्मेदारी भी है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता समिति कबं गठित की गयी ?

....

....

....

4. नई शिक्षा नीति की समीक्षा कब की गयी ?

....

....

....

8.8 सारांश

शिक्षा की गुणवत्ता और प्राप्ति में समानता का मुद्‌दा लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रमुख स्थान पाता है। संसाधनों के आधार पर, आर्थिक स्थिति के आधार पर, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार पर तथा भाषायी आधार पर समान गुणवत्ता वाली शिक्षा समानता के साथ सभी को प्राप्त हो यही उद्‌देश्य होना चाहिए। समाज के कमजोर वर्ग, बालिकाओं तथा अपंग लोग भी इससे अछूते नही रहने चाहिए। आपरेशन ब्लैक बोर्ड, वृत्तिक सहायता , मध्याह्न भोजन, आंगनबाड़ी एवं बालवाड़ी की स्थापना, विशेष विद्यालय, समान पाठ्‌यक्रम, उपचारी शिक्षण, अनौपचारिक केन्द्र,

प्रशिक्षण, विद्यालय में रोके रखने के उपाय जैसे कई ठोस कदम उठाये गये हैं तथा विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने इसके लिए जो प्रावधान किये हैं। उन पर अमल करने से गुणवत्ता युक्त शिक्षा सभी को समानता के साथ प्राप्त होगी, चाहे वे बालिकाएं हो, समाज का कमजोर वर्ग हो या अपंग / अक्षम व्यक्ति हों।

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा में गुणवत्ता तथा समानता के मुद्दे का क्या अर्थ है? वर्तमान समय में अपने देश में इसकी आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
2. सामाजिक तथा आर्थिक आधार पर गुणवत्ता और समानता के प्राप्ति के लिए विभिन्न आयोगों एवं समितियों के सुझावों का विवरण दीजिए।
3. बालिका शिक्षा के संदर्भ में किस प्रकार गुणवत्ता और समानता की प्राप्ति हो सकती है? आयोगों एवं समितियों के द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर अपने विचार दीजिए।
4. समाज के कमजोर वर्गों तथा निःशक्त जनों को गुणवत्ता और समानता पर आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए किये गये उपायों की चर्चा कीजिए।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1987 में ।
2. आपरेशन शब्द का उपयोग त्वरित गति के लिए तथा ब्लैक बोर्ड शब्द का उपयोग सांकेतिक रूप में भौतिक सुविधाओं को व्यक्त करता है।
3. 7 मई, 1990
4. 1992 में ।

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. मेहता, अरूण, सी : एजूकेशन फार आल इन इण्डिया, जनवरी 1, 1998
2. वार्षिक रिपोर्ट, 2010–11, शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ।
3. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार ।

4. चौहान, सी.पी.एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004।

5. भारत, 2004, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ।

7. सिंह, सुमित्रा एवं मैथिली रमण प्रसाद सिंह, शिक्षा के विविध आयाम, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा 2004 ।

8. गुप्ता, आर.पी. तथा ए. हुसैन इश्यूज इन इंडियन एजूकेशन, राधा पब्लिकेशन्स, 1998, नई दिल्ली।

इकाई – 9 : समान शैक्षिक अवसर एवं विद्यालयों में असानता

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

9.4 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता

9.5 विद्यालयों में असमानता

9.6 शैक्षिक आयोग एवं अवसरों की समानता

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 संदर्भ ग्रन्थ

9.1 प्रस्तावना

एक लोकतांत्रिक समाज बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता का पक्षधर होता है। शिक्षा को सभी के लिए उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी कल्याणकारी राज्य का प्रमुख आधार है। राष्ट्र की सम्पूर्ण प्रगति में सभी की समान भागीदारी इसी आधार पर सुनिश्चित होती है। अपने विकास के लिए राज्य द्वारा प्रदत्त सभी सुविधाएं समान रूप से सभी को प्राप्त हों, इसके लिए संसाधनों का समान वितरण आवश्यक है। समुदायों के मध्य आर्थिक आधार पर असमानता एक सार्वकालिक सामान्य विशेषता है। प्रायः सामाजिक गतिशीलता की कमी के कारण अवसरों में समानता नहीं आ पाती है। इसका मुख्य कारण गरीबी है। मानव को एक पूंजी के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए विद्यालयीकरण को पारिवारिक पृष्ठभूमि से नहीं वरन् व्यक्तिगत प्रयासों से जोड़कर देखा जाना अधिक उचित है। शैक्षिक अवसरों की

समानता लोकतंत्र की रक्षा, व्यक्तिगत विकास, वर्ग भेद की समाप्ति, सामाजिक उन्नयन और राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। यहीं पर विद्यालयी असमानता को बढ़ाने वाले कारकों में प्रमुखतः विभिन्न प्रान्तों के मध्य शिक्षा की असमानता, प्रांत विशेष में शिक्षा की असमानता, शिक्षण संस्थाओं के वितरण में असमानता, बालक–बालिकाओं के शिक्षण संस्थानों में असमानता, एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय की असमानता, बालक–बालिकाओं की शिक्षा में असमानता, विद्यालयी स्तर पर बच्चे के साथ व्यवहार में असमानता, शैक्षिक पर्यावरण की असमानाता इत्यादि प्रमुख हैं ।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. शैक्षिक अवसरों की समानता तथा विद्यालयी शिक्षा की प्राप्ति में आने वाली समस्याओं का अर्थ बता सकेंगे।
2. शैक्षिक अवसरों में समानता तथा विद्यालयों में असमानता के कारणों पर चर्चा कर सकेंगे।
3. शैक्षिक आयोगों द्वारा अवसरों के समानता के संदर्भ में दिये गये सुझावों से अवगत हो सकेंगे।

9.3 शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

भारतीय गणतंत्र लोकतांत्रिक, सामाजिक तथा धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्तों पर आधारित है। समानता इसका एक महत्वपूर्ण आधार है। 'समानता' शब्द से तात्पर्य उन समान परिस्थितियों से है, जिनमें सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अन्त हो तथा समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। प्रो0 लास्की के शब्दों में "समानता का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए या सभी को समान वेतन दिया जाये। यदि पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ के समान कर दिया जायेगा, तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए समानता का अर्थ है कि कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और उन्नति के समान अवसर रहें।

इस प्रकार समान शैक्षिक अवसर का तात्पर्य शिक्षा की एक ऐसी पद्धति को विकसित करने से है, जिससे समाज के पिछड़े कम विकसित, सुविधाओं से वंचित, कमजोर वर्गों तथा गरीब व्यक्तियों को शिक्षा की वे सभी सुविधाएं समान रूप से उपलब्ध हो सकें, जो समाज के साधन सम्पन्न व्यक्तियों को प्राप्त हैं। राज्य द्वारा देश के सभी बच्चों के लिए स्थान, जाति, धर्म अथवा लिंग आदि किसी भी आधार पर भेद किये बिना एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निशुल्क रूप से सुलभ कराना और उनकी इस शिक्षा प्राप्ति में आने वाली बाधाओं का निवारण करना आवश्यक है। शिक्षा के समान अवसरों का अर्थ सबके लिए समान नीति से है, सबको समान बनाने में नहीं है, क्योंकि प्रत्येक बालक अपनी शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ही प्रदत्त अवसरों का लाभ उठाता है।

वास्तर में शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है राज्य द्वारा सभी बच्चों के लिए स्थान, जाति, धर्म अथवा लिंग या अन्य किसी भी आधार पर भेद किये बिना एक निश्चित स्तर की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा सुलभ कराना और इसकी प्राप्ति में आने वाली समस्याओं का निवारण करना। इसके साथ ही देश के सभी बच्चों और युवाओं को इसके आगे की शिक्षा उनकी रूचि, योग्यता, अभिक्षमता और आवश्यकता के अनुरूप सुलभ कराना और इस दिशा में आने वाली कठिनाइयों का निराकरण करना।

9.4 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता

वर्तमान समय में जागरूकता की वृद्धि के परिणामस्वरूप शिक्षा को मानव का मूल अधिकार स्वीकार कर लिया गया है। इसके अभाव में सम्पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था अर्थहीन है। लोकतंत्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर है, जिनके योग्य और क्षमतावान होने का आधार शिक्षा है। अतः देश के प्रत्येक नागरिक का शिक्षित होना आवश्यक है। अत्यधिक जन दबाव और संसाधन की कमी के कारण विशेषतः अपने देश में सभी को योग्य स्तर की आवश्यक शिक्षा उपलब्ध कराने की राह में कई बाधाएं हैं। अभी भी गरीबी के दुष्चक्र को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सका है और गाँवों की बहुसंख्यक आबादी और रेगिस्तानी, पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों में रहने वाली जनता शैक्षिक अवसरों का समान लाभ नहीं उठा पा रही है। इसके लिए आवश्यक है कि उपेक्षित निर्धनों तथा दूर दराज के क्षेत्रों मे रहने वाले लोगों को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करायी जाए, जिससे कि उन्हें लोकतांत्रिक मूल्यों का ज्ञान हो, सोचने समझने तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो।

शैक्षिक अवसरों की समानता व्यक्तिगत विकास के लिए भी आवश्यक है। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास का स्वतंत्र अवसर प्राप्त करता है। अत्यधिक आबादी और जनघनत्व तथा निर्धनता के कारण पिछड़ी हुई जनसंख्या को विकास का अवसर प्रदान करने के लिए समान शैक्षिक अवसर तथा सुविधाएं प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है । कुल मिलाकर शैक्षिक अवसरों की समानता प्राप्ति की प्रमुख बाधाओं में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या, संसाधनों की कमी, अधिकांश लोगों का मानसिक पिछड़ापन और निर्धनता तथा जनसंख्या के बड़े हिस्से का दुर्गम क्षेत्रों में निवास है।

शैक्षिक अवसरों की समानता, वर्गभेद की समाप्ति में सहायक होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सामाजिक और आर्थिक आधार पर भेद नहीं किया जा सकता। यदि सभी वर्गों के बच्चों और युवकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और सुविधाएं उपलब्ध करा दी जाए, तो समाज से वर्ग आधारित भेद समाप्त हो सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 29 में भी अस्पष्ट किया गया है कि राज्य द्वारा पोषित या आर्थिक सहायता प्राप्त किसी भी संस्था में, किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जायेगा।

शैक्षिक अवसरों की समानता सामाजिक उन्नयन के लिए भी आवश्यक है। इससे सम्पूर्ण राष्ट्र में समरस समाज की भावना का उदय होता है, जिसका आधार सभ्यता और सुसंस्कृति होते हैं। जब तक देश के प्रत्येक नागरिक को एक आवश्यक स्तर तक शिक्षित नहीं किया जाता, तब तक समाज का सम्पूर्ण उन्नयन सम्भव नहीं है।

शैक्षिक अवसरों की समानता किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास को सुदृढ़ आधार देती है। यह मानव को उत्पादक मानव संसाधन के रूप में परिवर्तित करती है। इससे मनुष्य का ज्ञान विकसित और संसाधित होता है। एक राष्ट्र की उत्तम शिक्षा व्यवस्था आर्थिक विकास के नये द्वार खोलती है। आवश्यकता इस बात की है, जिन लोगों तक शिक्षा की पहुँच नहीं हो पा रही है, उन तक शिक्षा को पहुँचाया जाय और उनकी क्षमताओं का उपयोग राष्ट्र के आर्थिक विकास में किया जाय।

9.5 विद्यालयों में असमानता

हाल के वर्षों में शैक्षिक अवसरों की समानता और विद्यालय जाने के मध्य संबंधों पर अध्ययन किये गये हैं, जिनमें पीढ़ियों के मध्य शिक्षा के प्रति आग्रह पाया

गया है।

कम से कम दो कारण ऐसे हैं, जिनमें अवसरों की असमानता आती है। पहला वह है जिसमें व्यक्तिगत नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियॉं हैं और दूसरा वह है, जिनके अन्तर्गत सम्मिलित होने के लिए शर्ते लागू होती हैं। माता–पिता की शिक्षा का असर सर्वाधिक होता है। राज्यों तथा क्षेत्रों के मध्य अवसरों की असमानता काफी व्यापक है। अनेक राज्यों ने अपने स्तर पर कार्यक्रमों का संचालन करके शैक्षिक अवसरों की असमानताओं को कम करने का प्रयास किया हैं शिक्षा के क्षेत्र में निवेश बढ़ाकर असमानता को कम करने का प्रयास किया जाता रहा है।

1. किसी क्षेत्र में बच्चों के लिए विद्यालय और महाविद्यालयों की संख्या आवश्यकता से अधिक, तो कहीं आवश्यकता से बहुत कम और किसी–किसी क्षेत्र में बिल्कुल विद्यालय ही नहीं हैं। किसी क्षेत्र में सरकारी और निजी दोनों प्रकार के विद्यालय और महाविद्यालय हैं और कहीं किसी भी प्रकार के नहीं हैं। स्थान विशेष में, जो विद्यालय है उनके भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री और शिक्षकों में बड़ी असमानता है। किन्हीं विद्यालयों में सब कुछ उपलब्ध है और किन्हीं में कुछ भी उपलब्ध नहीं है। निजी विद्यालय, सरकारी विद्यालय और पब्लिक विद्यालयों में तो बहुत अन्तर है। सितम्बर 2009 में सरकार ने पूर्व शिक्षा सचिव अनिल बोर्डिया की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसमें अप्रैल, 2010 में अपने प्रतिवेदन में बताया कि समानता का आशय केवल समान अवसर से नहीं है, वरन ऐसी परिस्थितियों का निर्माण है, जिसमें समाज का वंचित वर्ग, बच्चे, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों, मुस्लिम अल्पसंख्यक, भूमिहीन कृषि श्रमिक एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चे इस सुविधा का लाभ उठा सकें।

2. विभिन्न प्रान्तों में बंटे हुए अपने देश के विद्यालयों में व्यापक स्तर पर असमानता पायी जाती है। वैसे तो पूरे देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार 10+2+3 संरचना लागू है, परन्तु वास्तव में दस वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या का पालन नहीं किया गया है,जिसमें त्रिभाषा सूत्र और कार्यानुभव अथवा समाजोपयोगी उत्पादक कार्य अथवा कार्य शिक्षा की चर्चा की गयी है। प्रांतीय सरकारों ने इन्हें विभिन्न स्वरूपों में लिया है। कुछ प्रान्तों में आंग्ल भाषा को अनिवार्य किया गया है और +2 स्तर पर भी अलग व्यवस्था है। स्नातक स्तर +3 पर विश्वविद्यालयों को यद्यपि समान स्वायत्तता मिली है। प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा के शुल्कों में भी अंतर है। उदाहरण के लिए कश्मीर में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है और उत्तर प्रदेश में कक्षा 8 तक की बच्चों की शिक्षा निःशुल्क है और बालिकाओं की शिक्षा स्नातक स्तर तक निःशुल्क है।

3. प्रान्तीय स्तर पर भी विभिन्न क्षेत्रों में अंतर पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर तक ही विद्यालयी शिक्षा उपलब्ध है और जहां कहीं माध्यमिक स्तर की शिक्षा दी जा रही है, उसका स्तर नगर के माध्यमिक विद्यालयों द्वारा दी जा रही शिक्षा की तुलना में कुछ निम्न स्तर की है। यह अंतर महानगरों और ग्रामीण अंचलों के शेक्षिक पर्यावरण के संदर्भ में बहुत अधिक है।

4. किन्हीं क्षेत्रों में बच्चे के लिए विद्यालयों और महाविद्यालयों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, तो कहीं आवश्यकता से बहुत कम है और कहीं बिल्कुल नहीं है। किसी क्षेत्र में सरकारी और गैर सरकारी दोनों प्रकार के विद्यालय और महाविद्यालय हैं और कहीं इनकी शून्यता या न्यूनता है। उच्च स्तर के महाविद्यालय और विश्वविद्यालय प्रायः राजनैतिक अथवा जन दबाव के आधार पर स्थापित किये जाते हैं।

5. अपने देश में प्राथमिक और उच्च स्तर पर सह–शिक्षा की व्यवस्था है, परन्तु माध्यमिक स्तर पर अलग–अलग विद्यालय हैं। अधिकतर प्रांतों में बालिकाओं के विद्यालयों की संख्या कम है। पाठ्यक्रम संबंधी अन्तर भी देखने को मिलता है। यह भेदभाव शुल्क के संबंध में भी स्पष्टतः पाया जाता है।

6. यह भी अनुभव किया जाता है कि एक क्षेत्र विशेष में भी स्थित शिक्षण संस्थाओं में भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, शिक्षण सामग्री एवं शिक्षकों के स्तर पर व्यापक असमानता है। कुछ विद्यालयों में यह सबकुछ उपलब्ध है और कुछ में इनमें से कुछ या कुछ भी नहीं सुलभ है। इनकी कार्य प्रणाली में भी अंतर है। निजी विद्यालय सरकारी और पब्लिक विद्यालयों में बहुत अंतर पाया जाता है।

7. अपने देश में निजी विद्यालय प्रायः जाति और धर्म के आधार पर खोले जाते हैं और इनमें शिक्षकों की नियुक्ति भी इसी आधार पर की जाती है। यद्यपि धीरे–ध ीरे इस दिशा में गुणवत्ता को ध्यान में रखकर कार्य किया जा रहा है तथापि जिन प्रान्तों में शिक्षकों की नियुक्ति सरकारी स्तर पर हो रही है वहां संबंधों या अन्य आध ारों पर नियुक्ति के मामले समय–समय पर आते हैं। ऐसी स्थिति में समान और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

8. विद्यालयों में शैक्षिक पर्यावरण की असमानता भी पायी जाती है। कुछ बच्चे निम्न आर्थिक, सामाजिक एवम् हीन परिस्थितियों से विद्यालयों में आते हैं और कुछ मध्यम अथवा उच्च वर्ग से संबंध रखते हैं। स्पष्ट रूप से निम्न वर्ग के बच्चों को पढ़ने

के लिए समान सुविधाएं और स्थान उपलब्ध नहीं हैं, जबकि दूसरे वर्ग के लिए यह सब सुलभ है। नई शिक्षा नीति, 1986 के अंतर्गत स्थापित नवोदय विद्यालयों ने इस असमानता को दूर करने का प्रयास किया है, परन्तु यह अपर्याप्त है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. शैक्षिक अवसरों की समानता का क्या अर्थ है ?

....

....

2. प्रायः निजी विद्यालय किस आधार पर खोले जाते हैं ?

....

....

9.6 शैक्षिक आयोग एवं अवसरों की समानता

सन 1952–53 में मुदालियर आयोग ने अवसरों की समानता को बढ़ाने के लिए बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया। निम्न प्रांथमिक स्तर कोठारी आयोग ने कामन स्कूलों की स्थापना का सुझाव दिया तथा साथ ही पड़ोसी विद्यालयों को स्थापित करने की बात की, ताकि अवसरों की समानता में वृद्धि हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने कामन स्कूलों की स्थापना का प्रस्ताव किया। शिक्षा में अवसरों की समानता को बढ़ाने के लिए चट्टोपाध्याय समिति ने विद्यालय संकुलों की स्थापना का प्रस्ताव किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी कामन स्कूलों तथा विद्यालय संकुलों का प्रस्ताव किया गया। इसमें अनौपचारिक शिक्षा पर भी पर्याप्त बल दिया गया ताकि विद्यालय छोड़ने की दर कम हो सके और कारखानों में काम करने वाले श्रमिक तथा युवा किसान एवं महिलाएं शिक्षा के दायरे में आ सकें।

सबसे पहले कोठारी आयोग ने शैक्षिक अवसरों की समानता को स्थापित करने के लिए अपने सुझाव दिये, जिसके अन्तर्गत कक्षा 1 से कक्षा 8 तक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क दो पंचवर्षीय योजनाओं मे बनाना, प्राथमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों, लेखन

सामग्री और मध्याह्न भोजन निःशुल्क देना; पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था तथा कबीले के बच्चों के लिए आवासीय आश्रम विद्यालय खोलना; मंद बुद्धि एवं विकलांग बालकों के लिए अलग से विद्यालय खोलना और इनमें विशेष प्रशिक्षित शिक्षको की नियुक्ति करना; माध्यमिक और उच्च शिक्षा के निर्धन छात्रों को शुल्क मुक्त करना और इस स्तर के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पुस्तक अधिकोष योजना लागू करना; माध्यमिक एवम् उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले निर्धन एवं योग्य छात्रों को पुस्तक खरीदने के लिए आर्थिक सहायता देना; छात्रवृत्तियों की समुचित व्यवस्था करना, व्यवसायिक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सामान्य की अपेक्षा अधिक छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना, उच्च स्तर पर निर्धन एवं मेधावी छात्रों को विशेषतः विज्ञान तथा तकनीकी वर्ग के छात्रों को ऋण छात्रवृत्तियॉ देना; दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले छात्रों को वाहन एवम छात्रावास सुविधा देना; महिलाओं को पुरूषों की भॉति सभी प्रकार की शिक्षा सुलभ कराना और इनके मध्य शैक्षिक प्रसार के बड़े अन्तर को दूर कराना आवश्यक बताया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में कोठारी आयोग की सिफारिशों के आधार पर कई घोषणाएं की गई। इनमें ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में अधिक विद्यालय और कालेज खोलना तथा इन क्षेत्रों के बच्चों एवं युवाओं को सभी स्तरों की शिक्षा सुलभ करना; सामान्य विद्यालय प्रणाली (एक क्षेत्र में रहने वाले सभी वर्गो के बच्चे समान विद्यालय में एक साथ पढ़ेंगे) लागू करना; पिछड़े, अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति,जनजाति एवं कबीले के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था करना और आवश्यक आर्थिक सहायता देना; मंद बुद्धि और विकलांगों के बालकों के लिए अलग विद्यालय खोलना; बालिका शिक्षा का प्रसार; बालिका विद्यालयों में निम्न और निर्धन वर्ग के बच्चों हेतु स्थान आरक्षण और निःशुल्क शिक्षा; शिक्षा के सभी स्तरों पर निम्न वर्ग के बच्चों को आर्थिक सहायता; सभी स्तरों पर छात्रवृत्ति में वृद्धि और विशेष योग्यता और क्षमता वाले छात्रों के लिए विशेष दात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना प्रमुख थीं

इन सुझावों पर सम्पूर्ण अमल के पूर्व ही जनता दल की सरकार बनने के कारण उसने 1979 में अपनी शिक्षा नीति घोषित की, जिसमें कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को प्रथम वरीयता दी गयी और प्रौढ़ शिक्षा को दूसरे स्थान पर रखा गया। गरीबों एवम् हीन आर्थिक दशा वाले लोगों को शिक्षित करने की बात की गयी।

1986 में नयी शिक्षा नीति का प्रस्ताव सामने आया, जिसमें एक निश्चित कार्य योजना के अन्तर्गत कक्षा 1 से कक्षा 5 तक की शिक्षा को प्रथम चरण में तथा कक्षा

6 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को द्वितीय चरण में अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने की बात की गयी। पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति, जनजाति तथा कबीले और उपेक्षित वर्ग के बच्चे को शिक्षा की विशेष व्यवस्था करने की बात की गयी। साथ ही आर्थिक सहायता और विशेष छात्रवृत्ति को उपलब्ध कराने की संस्तुति की गयी। मंदबुद्धि एवं विकलांग बालकों के लिए अलग से विद्यालय खोलने माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालय खोलने और इनमें उपेक्षित क्षेत्रों और वर्गों के मेधावी छात्रों की आवासीय निःशुल्क शिक्षा देने की बात की गयी। पब्लिक विद्यालयों में तथा अधिक शुल्क लेने वाले महाविद्यालयों में निर्धन तथा मेधावी छात्रों के लिए स्थान आरक्षित करने और निःशुल्क शिक्षा देने की बात की गयी। इसके अतिरिक्त लिंग के आधार पर भेदभाव की समाप्ति और पुरूषों की भाँति किसी भी प्रकार की शिक्षा जैसे– विधि, आयुर्विज्ञान, विज्ञान, तकनीकी और प्रबंध की उपलब्धता महिलाओं के लिए भी समान रूप से रखने की बात की गयी।

इन सुझावों के परिणामस्वरूप देश में शैक्षिक अवसरों की समानता पर आगे बढ़ने का वास्तविक और आधुनिक क्रम प्रारम्भ हुआ।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. किस शिक्षा नीति में गति निर्धारित विद्यालय खोलने की सिफारिश की?

....

....

....

4. कोठारी आयोग का गठन कब किया गया ?

....

....

....

9.7 सारांश

शैक्षिक अवसरों की समानता एक प्रमुख लोकतांत्रिक मूल्य है। समानता का तात्पर्य समाज के सभी वर्गों का बिना किसी भेदभाव के एक समान स्तर की शिक्षा प्राप्त

करने से है। अत्यधिक जनसंख्या और संसाधनों की कमी के कारण योग्य स्तर की शिक्षा अभी भी सबको प्राप्त नहीं हो पा रही है, जबकि सामाजिक और व्यक्तिगत विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। विद्यालय के स्तर पर भी यह असमानता व्याप्त है। यह असमानता विभिन्न प्रांतीय स्तरों के साथ–साथ जिला स्तर पर भी एक समान रूप से पायी जाती है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के संदर्भ में भी यह असमानता देखने को मिलती है। निजी एवं सरकारी विद्यालयों के स्तर पर भी ऐसी असमानता का अनुभव किया जाता है। इन असमानताओं को दूर करने के लिए शैक्षिक आयोगों एवं समितियों ने अनेक उपयोगी सुझाव दिये।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. शैक्षिक अवसरों की समानता का क्या अर्थ है? वर्तमान समय में यह क्यों आवश्यक है?
2. राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालयों के मध्य व्याप्त असमानता के क्षेत्रों एवं कारणों की व्याख्या कीजिए।
3. शैक्षिक अवसरों की समानता के संदर्भ में कोठारी आयोग की संस्तुतियों पर टिप्पणी कीजिए।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा समान शैक्षिक अवसर तथा विद्यालयों में असमानता को समाप्त करने के संदर्भ में दिये गये सुझावों पर अपना मत व्यक्त कीजिए।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है राज्य द्वारा उसके सभी बच्चों के लिए स्थान, जाति, धर्म, अथवा लिंग या अन्य किसी भी आधार पर भेद किये बिना एक निश्चित स्तर की अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा सुलभ कराना ।
2. जाति और धम्र के आधार ।
3. 1986 की नई शिक्षा नीति ने ।
4. 1968 में ।

9.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. चौहान, सी.पी.एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004 ।

2. **असदुल्लाह एम. एन. और जी. यालोन्त्जकी,** (इन इक्वैलटी आफ एजूकेशनल आपरचुनिटी इन इडिया .....), रिचर्स पेपर, अगस्त, 2010, आई. जेड. ए. जर्मनी।

3. इश्यूज इन इंडियन एजूकेशन, राधा पब्लिकेशन, 1998, नई दिल्ली।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ।

5. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, लाल रमन बिहारी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ 2010–11 ।

खण्ड : चार

शैक्षिक आयोग एवं नीतियाँ

इकाई - 10 5

शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई - 11 16

राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियाँ : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992) , निःशक्त जनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई - 12 35

कार्यक्रम, योजनाएं , अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियाँ

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्रा	आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डा0 रामेन्द्र गुप्ता	एसोसियएट प्रोफेसर, डी0वी0 कालेज, उरई जालौन (इकाई-1,2,3)
प्रो0 सुमित्रा सिंह	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई- 7,8,9,10,11,12)
प्रो0 सुषमा पाण्डे	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई-4,5,6)
डा0 बुद्ध प्रिय	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (इकाई- 13,14,15)

सम्पादक

प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0उषा मिश्रा	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-UP-978-93-83328-04-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन -उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02 : समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड–एक शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई–3 भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

खण्ड–दो विविधता का अवबोध

इकाई–4 विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई–5 खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई–6 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

खण्ड–तीन समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे
शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई–8 गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे – भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्तजनों के संदर्भ में

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

खण्ड–चार शैक्षिक आयोग एवं नीतियॉं

इकाई–10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियॉं : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992), निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई–12 कार्यक्रम, योजनाऍं, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियॉं

खण्ड–पॉंच शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियॉं

इकाई–13 शिक्षा की चुनौतियॉं और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई–14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई–15 सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

खंड–चार – शैक्षिक आयोग एवं नीतियाँ

खण्ड परिचय

शिक्षा से संबंधित आयोगों ने विकलांगों के संदर्भ में अनेक सुझाव दिये इनके आधार पर विकलांगों से संबंधित नीतियों एवं प्रावधानों का निर्माण समय–समय पर किया गया।

इकाई–10 इसके अन्तर्गत शिक्षा से संबंधित संविधान के अन्तर्गत की गयी व्यवस्थाओं एवम् अधिनियमों की चर्चा की गयी है।

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, अक्षमता से संबंधित विभिन्न आयोगों की संस्तुतियों, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 कार्य योजना, 1992 और सक्षम व्यक्तियों से संबंधित राष्ट्रीय नीतियों को सम्मिलित करती है।

इकाई–12 इसके अन्तर्गत निःशक्त जनों से संबंधित कार्यक्रमों , योजनाओं, अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों एवं नीतियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई – 10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 शिक्षा संबंधी प्रावधान

10.3.1 समवर्ती सूची के विषय के रूप में शिक्षा

10.3.2 शिशु शिक्षा की व्यवस्था

10.3.3 प्राथमिक स्तर की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा

10.3.4 समान प्रवेश का अधिकार

10.3.5 स्त्री शिक्षा

10.3.6 कमजोर वर्गों की शिक्षा

10.3.7 अल्पसंख्यकों की शिक्षा

10.3.8 धार्मिक शिक्षा

10.3.9 राष्ट्रीय महत्व के केन्द्रों की व्यवस्था

10.4 न्यायालय संबंधी दिशा निर्देश

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

10.1 प्रस्तावना

स्वाधीनता के उपरांत अंगीकृत संविधान में शिक्षा संबंधी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। शिक्षा को समवर्ती सूची के अंतर्गत रखा गया है। समय–समय पर संशोधनों के द्वारा शिक्षा तथा अन्य विषयों के संदर्भ में प्रविष्टियॉं की जाती रही हैं। शिक्षा को अब मूल अधिकार की श्रेणी में स्वीकृत कर लिया गया है। और कम से कम प्राथमिक स्तर तक की अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा संवैधानिक प्रावधानों के तहत सभी को दिया जाना राज्य का एक उत्तरदायित्व हो गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. शिक्षा से संबंधित केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा किये जाने वाले संवैधानिक उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. भारतीय संविधान के लोकतांत्रिक स्वरूप से परिचित होंगे ।
3. शिक्षा से संबंधित प्रावधानों, संशोधनों एवम् उपबंधों से अवगत होंगे ।
4. शिक्षा के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण एवम् प्रमुख निर्णयों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.3 शिक्षा संबंधी प्रावधान

भारतीय संविधान के निर्माता इस तथ्य को भलीभांति जानते थे कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था भविष्य में तभी स्थायी रह सकती है जब भारतीय नागरिकों के लिए शिक्षा का बेहतर वातावरण बनाया जाये। देश का सर्वोच्च कानून निर्मित करते हुए संविधान निर्माताओं को शिक्षा के सशक्त प्रभाव का पूर्वानुमान था और इसीलिए उन्होंने भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों द्वारा शिक्षा को भारतीय समाज तथा उसके नागरिकों और भावी पीढ़ियों के लिए साकार रूप देने की हर सम्भव कोशिश की। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत में शिक्षा के महत्व को अमूर्त रूप में प्रदर्शित करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। एक लोकतांत्रिक समाज की परिकल्पना के भीतर शिक्षा का आदर्श समाहित होता है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने लोकतांत्रिक आदर्श को इन्हीं कारणों से अपनाया था। शिक्षा के अभाव में समाज अपने लोकतांत्रिक अस्तित्व को अधिक समय तक बनाये नहीं रख सकता।

भारतीय संविधान में शिक्षा को नागरिकों का मूल अधिकार माना गया है। भारतीय नागरिक शिक्षा से संबंधित अपने मूल अधिकारों का उपयोग कर सकें, इसके लिए संविधान में व्यवस्था की गई है।

10.3.1 समवर्ती सूची के विषय के रूप में शिक्षा

भारतीय गणराज्य के संविधान में तीन सूचियॉ हैं – संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची। संघ की सूची के अन्तर्गत आने वाले सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार को है और राज्य सूची के अन्तर्गत सम्मिलित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य सरकारों को है। समवर्ती सूची के अंतर्गत आने वाले विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों को है। यदि केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून तथा राज्य द्वारा बनाये गये कानून में कोई विरोध पाया जाता है, तो इस दशा में केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून को ही स्वीकृति मिलती है। प्रारम्भ में शिक्षा राज्य सूची का विषय थी और इसकी व्यवस्था करना राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व था। केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व केवल संघीय क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था करने, कुछ राष्ट्रीय महत्व की शैक्षिक संस्थाओं की व्यवस्था करने और तकनीकी तथा उच्च शिक्षा के स्तर को बनाये रखने तक सीमित था। 1976 में बयालीसवां संविधान संशोधन करके शिक्षा को समवर्ती सूची के अंतर्गत सम्मिलित किया गया, तभी से शिक्षा की व्यवस्था केन्द्र एवम् राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व बनी। वर्तमान समय में केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण, संघ क्षेत्र में शिक्षा की व्यवस्था सम्पूर्ण देश में सामान्य शैक्षिक सुविधाओं में समन्वय की स्थापना, उच्च शिक्षा के स्तर को बनाये रखना, राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं का विकास करना तथा राष्ट्रीय महत्व की उच्च शैक्षिक संस्थाओं और शोध केन्द्रों की व्यवस्था की जाती है। राज्य सरकारें राष्ट्र के शिक्षा की नीति के अनुरूप शिक्षा प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। वर्तमान समय में केन्द्र सरकार की विभिन्न क्षेत्रों में (शिशु शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा) प्रसार की योजनाएं चल रही हैं और माध्यमिक स्तर पर केन्द्रीय विद्यालयों तथा नवोदय विद्यालय की योजना भी चल रही है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों को शिक्षा व्यवस्था के उचित संचालन के लिए समय–समय पर आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

10.3.2 शिशु शिक्षा की व्यवस्था

जन्म से 6 वर्ष तक शिशुओं की देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था के लिए 2001 में संविधान में 93वां संशोधन करके अनुच्छेद 45 में यह जोड़ा गया कि राज्य सभी बच्चों को जब तक कि वे 6 वर्ष की आयु प्राप्त न करले तब तक बाल्य अवस्था देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

10.3.3 प्राथमिक स्तर की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा

संविधान के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत यह घोषणा की गयी है कि राज्य संविधान के प्रारम्भ से 10 वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु समाप्त होने तक निःशुल्क एवम् अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रबंध करने का प्रयास करेगा। यहाँ संविधान में राज्य का अर्थ केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवम् प्रशासन तंत्र के संबंध में लिया गया है। इस संवैधानिक प्रावधान के स्वरूप राज्य 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के समस्त बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्य एवं निःशुल्क व्यवस्था करने के लिए निरंतर प्रयास कर रहा है।

10.3.4 समान प्रवेश का अधिकार

भारतीय संविधान शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के समान अधिकारों का पक्षधर है। संविधान का अनुच्छेद 29 (2) इस बात का उपबंध करता है कि राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य के निधि से सहायता प्राप्त करने वाली किसी भी शिक्षा संस्था में किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जायेगा। वर्तमान में यह नियम समस्त वित्तपोषित शिक्षा संस्थाओं, वित्तविहीन, मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं तथा पब्लिक स्कूलों पर लागू होता है।

10.3.5 स्त्री शिक्षा

भारतीय संविधान स्त्रियों की शिक्षा के संदर्भ में विशेष व्यवस्था करता है। संविधान का अनुच्छेद 15 (3) यह उपबंध करता है कि इस अनुच्छेद की किसी भी बात से राज्य की स्त्रियों और बालकों के लिए कोई उपबंध बनाने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होगी। इस प्रकार यह अनुच्छेद स्त्री शिक्षा का समान पक्षधर हैं।

10.3.6 कमजोर वर्गों की शिक्षा

भारतीय संविधान समाज के कमजोर वर्गों यथा – अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों को शिक्षा देने की विशेष व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करता है और अनुच्छेद 46 के अंतर्गत राज्य जनता के कमजोर वर्गों विशेषतः अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनको संरक्षित करेगा। इस समय प्राथमिक स्तर पर कमजोर वर्गों के सभी बच्चों को निःशुल्क पुस्तकें दी जाती हैं और छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सभी वर्ग के बच्चों को मध्याह्न भोजन योजना का लाभ मिल रहा है। माध्यमिक तथा शिक्षा के उच्च स्तर पर समाज के इन कमजोर वर्ग के बच्चों को आरक्षण एवं छात्रवृत्ति की सुविधा दी जा रही है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. शिक्षा संविधान की किस सूची में है?

....

....

....

2. जन्म से 6 वर्ष के शिशुओं की देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था संविधान में किस अनुच्छेद में की गयी है?

....

....

....

3. प्रवेश के समान अधिकार की बात किस अनुच्छेद में की गयी है?

....

....

....

10.3.7 अल्पसंख्यकों की शिक्षा

भारतीय संविधान की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गयी है। इसके अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 30 में 2 प्राविधान किये गये हैं।

अ– धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यकों वर्गों को अपनी रूचि के शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

ब– शिक्षा संस्थाओं को सहायता प्रदान करने में राज्य द्वारा किसी विद्यालय के विरूद्ध इस आधार पर भेद नहीं किया जायेगा कि वह धर्म व भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध मं है।

इस संवैधानिक निर्देशों के परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक वर्ग अपनी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने एवं उनका परिचालन करने के लिए स्वतंत्र है।

10.3.8 धार्मिक शिक्षा

भारतीय संविधान धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में स्पष्ट निर्देश देता है । संविधान

का अनुच्छेद 28 यह उपबंध करता है कि पूर्ण रूप से राज्य निधि द्वारा पोषित किसी भी शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। अनुच्छेद 22 में स्पष्ट किया गया है राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में बच्चों को किसी विशेष धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।

10.3.9 राष्ट्रीय महत्व के केन्द्रों की व्यवस्था

भारमहय सविधान राष्ट्रीय महत्व के उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्रों की व्यवस्था केन्द्र द्वारा किये जाने का उपबंध करता है। संघ सूची एक की प्रविष्टि संख्या 62 में उल्लिखित राष्ट्रीय पुस्तकालय एवं संग्रहालय आदि, प्रविष्टि संख 63 के अंतर्गत सम्मिलित राष्ट्रीय महत्व की शिक्षण संस्थाएं जैसे – वाराणसी, अलीगढ़, दिल्ली विश्वविद्यालय आदि, प्रविष्टि संख्या 64 के अंतर्गत उल्लिखित एवं केन्द्र सरकार द्वारा पोषित राष्ट्रीय महत्व की वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थाएं प्रविष्टि संख्या 65 के अन्तर्गत सम्मिलित राष्ट्रीय महत्व की व्यावसायिक, तकनीकी एवं विशिष्ट अध्ययन से संबंधित संस्थाएं और प्रविष्टि संख्या 66 के अंतर्गत सम्मिलित उच्च शिक्षा संस्थानों और अनुसंधान केन्द्रों की सम्पूर्ण वित्तीय तथा प्रशासकीय व्यवस्था का कार्यभार केन्द्र सरकार के ऊपर है। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के शैक्षिक उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया है। प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता, अल्पसंख्यकों की शिक्षा, शिक्षा अधिकारों में समानता, अनुसूचित जाति व जनजाति के बालकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता, शिक्षा का माध्यम, हिन्दी भाषा के विकास आदि के सम्बन्ध में संविधान में विशेष प्रावधान किये गये हैं।

संविधान की 21वीं धारा के अनुसार किसी व्यक्ति को, किसी धर्म विशेष के प्रकार के लिए कर या दान हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता। धारा 28 (1) राज्य के धन से चलने वाली किसी शिक्षण संस्थान में धार्मिक शिक्षा का निषेध करती है। और धारा 22 (2) धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने के लिए विवश नहीं करने से संबंधित है। इसी तरह धारा 28 अन्य धर्मों के अनुयायियों को उनकी सहमति के बिना धार्मिक अनुदेश देने की मनाही करती है। संविधान की धारा दृश्य सामग्री के रूप में राज्यों को स्मारक या संसद के द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्थानों एवं वस्तुओं के संरक्षण का उपबंध करती है। धारा 30 अल्पसंख्यक समुदायों को अपने पसंद की शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने और उनके प्रशासन का अधिकार देती है। अनुदान देते समय धार्मिक समुदाय द्वारा संचालित होने के बाद भी इनके साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता।

पिछड़े वर्ग के शिक्षा से संबंधित प्रावधानों में धारा 17 अस्पृश्यता निवारण और किसी भी रूप में इसके प्रयोग को वर्जित करती है। धारा 24 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को कारखाने या खदान में रोजगार के लिए नियुक्ति का निषेध करती है। धारा 23 मनुष्यों को क्रय विक्रय पर रोक लगाती है और धारा 15 हिन्दुओं के सभी सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों को पिछड़े वर्गों के लिए भी समान रूप से उपयोग का उपबंध करती

है। धारा 16 व धारा 335 राज्यों को सार्वजनिक सेवाओं में आरक्षित करने की छूट देती है और धारा 46 पिछड़े वर्ग के शैक्षिक और आर्थिक हितों के उन्नयन तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करती है। अनुच्छेद 48 कृषि की शिक्षा से संबंधित है, जिसमें राज्य यदि उत्तरदायित्व वहन करने में सक्षम हो, तो वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से कृषि और पशुपालन का संगठन, नस्ल संरक्षण और सुधार के कदम उठा सकता है। धारा 350 ए भाषा अनुदेशन से संबंधित है, जिसमें प्रत्येक राज्य और राज्य के स्थानीय निकाय प्राथमिक स्तर पर अल्पसंख्यक समूह के बालकों हेतु मातृभाषा में अनुदेशन और पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करेंगे। धारा 351 हिन्दी भाषा के प्रसार व विकास से संबंधित है और समग्र संस्कृति के तत्वों की अभिव्यक्ति को स्पष्ट कर देता है शिक्षा सुविधाओं में समन्वय उच्च वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा के स्तरों का निर्धारण, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में शोध कार्य और उनकी अभिवृद्धि केन्द्र सरकार का उत्तरदायित्व है। संघ क्षेत्र की शिक्षा और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों पर केन्द्र का सीधा नियंत्रण है। देश के अन्य क्षेत्रों के शैक्षिक प्रशासन का दायित्व राज्य सरकारों पर है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 41 रोजगार शिक्षा के कुछ निश्चित मामलों में जन–सहायता से संबंधित है और यह प्रारम्भ से ही शिक्षा के अधिकार को स्वीकार करता है जिसके अनुसार –

"राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा और निःशक्तता तथा अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त करने का प्रभावी उपबन्ध करेगा।"

इसी तरह अनुच्छेद 45 सभी बच्चों के निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की बात करता है, जिसके अनुसार "संविधान के लागू होने की तिथि से दस वर्ष के अन्तर्गत राज्य सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु प्रयास करेंगा।"

यद्यपि प्रारम्भ में संविधान निर्माताओं ने शिक्षा के अधिकार को स्वीकार किया था लेकिन दुर्भाग्य से इसे संविधान के भाग III के स्थान पर भाग IV में राज्य के नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत रख दिया गया।

भारत के बेहतर भविष्य की दृष्टि से यद्यपि संविधान शिक्षित समाज के महत्व को स्वीकार करता है लेकिन राज्यों की आर्थिक सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए मौलिक अधिकारों के समान इसे बाध्यकारी घोषित नहीं किया गया। संविधान निर्माण के समय प्रारम्भ में भारत विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा था और उस समय हमारी आर्थिक समस्या अधिक थी। संविधान निर्माताओं ने इसे मौलिक अधिकारों के समकक्ष

नहीं रखा जिससे इन्हें न्यायालय के परमादेश द्वारा लागू किया जा सके। समय बीतने के साथ भारतीय समाज विकसित हुआ तथा अब सम्पन्न राष्ट्र बनने की दिशा में बढ़ रहा है। इसी को ध्यान में रखकर शिक्षा के अधिकार अधिनियम का अस्तित्व सामने आया और इसे मौलिक अधिकारों के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया गया।

10.4 न्यायालय संबंधी दिशा निर्देश

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संज्ञान लिया कि अब समय आ गया है जब राज्यों को 14 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के निर्देश की आवश्यकता है। माननीय न्यायाधीशों का मंतव्य द्रष्टव्य है।

देश में शासन चलाने के लिए मूलभूत नीति निर्देशक सिद्धान्तों को खण्ड तीन में सुनिश्चित मौलिक अधिकारों से पृथक नहीं किया जा सकता है। इन सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों के संदर्भ में समझना चाहिए। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। राज्यों का यह संवैधानिक दायित्व है कि ऐसी स्थितियॉ निर्मित करें जिससे खण्ड तीन में व्यक्तियों के सुनिश्चित मौलिक अधिकारों का सभी उपयोग कर सकें। जब तक संविधान के अनु0 41 में वर्णित "शिक्षा के अधिकार" को वास्तविकता में परिणत नहीं किया जाएगा, तब तक खण्ड तीन में उल्लिखित मौलिक अधिकार बहुशिक्षितजन की पहुॅच के बाहर रहेगा। जब तक नागरिक शिक्षित एवं वैयक्तिक गरिमा के प्रति सचेत नहीं होगा, तब तक वह बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार तथा अनु0 19 में उल्लिखित अन्य अधिकारों सहित भारत के संविधान के भाग III में वर्णित सुनिश्चित मौलिक अधिकारों को न तो सही ढंग से समझ पाएगा न ही उपभोग कर पाएगा। इसलिए शिक्षा के अधिकार संविधान के भाग तीन में स्वीकृत मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध है। राज्यों का यह संवैधानिक उत्तरदायित्व है कि वे नागरिकों के लाभ हेतु प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं को उपलब्ध कराएँ। शैक्षिक संस्थाओं को नागरिकों को अधिकाधिक लाभ पहुॅचाने हेतु सकिय रहना चाहिए। शिक्षा के अवसर को समाज के समृद्ध वर्ग तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।"

इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक अन्य मुकदमें में अनु0 21 के विस्तार को स्वीकृति देते हुए विनिश्चय दिया – 'लेकिन प्रश्न यह है कि क्या जीवन का अधिकार मात्र अंग या क्षमता की सुरक्षा तक ही सीमित है या यह इससे आगे जाता है और कुछ सम्मिलित करता है। हमारे विचार से जीवन का अधिकार के साथ उन सभी को जो इससे सम्बद्ध हैं, जैसे पर्याप्त पौष्टिक भोजन, वस्त्र तथा मकान जैसी जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं एवं पढ़ने लिखने तथा स्वयं को मित्र रूप में अभिव्यक्त करने, अपने समान अन्य मनुष्यों से मिलने जुलने एवं संबंध स्थापित करने की सुविधा को समाहित करता है। वस्तुतः इस अधिकार का परिणाम तथा घटकों की अन्तर्वस्तु देश के

आर्थिक विकास के विस्तार पर अवलम्बित होगा लेकिन किसी भी दृष्टि से इसमें जीवन की भौतिक आवश्यकतओं की पूर्ति के अधिकार तथा ऐसी शक्तियों एवं क्रियाओं को सम्पादित करने के अधिकार जिनसे मनुष्य की आत्मा की न्यूनतम अभिव्यक्ति संभव होती है, को सम्मिलित करना ही पड़ेगा।''

सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चयों से सरकार को कदम उठाने को विवश होना पड़ा। अनु0 45 की भावना के अनुरूप बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए जाग्रत होना पड़ा, जिसके फलस्वरूप संविधान में 86वां संशोधन हुआ, जिसके द्वारा अनुच्छेद 21 अ जोड़ा गया। इसके अंतर्गत ''राज्य छः वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करें, उपलब्ध करेंगा।

इस प्रकार एक अप्रैल, 2010 से भारत में शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो गया। प्रधानमंत्री के शब्दों में नई क्रान्ति की शुरूआत हो गयी। साथ ही स्वीकार किया गया कि जब तक इस व्यवस्था का पूरा वित्तीय भार भारत सरकार वहन नहीं करेगी, तब तक इसे लागू करना असम्भव है।

शिक्षा के अधिकार कानून का लागू होना देश को प्रगति के पथ पर ले जाने की कोशिश के रूप में एक मील का पत्थर है। देर से ही सही छः से चौदह वर्ष के हर बच्चे को शिक्षा प्रदान करने का संकल्प जताना उत्साह का संचार करने वाला है। जो भी हो भारतीय समाज को शिक्षित करने एवं समाज को रहने योग्य बेहतर स्थान बनाने की दिशा में यह एक सराहनीय कानून है। शिक्षा से ही लोग शांतिपूर्ण समाज के महत्व को समझ सकते हैं एवं इसके लिए प्रयास कर सकते हैं नहीं तो अशिक्षित लोग न तो दूसरों के अधिकार के प्रति आदर रख सकतें हैं और न ही दूसरों की आवश्यकता को समझ सकते हैं। यह समाज को अनुशासित करने, विभिन्न जातियों एवं धार्मिक समुदायों के मध्य शांति , सहिष्णुता एवं बंधुत्व को स्थापित करने में सहायक है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. भारतीय संविधान में आवश्यकताओं की शिक्षा की विशेष व्यवस्था का प्रावधान किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?

....

....

....

5. कौन सी धारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाने या खदान में रोजगार के लिये नियुक्ति का निषेध करती है।

....

....

....

10.5 सारांश

भारतीय संविधान मे शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में स्वीकृत किया गया है। राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि वह सभी बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रदान करें। संविधान की धारा 45, अनुच्छेद 29 (2), 15 (3), 17, 46, 30, 28, 22, 344(1), 343 तथा 351 आदि अनुच्छेद शिक्षा की उपलब्धता प्रवेश, स्त्री शिक्षा, अनुसूचित जाति एवं जनजाति की शिक्षा, अल्पसंख्यकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, भाषा शिक्षा तथा हिन्दी भाषा संबंधी प्रावधान किये गये हैं। इन सभी के माध्यम से भौतिक सत्रोन्नयन एवं शिक्षा तक सभी को पहुँच को सुगम बनाने का प्रयास किया गया है। समय–समय पर संविधान संशोधनों द्वारा इसके शक्ति में भी वृद्धि की गई है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान में शिक्षा से संबंधित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान के अंतर्गत दिये गये प्रमुख शैक्षिक निर्देशों की व्याख्या कीजिए।
3. भारतीय संविधान में निर्बल वर्गों तथा स्त्रियों की शिक्षा से संबंधित प्रावधानों का विवरण दीजिए।
4. भारतीय संविधान में किये गये प्रमुख संशोधनों की आवश्यकता का विवेचन कीजिए।
5. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिक्षा से संबंधित प्रमुख टिप्पणियों के संदर्भ में अपना मत व्यक्त कीजिए।

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समवर्ती सूची में ।
2. अनुच्छेद 45 में ।
3. संविधान का अनुच्छेद 29 (2)।
4. अनुच्छेद 30 में (2)।
5. धारा 24

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, लाल रमन बिहारी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2010–11.
2. चौहान, सी.पी.एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटस, नई दिल्ली, 2004।
3. भारत, 2004 , प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
4. मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, (ए.आई.आर. 1992, एस.पी., 1858)
5. फ्रांसिस कोरेली मुल्लिन बनाम प्रशासक केन्द्र शासित राज्य दिल्ली (ए.आर. आर. 1981)
6. दैनिक जागरण, शनिवार, 3 अप्रैल, 2010, गोरखपुर, पृष्ठ 10 ।

इकाई – 11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियॉ : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवम् कार्य योजना (1986,1992),निःशक्त जनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम की संस्तुतियॉ

11.4 अधिगम असमर्थिता का प्रत्यय

11.5 अधिगम असमर्थी बालकों की पहचान

11.6 अध्यापक की भूमिका

11.7 निःशक्त जनों के लिए राष्ट्रीय नीति 2006 के प्रावधान

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय आयोगों एवं अधिनियमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अधिगम अक्षमों की पहचान तथा शिक्षक की भूमिका को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना आवश्यक है। इन्हीं के आधार पर नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन होता है। अक्षम व्यक्तियों के लिए अनेक आयोगों एवं समितियों ने अपने सुझाव दिये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा कार्य योजना के अंतर्गत विकलांगों के शैक्षिक तथा सामाजिक उन्नयन के अनेक सुझावों को स्वीकार किया गया। कार्य योजना में भी कई प्रस्ताव किये गये जिनसे कि विकलांगजनों को राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित करने में काफी सहायता मिली है। इन बालकों की पहचान और सहायता में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. राष्ट्रीय आयोगों एवं अधिनियमों की प्रमुख संस्तुतियों से अवगत होंगे।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवम् कार्य योजना में निःशक्तता जनों से संबंधित प्रावधानों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. निःशक्त जनों से संबंधित राष्ट्रीय नीतियों द्वारा दिये गये प्रस्तावों से अवगत होंगे।
4. अधिगम असमर्थिता की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. निःशक्त जनों के संबंध में अध्यापक की भूमिका को बता सकेंगे।

11.3 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम की संस्तुतियॉ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शारीरिक व मानसिक रूप से बाधितों और सामान्य व्यक्तियों की समाज में भागीदारी, सबके जीवन में समन्वय के उद्देश्य को ध्यान में रखती है। बाधितों को सामान्य विकास के अवसर दिये जायें जिससे वे साहस तथा आत्मविश्वास से जीवन का सामना कर सकें।

1. जहॉ सम्भव हो गम्भीर रूप से बाधित, सामान्य शारीरिक दोषों से बाधितों की शिक्षा सामान्य बालकों के साथ–साथ होगी।
2. विशिष्ट शिक्षण संस्थायें आवासीय सुविधा के साथ स्थापित हो।
3. जहॉ तक सम्भव हो ऐसी संस्थाओं में बाधितों को व्यवसायिक प्रशिक्षण देने की उपयुक्त व्यवस्था हो।
4. अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास करना अभिविन्यास की व्यवस्था करना, विशेषतया प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों का जिससे वे बाधित बालकों की विशिष्ट कठिनाइयों का सामना कर दूर कर सकें।
5. शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षा के लिये स्वैच्छिक प्रयास (Voluntary Effort) प्रत्येक सम्भव दिशा में किये जायेंगे।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति/क्रियान्वयन प्रारूप (NPE/POA) को कार्यों एंव नियमों पर टिप्पणी देने के लिये राममूर्ति कमेटी का गठन किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के द्वारा बाधितों के बारे में कुछ विशेष उपाय बताये गये जो निम्नलिखित हैं–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने शारीरिक व मानसिक रूप से विकलांगों को समाज के सामान्य बालकों के साथ शिक्षा देने का सुझाव दिया।

' कार्य योजना (1992) ने बाधितों की शिक्षा के क्षेत्र में विस्तृत साधनों के बारे में चर्चा की, जैसे सेवाओं के साथ–साथ अध्यापकों का प्रशिक्षण, प्रशासकों के उत्थान के लिए कार्यक्रम संसाधित प्रदेश तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान जैसे (SCERT & DIET) में प्रेक्षकों की निपुणताओं का विकास आदि उनमें से कुछ प्रमुख है।

शिक्षा के क्षेत्र में विकलांगों की संख्या में कमी होने के निम्नलिखित कारण है–

1. विकलांगों की शिक्षा को सामाजिक कल्याण कार्य के रूप में देखा जाता है।
2. बालकों विकलांग एवं सामान्य बालक की आपसी संवेदना, माता–पिता समुदाय व विकलांग बालकों की संवेदना तथा विशिष्ट एवं सामान्य शिक्षा का आपसी बन्धन शिक्षा के क्षेत्र में देखने को नहीं मिलता था।
3. अधिकांश विशिष्ट संस्थायें बाधितों की शिक्षा के लिये महानगरों अथवा नगरों में स्थित हैं। बहुत ही कम संस्थाओं को छोड़कर, सामान्यतः ऐसा देखने में आता है कि गैर सरकारी शिक्षा संस्थायें जिला या तहसील के स्तर पर नहीं हैं। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सम्पूर्ण भारत में बाधितों की शिक्षा के लिए 215 जिलों में विशिष्ट शिक्षा संस्थायें नहीं हैं जबकि कागजों पर 1000 विशिष्ट शिक्षा संस्थायें हैं।
4. समन्वित शिक्षा का कार्यक्रम समाज कल्याण विभाग की देख–रेख में 1974 से प्रारम्भ हुआ जिसके अन्तर्गत सामान्य स्कूलों के साथ विशिष्ट स्कूल भी प्रारम्भ किये गये। इसका मुख्य कारण सभी अध्यापकों का संवेदनशील न होना था। जहाँ तक शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षा का प्रश्न है, इस बारे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) के पास उपलब्ध साधन पर्याप्त नहीं है। विकलांगों की शिक्षा के लिये सामान्य शिक्षा पर बल न देना भी इसमें सम्मिलित है। सामान्य शिक्षा संस्थाओं को विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं से पूर्णतया भिन्न समझा जाता है। इसमें मुख्यतया शिक्षा हेतु संसाधनों तथा प्रशिक्षकों की कमी है जिसे कल्याण मन्त्रालय तथा मानव संसाधन विभाग पर विकास करने के लिये छोड़ दिया गया है।

कार्य योजना में विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं को जिला तथा तहसील स्तर पर स्थापना के लिये कहा गया है, तथा प्रयासरत भी है। पाठ्यक्रम का विकास करना तथा बाधितों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा की व्यापकता के लिये लक्ष्य निर्धारित करना आदि पर कार्य हो रहा है। जबकि राष्ट्रीय कार्य योजना में गम्भीर रूप से बाधितों की विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं पर ठीक बल दिया गया है, लेकिन राष्ट्रीय क्रियान्वयन का प्रारूप (POA) ने विशिष्ट संस्थाओं में विभिन्न प्रकार की सेवाओं के बारे में बल नहीं दिया अथवा दृढ़ता नहीं दिखाई। एक प्रकार के शारीरिक दोष के लिए जबकि अन्वेषण की आवश्यकता है फिर भी पुर्नवास कार्य का विकास, तथा शिक्षा सेवाओं को उपलब्ध कराना विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं के लिये विभिन्न प्रकार की सेवाओं को उपलब्ध कराना

अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा विशेषतः इसलिये है क्योंकि चिकित्सक, चिकित्सालय, सामाजिक संस्थायें तथा विकास हेतु विभिन्न कार्यों में रत अन्य संस्थायें अपने समक्ष विभिन्न प्रकार के उद्‌देश्य रखती है। शैक्षिक कार्यक्रम के प्रारूप ने विशिष्ट संस्थाओं के कार्य एवं उत्तरदायित्वों का पुनरावलोकन नहीं किया।

समन्वित शिक्षा के लिये शिक्षा विभाग योजना लागू कर रहा है। वर्तमान में यह योजना 19 राज्यों तथा केन्द्रशासित राज्यों में लागू की जा रही है। प्रत्येक वर्ष इस योजना पर लगभग 2 करोड़ रू0 व्यय किये जा रहे हैं जबकि 20,000 बालक इस योजना के अन्तर्गत शिक्षण ग्रहण कर रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत यह व्यय शिक्षकों के वेतन, भत्तों, संसाधन कक्षों, शिक्षकों के प्रशिक्षण, विकलांग बालकों का निर्धारण तथा अनुदेशन सामग्री उपलब्ध कराने के लिये किया जा रहा है। शारीरिक रूप से बाधित बालकों की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा समस्याओं पर विस्तृत रूप से विचार करते हुए तथा विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों के इतिहास का अवलोकन करते हुए कमेटी ने निम्नलिखित संस्तुतियॉ की हैं –

1. सभी को विकलांगों की समस्याओं के बारे में अवगत कराया जाये। इस कार्य के लिये समाचार पत्र, दूरदर्शन, रेडियों आदि विभिन्न सम्प्रेषण विभागों की सहायता का उपयोग करना चाहिए।

2. प्रत्येक परिवार जिसमें कोई शारीरिक अथवा मानसिक रूप से बाधित बालक है ऐसे परिवारों की तन,मन, धन से सहायता करना चाहिये, परिवारों से बातचीत करना विशिष्ट प्रशिक्षण देना तथा समय–समय पर बाधित बालक का मूल्यांकन करना चाहिए।

3. विकलांग बालकों की शिक्षा व्यवस्था लचीली होनी चाहिए। शिक्षा सामान्य स्कूलों में अथवा सामान्य स्कूलों की विशिष्ट कक्षाओं में तथा समन्वित शिक्षा व्यवसायिक केन्द्रों पर होनी चाहिए।

4. श्रवण बाधित अथवा बधिर बालकों को उनकी बाधिता का ध्यान रखते हुए उचित शिक्षा का प्रारूप उपलब्ध कराना चाहिए। बधिरों के लिये मौखिक शिक्षा के कार्यक्रम पर्याप्त नहीं होते। उनके लिये मौखिक निर्देशिका (Oral-manual) तथा शारीरिक रूप से किये जाने वाले कार्यों को मस्तिष्क में रखते हुए शिक्षा के कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए। ऐसे कार्यक्रम बालकों की विशिष्ट आवश्यकताओं का ध्यान में रखते हुए अलग–अलग बनाने चाहिये जो उनकी शारीरिक अथवा मानसिक कमियों के अनुरूप हों। समन्वित कार्यक्रम कुछ इस प्रकार से बनाये जाने चाहिए कि जो विकलांग बालकों की भावुकता, विचार भावना तथा भाषा के विकास में उपयोगी हों।

5. श्रवण बाधित बालक तथा बालिकाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण विशेषतः देने चाहिए। विभिन्न कार्य क्षेत्रों में ऐसे बालकों के कार्य करने के लिये उनकी योग्यता तथा कार्य के प्रति लगन के अनुरूप, व्यावसायिक प्रशिक्षणों की व्यवस्था करनी चाहिए।

6. दृष्टिबाधितों के लिये राष्ट्रीय संस्थान, देहरादून (National Institute for Visually Handicapped- NIVH) ने भारती–ब्रेल का विकास किया है। इसका अधिक से अधिक प्रयोग होना चाहिए।

7. यद्यपि ब्रेल के विकास का कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका है, विज्ञान तथा गणित के क्षेत्र में विशेष उन्नति अभी नहीं की गई है।

8. विशिष्ट मानसिक दोषों से बाधित बालकों के लिये विशिष्ट पाठ्यक्रम बनाना चाहिए तथा उसे प्रामाणिक (Standardized) करने के पश्चात् समान रूप से लागू करना चाहिए। इसका प्रयोग केवल बालकों की (3 R-) शिक्षा के लिये आधार बनाने के लिये ही नहीं वरन उन्हें आत्मनिर्भर स्वयं की देखभाल करने में सक्षम, भाषा का सम्प्रेषण तथा कौशलों आदि के विकास में करना चाहिए।

9. मानसिक रूप से बाधित नौजवानों के लिये व्यावसायिक शिक्षा केन्द्र बहुत कम हैं उनके लाभ एवं आजीविका के लिए उन्हें विभिन्न कार्यशालाओं कारखानों तथा कृषि फार्म पर आजीविका के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

10. शिक्षकों की शिक्षा, प्रारम्भिक प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा उनके पाठ्यक्रमों का शारीरिक व मानसिक बालकों को शिक्षा देने की विधियों को आवश्यक भाग बनाया जाना चाहिये।

11. सेवाओं में कार्यरत अध्यापकों के लिये संवेदनशील कार्यक्रम लागू होने चाहिये। इसमें शिक्षा का व्यावसायीकरण, दूरस्थ शिक्षण तथा अनौपचारिक शिक्षा जैसे विभिन्न भाग भी सम्मिलित होने चाहिए।

12. विकलांग बालकों की विशिष्ट शिक्षा हेतु अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में विशिष्ट विधियों का समावेश होना चाहिए। इसे बी0एड0 में भी सम्मिलित करना चाहिए।

13. विकलांगों की शिक्षा के सन्दर्भ में एक संसाधन युक्त विभाग होना चाहिए जिसके शिक्षाविद अध्यापकों को उपयुक्त प्रशिक्षण तथा नई–नई प्रविधियों तथा आयामों से अवगत करा सकें।

14. विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं के उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप से निम्न प्रारूप के अनुसार परिभाषित करना चाहिये –

    अ. बाधित बालकों की प्रारम्भिक स्तर पर पहचान कर लेना तथा उनके लिये कार्यक्रम बनाना।

ब. शारीरिक अथवा मानसिक दोषों से ग्रस्त बालक जो सामान्य शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने के अयोग्य है यदि समन्वित शिक्षा में उन्हें सामान्य बालकों के साथ शिक्षा दी जाती है तो वे अपने अपमान, तिरस्कार तथा हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं। उन्हें ऐसी परिस्थितियों से बचाना।

स. सामान्य शिक्षा संस्थाओं में विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्रमों को उपयोग करने के लिये संसाधन एजेन्सी के रूप में सेवायें उपलब्ध कराना।

15. विकलांग बालकों के लाभ के लिये विभिन्न प्रविधियों का पर्याप्त विकास हो रहा है। विभिन्न सहायक प्राविधियॉ इस समय विकलांगों के लिए उपलब्ध हैं जैसे श्रवण बाधितों के लिए श्रवण यन्त्र तथा दृष्टि बाधितों के लिये ब्रेल आदि। जर्मनी की ब्रेलिकस ने कैसेट बना लिये हैं जिस पर विश्वकोष (Encyclopaedia) उपलब्ध है। टेकटाकों ने (Vipro Tectile) जैसा यन्त्र जो छपी हुई सामग्री को उभरे हुये शब्दों के रूप में दृष्टि विहीन व्यक्तियों को पढ़ने में सहायक है आदि बना लिये हैं। इस प्रकार की प्रविधियॉ, यन्त्रकला तथा सहायक सामग्री के रूप में विभिन्न यन्त्र, पाठ्य सामग्री आदि शारीरिक अथवा मानसिक बाधितों के शिक्षण में पर्याप्त रूप से सहायता करती हैं तथा उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं का निर्वाह करती है। इस प्रकार की प्रविधियों तथा यन्त्रकला के विकास पर ध्यान देना चाहिये।

16. उपरोक्त क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करते रहना चाहिये जो विकलांगों की सहायता के लिये उपयुक्त यन्त्र, यन्त्रकला तथा नई–नई प्रविधियों को उपलब्ध करा सके।

इन संस्तुतियों का रूप कार्यक्रमों की योजना प्रभावी करने के लिये बहुत विस्तृत है। इसके पश्चात् एक अन्य जनार्दन कमेटी का सरकार द्वारा गठन किया गया जिसने (1993) में अपनी रिपोर्ट दी।

नयी शिक्षा नीति की समीक्षा समिति (NPERC) ने निम्नलिखित क्षेत्रों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) को अनुपयुक्त पाया।

1. बाधित बालकों की पूर्ण रूप से सामान्य शिक्षा व्यवस्था पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) ने वृहद रूप नहीं दिया।

2. विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं के साथ सामान्य शिक्षा संस्थाओं की अपेक्षा सौतेला व्यवहार किया। विशेषतः आन्तरिक निरीक्षण तथा प्रबन्ध तन्त्र आवश्यकतानुसार उपलब्ध नहीं कराये। यह कार्य पूर्णतया कल्याण मन्त्रालय और मानव संसाधन विकास मन्त्रालय पर छोड़ दिये गये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा समिति (NPERC) ने बाधित बालकों की शिक्षा के लिये प्रतिदर्श कार्यक्रमों से सम्बन्धित अनेक उपयोगी संस्तुतियॉ की। इसने अपंगों की समस्याओं से सबको अवगत कराने तथा प्रचार करने के लिये विभिन्न

साधन जैसे समाचार, दूरदर्शन, रेडियो आदि की सहायता लेने के लिए वकालत की। इसके अतिरिक्त समिति (NPERC) ने अपनी संस्तुति में यह भी कहा कि मानसिक या शारीरिक रूप से बाधित परिवारों की आर्थिक रूप से सहायता की जाये तथा समय समय पर बातचीत की जाये, बाधित बालकों के समय के साथ साथ होने वाले विकास का मूल्यांकन किया जाये एवं ऐसे बालकों को विशिष्ट शिक्षण के अवसर उपलब्ध करये जायें। नई शिक्षा नीति की समीक्षा समिति अथवा राममूर्ति समिति (NPERC)ने विभिन्न श्रेणियों के बाधित बालक जैसे दृष्टि बाधित, मूक व बधिर, आदि के लिये लचीली शिक्षा, तथा उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के बारे में विशेषतः वृहद रूप से संस्तुतियॉ की। शारीरिक रूप से बाधितों की शिक्षा के लिये राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने प्रशिक्षण कार्यक्रमों की महत्वपूर्ण एवं तकनीकी प्रावैधिक प्रविधियों के क्षेत्र में विकास करने पर बल दिया।

मानव संसाधन मंत्रालय भारत सरकार ने (1992) में शैक्षिक कार्यक्रम के प्रारूप (POA) को प्रतिपादन किया। जिसके अन्तर्गत बाधितों की शिक्षा के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने व विकसित करने हेतु ऐतिहासिक घटनाओं को भी ध्यान में रखा गया।

कियान्वयन प्रारूप (1992) में विश्लेषण के उपरांत यह पाया कि लगभग 30,000 गम्भीर रूप से बाधित बालक समन्वित शिक्षा योजना के अन्तर्गत विशिष्ट लाभ उठा रहे हैं। अथवा शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 60,000 बालक ऐसे है जो सामान्य दोषों से ग्रस्त है। जो विशिष्ट लाभ न लेकर केवल संसाधन सहायता से लाभ उठा रहे हैं। बाधित बालकों की एक बड़ी संख्या विशिष्ट स्कूलों में शिक्षा पा रही है। जिनकी संख्या 1035 है। बाधितों के लिये समन्वित शिक्षा कार्यक्रम केन्द्र शासित प्रदेशों तथा दस राज्यों में प्रत्येक राज्य के एक भाग में लागू किया जा रहा है। इस प्रकार के भाग के लगभग 90 प्रतिशत अपंग बालक सामान्य स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। एक बालक पर लगभग 2000 रूपये व्यय होते हैं लेकिन इस व्यय के कम होने की सम्भावना है। जैसे–जैसे लाभ लेने वाले बालकों की संख्या में वृद्धि होती है, सामान्य स्कूल के शिक्षकों के आत्म विश्वास में वृद्धि होती है तथा समाज में उन्हें उनके द्वारा अच्छे कार्य के बदले सम्मान मिलता है। कार्य क्षेत्र में वह प्रेरित होते हैं तथा समर्पित भावना से कार्य करते हैं । विभिन्न श्रेंणियों में नये नये संसाधन युक्त शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रभावशाली पाया गया है। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम क्षेत्रीय विद्यालय और गैर सरकारी संस्थानों द्वारा कराये जाते हैं। प्रत्येक जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) केन्द्र शिक्षकों के सामान्य प्रशिक्षण द्वारा उत्थान के लिये संसाधन केन्द्र स्थापित किये गये हैं जो विशेष कक्षाओं अथवा सामान्य विद्यालयों अथवा संस्थाओं में प्रदर्शन करके प्रशिक्षण देते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और

प्रशिक्षण परिषद् पर इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्य क्रमों से 102 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के शिक्षक लाभान्वित हो चुके हैं।

समाज कल्याण मन्त्रालय ने विशिष्ट कक्षाओं के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षा देने के लिये भेजा है, जिससे शिक्षा संस्थाओं के स्तर को सुधारा जा सके।

शारीरिक व मानसिक रूप से बाधितों के पुनर्वास तथा उनके स्थापन हेतु 17 व्यावसायिक केन्द्र श्रम मन्त्रालय की देख–रेख में कार्यरत हैं। सितम्बर 1991 तक इस योजना के अन्तर्गत लगभग 66000 अपंग व्यक्तियों का पुनर्वासन हो चुका था। अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में अपंगों के लिये 3 प्रतिशत स्थान सुरक्षित है। इसका पूर्णतया प्रयोग किया गया है तथा अपंग व्यक्ति इससे लाभ ले रहे हैं।

सामान्य शिक्षा व्यवस्था में बाधितों की शिक्षा के लिये हलचल जिस स्तर तक होनी चाहिये वह अभी देखने में नहीं आती है। इस संदर्भ में उसकी दशा केन्द्र, शासित राज्य अथवा विभिन्न राज्यों में उनकी समान स्थिति है। जैसी विभिन्न योजनाओं से अपंगों के लिए शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण क्षेत्र में ज्ञान, कला तथा संसाधनों के जिस स्तर की आशा की जाती है, वे अभी नहीं प्राप्त हो रहे हैं। कुछ राज्य इस योजना के प्रति उदासीन हैं और इस कारणवश इसका विभिन्न क्षेत्रों में क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। पिछड़े हुये क्षेत्र में कुछ गैर सरकारी संस्थायें मेहनत एवं लगन से कार्य करने में जुटी हुई हैं। विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के स्तर को उन्नतिशील बनाने की आवश्यकता है। ऐसे बालक जो विभिन्न प्रकार के शारीरिक दोषों से पीड़ित हैं के लिये आवश्यक सुविधाओं का अभी भी विकास करना है। ऐसे बालकों की प्रारम्भिक स्तर पर पहचान करना तथा उनके कल्याण एवं शिक्षा हेतु योजनाओं एवं कार्यक्रमों में हस्तक्षेप करना, तथा उनमें सुधार करने की आवश्यकता है। बिना ठोस कदम उठाये तथा बिना आवश्यक साधनों के यह योजनायें अपने लक्ष्य तक नहीं पहुॅच सकती हैं ।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में अपंगों के लिये कितने प्रतिशत स्थान सुरक्षित हैं? ....

....

....

2. एन0पी0ई0आर0सी0 का क्या तात्पर्य है?

....

....

....

3. कौन सा यंत्र छपी सामग्री को उभरे शब्दों के रूप में लिख देता है?

....

....

....

11.4 अधिगम असमर्थिता का प्रत्यय

अधिगम असमर्थिता का तात्पर्य अधिगम सम्बंधी ऐसी समस्याओं से है जो बालकों के सुनने, समझने, बोलने, लिखने, पढ़ने या गणितीय संख्याओं में बालक की अयोग्यता आंशिक रूप से प्रदर्शित करते हैं अर्थात उपरोक्त कार्य क्षेत्र में बालक मापदण्डो के आधार पर निपुणता प्राप्त नहीं कर पाता। कभी कभी बालक में श्रवण, दृष्टि, शारीरिक, मानसिक मन्दिता सम्बंधी दोष नहीं होते हैं और ना ही बालक आर्थिक रूप से पिछड़ी श्रेणी में पाया जाता है। ऐसे बालकों में भाषा का प्रयोग करने अथवा समझने में मनोविज्ञान सम्बंधी प्रक्रियाओं में अभाव और दोषों का होना मुख्य कारण होता है।

किर्क 1962 के अनुसार– अधिगम असमर्थिता का तात्पर्य बालक के विकास में मन्दिता होना अथवा मानदण्डों से अधिक समय लगने से सम्बन्धित है। विकास में मन्दिता की दर का बालक के बोलने, पढ़ने, भाषा संबन्धी शब्दों के विभिन्न वर्तनी अक्षर करके पढ़ने–लिखने अथवा एक से अधिक क्रियाओं के करने में बालक कठिनाइयों का अनुभव करता है। इस प्रकार की समस्याओं एवं कठिनाई का कारण भावनात्मक, व्यवहारिक विक्षोभ अथवा सम्भवतः (cerebral dysfunction) मानसिक दोष होता है। इसका कारण मानसिक मन्दिता, शारीरिक इन्द्रियों में कमी अथवा दोष नहीं होता है। इसका कारण सांस्कृतिक अथवा अनुदेशात्मक दोष भी नहीं होते हैं। कुछ बालक सामान्य प्रतीत होते हैं परन्तु लगभग प्रत्येक अवधि में वह अधिगम सम्बंधी समस्यायें बतलाते हैं। वह अक्षरों के क्रम को भली प्रकार से नहीं लिख पाते परन्तु उसे उलट–पलट कर लिख देते हैं। जैसे खाना को नाखा, राम को मरा आदि लिखते है। ऐसे बालक शब्दों पर अपने ध्यान एकाग्र नही कर पाते।

यदि कारणों की दृष्टि से देखा जाये तो अधिगम असमर्थता दो प्रकार की है– सामान्य (mild) तथा गम्भीर अधिगम असमर्थता। ऐसे बालक जिनमें अधिगम असर्थता का परिणाम कम है अर्थात् उनमें अधिगम दोष सामान्य स्थिति में है तो ऐसे बालक को सामान्य शिक्षा संस्थाओं में शिक्षित किया जा सकता है। यद्यपि ऐसे बालकों की प्रारम्भिक स्तर का पहचान करना कठिन कार्य है। "गम्भीर अधिगम असमर्थी ऐसे बालक कहे जाते हैं जो शिक्षा की प्रारम्भिक आवश्यकताओं जैसे – पढ़ने–लिखने में कुशलता ग्रहण नहीं कर पाते तथा ग्रहण करने के योग्य नहीं होते हैं।" इस प्रकार की समस्या का मुख्य कारण मस्तिष्क का सुचारू रूप से कार्य न करना अथवा सामाजिक वातावरण का न मिलना हो सकता है।

सामान्यतः अधिगम असमर्थी तथा मानसिक मन्दित बालक में अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता है। दोनों प्रकार के बालकों को शैक्षिक विषयों के अधिगम हेतु कठिनाईयॉ उत्पन्न होती हैं।

अधिगम असमर्थी बालक, पिछड़ें तथा मन्दित अधिगामी बालकों के समान नहीं है। पिछड़े बालक तथा मन्दित अधिगामी बालकों का बुद्धि स्तर, वातावरण, संस्कृतिक तथा सामाजिक लाभ निम्न कोटि के होते हैं। शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ों अथवा मन्द गति से सीखने वाले बालक की प्रगति बहुत धीमी होती है। परन्तु अधिगम असमर्थी बालक की समस्यायें किसी विशेष शैक्षिक क्षेत्र में होती हैं जैसे – पढ़ना, लिखना, अथवा गणितीय क्षमता। लेकिन अधिगम असमर्थता के कारण आज भी रहस्यमयी बने हुए हैं इन्हें अभी तक स्पष्ट नहीं किया जा सका।

11.5 अधिगम असमर्थी बालकों की पहचान

1. अधिगम बाधित बालक को समय बताने, दिनों को सही महीनों तथा वस्तुओं में याद करने में कठिनाई होती है।
2. बालक को अपने कार्य को करने में कठिनाई होती है तथा कक्षा कार्य को देर से पूरा करता है।
3. ऐसा बालक देखने में सुस्त दिखाई देता है तथा प्रश्नों का उत्तर ढंग से नहीं दे पाता है।
4. यदि उससे मौखिक अनुदेशों को दोहराने के लिये कहा जाये तो वह उन्हें सही–सही नहीं दोहरा पाता है।
5. घर तथा कक्षा में दिये गये अनुदेशों को समझ नहीं पाता है तथा उन्हें दोहराने के लिये कहता है।

6. कार्यों में बहुत अनियमितता दिखाता है कभी कभी प्रतिभावान प्रतीत होता है लेकिन विद्यालय में कक्षा कार्य में उसकी क्रियायें निम्न स्तर की होती हैं।

7. ऐसे बालक थोड़े से परिवर्तन से परेशान हो जाते हैं ।

8. बायें तथा दायें के बीच अन्तर करने में भ्रमित हो जाता है।

9. अधिगम बालक इतना अधिक उत्तेजित होता है कि वह कक्षा में थोड़े समय भी शान्तिपूर्वक नहीं बैठ पाता है।

10. पढ़ते समय पंक्तियों को छोड़ देता है या उन्हें दो बार पढ़ देता है।

11. शब्दों की वर्तनी के अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाने में कठिनाई का अनुभव करता है। अधिगम बाधित बालक B/e/g तो कह सकता है परन्तु (Beg) नहीं कह पाता है वह (Beg)के स्थान पर (Bed) बोल सकता है।

12. शब्दों का असंगत अनुमान लगाता है चाहे उनका सही अर्थ हो या न हो उदाहरणार्थ 'भूख' के लिये 'भुख' कहता है तथा क्रिया शब्द के लिए किया शब्द का प्रयोग करता है।

13. शब्द के उलटे अक्षर पढ़ता है (उदाहरण के लिये नम को मन पढ़ता है तथा लता को यता पढ़ता है)।

14. अक्षरों को गलत क्रम में रखता है (जैसे – 'लटक' का 'यटक' तथा 'पाठ' को 'पाट' पढ़ता है)

15. शब्दों को छोटा कर देता है जैसे – 'झटपट' को 'पट' तथा 'रमण को 'मण' पढता है।

16. जो शब्द देखने में एक जैसे प्रतीत होते है उनको अधिगम बाधित बालक अशुद्ध पढ़ता है जैसे – 'नटखट' को 'सटनक' पढ़ता है।

17. स्वयं शब्दों को संकलित करने तथा सही वाक्य बनाने में कठिनाई अनुभव करता है।

18. संख्याओं को गलत पढता है (36 को 63 तथा 3 को 8 पढ़ता है तथा अक्षरों को गलत क्रम में पढ़ता है)। नमक को मनक पढ़ता है।

19. लिखने में अशुद्धियॉ करता है।

20. शब्दों के अक्षरों को उल्टा लिख देता है।

21. शब्दों के अक्षरों में लिखने में अशुद्धियॉ करता है।

22. अक्षर कम कर देता है, जैसे – 'टपक' को 'टक' पढ़ता है।

23. अतिरिक्त अक्षर जोड़ देता है। जैसे – बन्द को बदन पढ़ता है।

24. यदि ध्वनि के आधार पर शब्द लिखने के लिये कहा जाता है तो ध्वनि के अनुरूप अक्षर नहीं लिख पाता है।

25. जब अक्षरों को बोलने के लिए कहा जाता है तो वर्णमाला से अक्षर नहीं निकल पाता है।

26. यदि अक्षरों का मिलान करने के लिए कहा जाता है तो वह शब्दों का मिलान नहीं कर पाता है।

27. शैक्षिक विषयों को समझने में भी अधिगम बाधित बालक को कठिनाई आती है। बालक एक विषय या एक से अधिक विषयों में कमजोर हो सकता है।

11.6 अध्यापक की भूमिका

सामान्य शिक्षक की कक्षा में भी कुछ कमियों वाले या श्रवण बाधित बालक प्रवेश ले लेते हैं। इस लिये शिक्षक का यह उत्तरदायित्व होता है कि शिक्षक ऐसे बालकों पर ध्यान दे और उन्हें समुचित सहायता प्रदान करे। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित भूमिकाओं का निर्वाह करना होता है –

1. ऐसे बालकों के व्यवहार के आधार पर उनकी पहचान करें और सामान्य कक्षा में उन्हें आगे की सीटों पर बैठने की व्यवस्था करें। साथ ही उनके माता पिता को इसकी सूचना दें जिससे वो उनका चिकित्सा परीक्षण करायें और उपचार की व्यवस्था करें।

2. कक्षा में इस प्रकार के बालकों का प्रतिशत बहुत कम होता है। इसलिये अन्य सामान्य बालकों की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना होता है। इसलिये शिक्षक को चाहिए कि वह कक्षा से अलग उनकी आवश्यकताओं के अनुसार सहायता करे जिससे ऐसे बालक कक्षा में कठिनाई का अधिक अनुभव न करें।

3. शिक्षक को उनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए और उनके प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

4. शिक्षक को कक्षा में ऐसे बालकों को पढ़ने और लिखने के संदर्भ में अधिक ध्यान देना चाहिए और शिक्षक से इनकी दूरी अधिक नहीं होनी चाहिए।

5. शिक्षक को यह भी देखना चाहिए कि बालक श्रवण यन्त्रों का उपयोग नियमित रूप से करते हैं क्योंकि आरम्भ में यन्त्रों की सहायता लेने में बालकों को कठिनाई का अनुभव होता है।

6. शिक्षक को बड़े स्वाभाविक रूप में बोलना चाहिए और बोलने की गति भी तीव्र न हो क्योंकि श्रवण बाधित बालक धीमी गति से ही सुन और समझ पाते हैं।

7. शिक्षक को बोलते समय एक ही स्थान पर खड़ा रहना चाहिए क्योंकि बोलते समय चलने फिरने से ऐसे बालकों को अधिक कठिनाई होती है, क्योंकि शिक्षक की वाणी में उतार–चढ़ाव आ जाता है।

8. शिक्षक को श्यामपट्ट कार्य के बाद यह देखना चाहिए कि इन बालकों ने श्यामपट्ट से सही लिख लिया है।

9. शिक्षकों को नयी शब्दावली को पढ़ाने में सावधानी बरतनी चाहिए बोलना और लिखना दोनों ही कार्यों की सहायता लेनी चाहिए।

10. शिक्षकों को ऐसे बालकों को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए और अपनी पाठ्यवस्तु में पुनरावृत्ति भी करनी चाहिए। शब्दों के उच्चारण में सामूहिक उच्चारण प्रविधि की सहायता लेनी चाहिए। शिक्षक को जहॉ तक सम्भव हो अपनी पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण में दृश्य सहायक सामग्री का अधिक प्रयोग करना चाहिए। शिक्षण के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को श्यामपट्ट पर अंकित करना चाहिए। शिक्षक को पढ़ाते समय अनुकूलित आव्यूहों का प्रयोग करना चाहिए जिससे श्रवण बाधित बालक शिक्षण का पूरा लाभ उठा सकें।

11. शिक्षक को पाठ्य सहगामी क्रियाओं में श्रवण बाधित बालकों की भागीदारी का अवसर देना चाहिए। जो उनके रूचि और योग्यताओं के अनुरूप हो।

12. एक सामान्य शिक्षक श्रवण बाधितों की सभी कठिनाइयों को हल नहीं कर सकता इसलिये उसे स्रोत शिक्षक की भी सहायता लेनी चाहिए।

11.7 निःशक्त जनों के लिये राष्ट्रीय नीति (2006) के प्रावधान

अक्षम व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति यह मानती है कि वे राष्ट्र के लिये मूल्यवान मानव संसाधन हैं और उनके लिए एक वातावरण का निर्माण करके समान अवसर तथा अधिकारों के साथ सामाजिक भागीदारी की आवश्यकता है। यह संविधान की भावना तथा मंशा के अनुरूप भी है। यह राष्ट्रीय नीति इस बात को स्वीकार करती है कि विकलांग व्यक्ति एक बेहतर जीवन जी सकते हैं, यदि उनको समान अवसर तथा पुनर्वास सुविधाएँ मिलें।

यह नीति कुछ प्रावधानों को समाहित करती है। जैसे विकलांगों की शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप, भौतिक पुनर्वासन, परामर्श एवं चिकित्सा सहायता तथा सहायक उपकरणों का प्रावधान । यह नीति पुनर्वासन व्यावसायिकों के विकास को भी समाहित

करती है। इसके अतिरिक्त शैक्षिक पुनर्वासन जिसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्मिलित हैं तथा आर्थिक पुनर्वासन जिससे कि समाज में सम्मानजनक जीवन बिताया जा सके।

इस नीति को लागू करने की यांत्रिकता का विवरण भी इसमें प्रस्तुत किया गया है। इसके तहत सामाजिक न्याय तथा सशक्तीकरण मंत्रालय शीर्ष मंत्रालय के रूप में नीति के लागू करने से संबंधित सभी मामलों का समन्वय करेगा। केन्द्रीय समन्वय समिति इस राष्ट्रीय नीति को लागू करने के मामलों की देखरेख करेगी। ऐसी ही एक समिति राज्य स्तर पर होगी। पंचायती राज संस्थाएं तथा शहरी निकाय जिला स्तर पर विकलांग पुनर्वास केन्द्र के साथ समन्वित रूप से कार्य करेंगे और नीति के संदर्भ में स्थानीय मुद्दों के आधार पर प्रमुख भूमिका निभायेंगे।

लगभग सभी मंत्रालय जैसे गृह विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, ग्रामीण विकास, शहरी विकास, युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, रेलवे, विज्ञान एवं तकनीक, सांख्यिकी एवं योजना क्रियान्वयन, श्रम, पंचायती राज एवं महिला तथा बाल–विज्ञान, प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग, लोक उद्यम, राजस्व सूचना प्रौद्योगिकी एवं कार्मिक प्रशिक्षण इत्यादि इस नीति के लागू करने के लिये चिन्हित किये गये हैं। राज्य स्तर पर राज्य आयुक्त तथा केन्द्रीय स्तर पर विकलांगों के लिए मुख्य आयुक्त इस नीति को लागू करने में प्रमुख भूमिका निभायेंगे।

30 मार्च, 2007 को भारत ने निःशक्त जनों के अधिकारों के संयुक्त राष्ट्र अभिसमय पर हस्ताक्षर किया जो कि 3 मई, 2008 को प्रभाव में आया। इसमें सभी संबंधित मंत्रालयों से अभिसमय के प्रावधानों को लागू करने का अनुरोध किया गया। महिलाओं तथा बच्चों पर अधिक बल दिया गया। नियमों तथा आदेशों में सुधार की संभावना पर विचार का आग्रह भी किया गया। सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों एवं संघ क्षेत्र के प्रशासकों से अनुरोध किया गया कि वे अभिसमय के प्रावधानों का संदर्भ लेते हुए उसे लागू करें ताकि एक राष्ट्रीय प्रतिवेदन बनाया जा सके।

निःशक्त व्यक्तियों के लिए अधिनियम, 1995 के अन्तर्गत निःशक्तता प्रमाण पत्र की व्यवस्था उनके लिये की गयी, जिनकी अक्षमता 40 प्रतिशत से कम न हो। अक्षमता से संबंधित लाभ लेने के लिए यह चिकित्सीय प्रमाण पत्र आवश्यक माना गया। 2009 में नियम में सुधार करके और सरल कर दिया गया, जिसमें चिकित्सा बोर्ड के स्थान पर चिकित्साधिकारी द्वारा प्रमाण पत्र जारी करने की बात की गयी। 1995 के निःशक्तता अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत केन्द्रीय समन्वय समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया। इसमें अध्यक्ष के रूप में सामाजिक न्याय तथा सशक्तीकरण मंत्री को अध्यक्ष तथा सांसदों और निःशक्त व्यक्तियों के लिए बने संगठनों के प्रतिनिधियों

को सदस्य बनाया गया । इसी अधिनियम के भाग 9 के अंतर्गत केन्द्रीय अधिशासी समिति का गठन करने की बात कही गयी। अध्यक्ष के रूप में सामाजिक न्याय एवम् सशक्तीकरण विभाग के सचिव को अधिकृत किया गया। 1995 अधिनियम के अन्तर्गत यह कहा गया कि निःशक्तों को एक अनुकूलतम स्तर तक भौतिक, एन्द्रिक, बौद्धिक, मानसिक अथवा प्रकार्यात्मक सामाजिक स्तर तक पहुँचाना है।

1995 के निःशक्तता अधिनियम में पुनर्वास हेतु सरकार एवं स्थानीय प्राधिकरणों की आर्थिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए कार्य करने की बात की गई। इसके अन्तर्गत गैर सरकारी संगठनों को सहायता देना तथा पुनर्वास संबंधी नीतियॉ बनाते समय इन संगठनों की भी सहायता लेना आवश्यक बताया गया।

निःशक्त जनों के पुनर्वास के लिए आवश्यक घटक के अंतर्गत सहायक उपकरणों एवं यंत्रों की उपलब्धता, शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार प्राप्ति में सहायता, स्वतंत्र जीवन हेतु प्रशिक्षण या सहायता की बात सम्मिलित की गई।

केन्द्र सरकार विभिन्न गैर सरकारी संगठनों को पंचवर्षीय योजनाओं के तहत सहायता अनुदान देकर पुनर्वास कार्यक्रमों को गति प्रदान की गई है। दीनदयाल निःशक्त जन पुनर्वास योजना के अन्तर्गत शिक्षा तथा स्वतंत्र जीवन के लिए प्रशिक्षण अथवा सहायता प्रदान की जा रही है और विकलांगों को उपकरण की खरीद और उनका स्थापना करने के लिए योजना चलाई जा रही है।

इसी प्रकार सामाजिक न्याय तथा सशक्तिकरण विभाग की ओर से पुनर्वास संबंधी प्रमुख योजनाएं चलायी जा रही हैं। यंत्रों के प्रयोग एवं स्थापना के साथ ही दीनदयाल पुनर्वास योजना के अंतर्गत एक ही छत के नीचे विद्यालय पूर्व के हस्तक्षेपों से लेकर कुष्ठ मुक्त लोगों के लिए कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

एक क्रियान्वयन की योजना भी निःशक्तता अधिनियम के अंतर्गत चल रही है, जिसके तहत बाधा रहित समर्थन एवं सेवाओं के संदर्भ में जागरूकता के मुद्दे प्रमुख स्थान पर रखे गये हैं। इसके साथ ही निजी क्षेत्र के रोजगार प्रदाताओं को प्रोत्साहन देने की भी योजना है, जो इन विकलांगों को रोजगार दे रहे हैं।

सात राष्ट्रीय संस्थाएं भी अपने क्षेत्रीय केन्द्रों तथा पाठ्यक्रमों के माध्यम से काम कर रही हैं। ये संस्थाएं हैं – राष्ट्रीय दृष्टिबाधित संस्थान, देहरादून, बहु निःशक्त जन सशक्तीकरण संस्थान चेन्नई, स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीय पुनर्वास प्रशिक्षण एंव अनुसंधान संस्थान, कटक, श्रवण बाधित राष्ट्रीय संस्थान, मुम्बई, मानसिक विकलांग संस्थान, सिकंदराबाद, राष्ट्रीय अस्थि विकलांग संस्थान, कोलकाता, पं0 दीनदयाल उपाध्याय शारीरिक विकलांग संस्थान, नई दिल्ली इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

क्षेत्रीय तथा जिला स्तर के केन्द्रों की भी स्थापना की गई है। इसमें संयुक्त क्षेत्रीय केन्द्र तथा जिले पर स्थापित पुनर्वास केन्द्र का प्रावधान है। सुंदरनगर, श्रीनगर, लखनऊ, गुवाहाटी, पटना तथा भोपाल में संयुक्त क्षेत्रीय केन्द्र काम कर रहे है।

विकलांगों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए शीर्ष संस्थान के रूप में राष्ट्रीय निःशक्त जन विकास निगम की स्थापना की गई है। जो राज्यों की सहायता से विकलांग जनों तक धन पहुँचाने के लिए कड़ी के रूप में कार्य करता है। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी संगठनों को सूक्ष्म ऋण योजना के तहत धन उपलब्ध कराता है, जिससे कि निःशक्त जन स्वरोजगार अपना कर अपना आर्थिक विकास कर सकें, अपने उद्यमशीलता के कौशलों का प्रभावी प्रबंधन स्वरोजगार हेतु कर सकें। अपने व्यावसायिक तथा तकनीकी ज्ञान की प्रसार हेतु ऋण प्राप्त कर सकें एवम् अपने उत्पाद का विपणन कर सकें।

विकलांगों के लिए सशक्तीकरण के राष्ट्रीय पुरस्कारों की व्यवस्था की गयी है। विशेषतः उनके व्यक्तियों एवं संस्थाओं के लिए जिन्होंने सर्वोत्तम उपलब्धियॉ प्राप्त की हो। इनका उद्देंश्य निःशक्त जनों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करना है। ये पुरस्कार प्रतिवर्ष 3 दिसम्बर (विश्व विकलांगता दिवस) को दिये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के कुल 12 वर्गों के अंतर्गत ये पुरस्कार दिये जाते हैं। राष्ट्रीय विकलांग कल्याण निधि की स्थापना 1983 में की गई और यह वर्तमान समय में विकलांग छात्रों को छात्रवृत्ति उपलब्ध कराती है। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय (16.04.2004) के अनुसार विकलांग व्यक्तियों के लिए सशक्तीकरण के लिए एक न्यास निधि की स्थापना की गई।

विकलांग जन के संदर्भ में किये गये विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन की सुनवाई हेतु निःशक्त जनों के लिए मुख्य आयुक्त के कार्यालय की स्थापना की गई। मानसिक विकारों तथा अन्य बहुविकलांगता अधिनियम को 1999 में पारित किया गया। इसको सहायता प्रदान करने के लिए बनाया गया अधिनियम ऐसे विकलांगों के सम्मान, सहयोग एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों की सहायता लेता है।

भारतीय पुनर्वास परिषद के द्वारा 1992 में एक अधिनियम बनाया गया, जिसमें वर्ष 2000 में सुधार किया गया। यह परिषद पुनर्वास व्यावसायिको एवं कार्मिकों के प्रशिक्षण तथा शोध एवम् विशिष्ट शिक्षा के लिए नियमन एवम् अनुश्रवण हेतु उत्तरदायित्व है। वर्ष 1972 में भारत का कृत्रिम अंग निर्माण निगम स्थापित किया गया, जिसमें टिकाऊ एवं मानकों के अनुरूप गुणवत्ता वाले सहायक उपकरणों का निर्माण किया जाता है।

1995 का अधिनियम विकलांगों को सार्वजनिक भवनों तक बाधा रहित पहुँच के

लिए विकलांग साइकिलों तथा रैम्प की व्यवस्था का प्रावधान करता है। सरकारी और निजी क्षेत्रों में निःशक्त जनों की सुविधा के लिए अंतरजाल (इन्टरनेट) का भी प्रावधान है। एडूसेट (EDUSAT) के चैनल नवशिखर की स्थापना भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के सहयोग से की गयी है।

इनके अतिरिक्त महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, मानव विकास संसाधन मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, शहरी विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय, श्रम एवम् रोजगार मंत्रालय, उच्च शिक्षा विभाग, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग, विज्ञान एवं तकनीकी विभाग तथा वैज्ञानिक एवम् औद्योगिक अनुसंधान विभाग अपनी निश्चित नीतियों और विकलांगता से संबंधी मुद्दों पर कार्यक्रम एवं गतिविधियॉ समय–समय पर चलाते रहते हैं।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. विकलांग दिवस कब मनाया जाता है?

....

....

....

5. मानसिक विकारों तथा अन्य बहुविकलांगता अधिनियम को कब पारित किया गया?

....

....

....

11.8 सारांश

एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को पुष्ट करने के लिए आवश्यक है कि अधिगम असमर्थी एवं विकलांग बालकों की पहचान की जाय और कक्षा में उनकी समस्या को दूर किया जाय। इसके उपरांत इनकी समस्याओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पहल की जाय। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय आयोगों एवं समितियों का गठन अपरिहार्य है। अपने देश में भी स्वाधीनता के उपरांत नियुक्त आयोगों एवं समितियों ने विकलांग जनों के कल्याण एवं पुनर्वास संबंधी कई सुझाव दिया। अलग से 1995 का

अधिनियम बनाया गया तथा 2006 में एक राष्ट्रीय नीति भी बनाई गयी। इन सबने व्यापक विभिन्न स्तरीकृत सुझावों के माध्यम से विकलांगों की दशा में काफी सुधार हुआ।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत निःशक्त जनों से संबंधित सुझावों का वर्णन कीजिए।
2. एक कक्षा में अधिगम असमर्थी बालक की पहचान आप कैसे करेंगे?
3. कक्षा कक्ष में अधिगम असमर्थी बालकों की शिक्षा हेतु अध्यापक कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
4. निःशक्त जनों से संबंधित राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत कुछ कल्याणकारी सुझावों का विवरण दीजिए।
5. निःशक्त जनों की शिक्षा एवम् सामाजिक समावेशन के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 3 प्रतिशत स्थान सुरक्षित है
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति समीक्षा समिति
3. टेकटाको
4. 3 दिसम्बर
5. वर्ष 1999

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, लाल रमन बिहारी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ 2010--11
2. चौहान, सी.पी.एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004।
3. भारत, 2004, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
4. शर्मा, आर.ए., विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2007 ।

5. पाण्डेय, रामशकल, उदीयमान भारत समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 ।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ।

7. गुप्ता, आर.पी. तथा ए. हुसैन, इश्यूज इन इंडियन एजूकेशन, राधा पब्लिकेशन्स, 1998 नई दिल्ली ।

इकाई – 12 : कार्यक्रम, योजनाएं, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवं नीतियॉ

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 कार्यक्रम एवं योजनाएं

12.3.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना में निःशक्त व्यक्तियों के लिए प्रावधान

12.4 अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवं नीतियॉ

12.5 सारांश

12.6 अभ्यास प्रश्न

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

12.1 प्रस्तावना

निःशक्त जनों को राष्ट्रीय शिक्षा एवं समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करने के लिए नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण सरकारों की प्राथमिकता में रहता है। विविध ा क्षत्रों में इनके योगदान को सुनिश्चित करने तथा सभी के समान अधिकारों का उपयोग करने की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रयास किये जाते रहे हैं। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों में निःशक्त जनों के प्रति दृष्टिकोण में काफी बदलाव आया है ओर सरकारें उनको अधिकार देने के प्रति पहले से काफी सजग और सचेष्ट हुई है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि –

1. अपने देश में निःशक्त जनों के लिए किये गये शैक्षिक एवं सामाजिक प्रयासों से अवगत हो सकेंगे।
2. निशक्त जनों के जीवन की प्रमुख समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

3. निःशक्त जनों के समग्र विकास हेतु केन्द्र एवं राज्य स्तर पर किये जा रहे प्रयासों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निःशक्त जनों के लिए समर्पित अभिसमय के सभी मुख्य प्रावधानों से अवगत हो सकेंगे।

12.3 कार्यक्रम एवं योजनाएँ

निःशक्त जनों की समस्याओं का समाधान एवं उनके स्तर में सुधार के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना में कई प्रावधान किये गये।

12.3.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना में निःशक्त व्यक्तियों के लिए प्रावधान

भारत में कई लाख विकलांग बालक शिक्षा के अवसरों का लाभ नहीं प्राप्त कर पाते हैं, जबकि संविधान के अनुसार प्रत्येक बालक को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है। विकलांग बालकों को शिक्षा प्राप्त करने में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार 0 से 4 आयु वर्ग में 14 लाख व 4–15 आयु वर्ग के 43 लाख बच्चे हैं । इन बच्चों का मात्र 5 प्रतिशत बच्चे देश के विभिन्न विशेष विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर अपने को रोजगार के योग्य बनाते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार विकलांगों की संख्या 268.10 लाख थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में अक्षम बालकों की शिक्षा देने का प्रावधान किया गया है। शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को सामान्य व्यक्तियों के साथ सहभागी के रूप में समन्वय करके उन्हें सामान्य वृद्धि के लिए तैयार किया जाय, जिससे वह अपनी क्षमताओं का अच्छी तरह से उपयोग कर सकें और देश की उन्नति में अपना योगदान कर सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की धारा 4.9 में निम्नलिखित सुझाव दिये गये ।

1. जहाँ तक सम्भव होगा शारीरिक रूप से थोड़े विकलांग बच्चों की शिक्षा व्यवस्था अन्य सामान्य बच्चों के साथ की जायेगी।
2. जहाँ तक सम्भव हो विकलांगता ग्रस्त बच्चों के लिए छात्रावास युक्त विशेष विद्यालयों की स्थापना की जायेगी।
3. विकलांगता ग्रस्त बच्चों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जायेगी।
4. निःशक्त बच्चों की विशेष समस्याओं को सुलझाने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम का पुर्नगठन किया जाएगा।

5. निःशक्त बच्चों की शिक्षा के स्वयंसेवी प्रयासों को हर संभव उपाय को प्रोत्साहित किया जायेगा।

कार्य योजना 1992

1. निःशक्त बच्चों के लिए पाठ्य सामग्रियों में पाठ्यक्रम में लचीलेपन का विशेष महत्व है। यदि बाल केन्द्रित शिक्षा का व्यवहार किया जाए तो इन बच्चों की विशेष आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं।
2. निःशक्तता प्राप्त बच्चों की शिक्षा में एक दूसरे के लिए बच्चों को आपसी सहायता बड़ी कक्षाओं और बहुश्रेणीय अध्यापन को देखते हुए एक कारगर संसाधन है।

2007 की विकलांगों से सम्बन्धित भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट में मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं राज्यों के शिक्षा विभाग से कहा गया कि समयबद्ध तरीके से प्रत्येक विद्यालय में एक विशेष शिक्षक रखे जाएं। सभी राज्यों के शिक्षा विभाग अपने पाठ्यक्रमों को निःशक्त जनों के भी अनुकूल बनाने का प्रयास करें। निःशक्त जनों के शिक्षा उपलबध हों इस हेतु मुख्य धारा के विद्यालयों में समावेश्न को प्रोत्साहन किया जाये। परीक्षा के दौरान इन विद्यार्थियों को सुविधा दी जाय।

विकलांगों की समस्याओं का प्रभावी समाधान करने के लिए राष्ट्रीय/उच्च स्तरीय संस्थाओं की स्थापना की गयी है। जिनमें राष्ट्रीय दृष्टिहीन संस्थान देहरादून, राष्ट्रीय अस्थि रोग विकलांग संस्थान, कोलकाता, अल यावर जंग राष्ट्रीय बधिर संस्थान, मुम्बई, राष्ट्रीय मानसिक विकलांग संस्थान, सिकन्दराबाद, राष्ट्रीय पुनर्वास प्रशिक्षण संस्थान अनुसंधान संस्थान, कटक, उड़ीसा और शारीरिक विकलांग संस्थान, नई दिल्ली की स्थापना की गयी है। आत्म विमोह, मस्तिष्क पक्षाघात, मंद बुद्धि के शिकार व्यक्तियों के लिए और बहु विकलांगता अधिनियम 1999 के तहत राष्ट्रीय ट्रस्ट की स्थापना की गयी है। जिसका प्रमुख उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाना है।

विकलांगों के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रमों का मानकीकरण करने, देश भर के सभी प्रशिक्षण संस्थानों में स्तर की समानता रखने, देश में तथा देश के बाहर संस्थानों/ विश्वविद्यालयों को उनके प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों हेतु मान्यता देने और पुनर्वास क्षेत्र में योग्य व्यवसायिक लोगों को एक केन्द्रीय पुनर्वास पंजिका के तहत नामांकित करने के लिए भारतीय पुर्नवास परिषद की स्थापना, भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, 1992 के तहत की गयी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था में हल्के तथा अधिक विकलांगता वाले बच्चे और युवाओं के लिए एकीकृत शिक्षा की योजना

(IEDC) का प्रारम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों तथा गैर सरकारी संगठनों को शत प्रतिशत वित्तीय सहायता देने का प्रावधान है। 2.84 लाख बच्चे एक लाख स्कूलों में इस योजना से लाभान्वित हुए।

अनेक राज्यों में उनकी आर्थिक क्षमता के अनुसार विकलांगों को निःशक्तता पेंशन प्रतिमाह दी जा रही है। कई राज्य इनको अपनी क्षमता के अनुसार बेरोजगारी भत्ता दे रहे हैं। शिक्षा के उच्च स्तर पर विश्वविद्यालयों द्वारा भी निःशक्त जनों के अध्ययन हेतु अलग केन्द्र उपलब्ध कराये गये हैं अत्यंत कम ब्याज दर पर विकलांगों को रोजगार तथा तकनीकी विकास के लिए ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी गयी है। वित्त पोषण की ये योजनाएं विकलांगता की प्रकृति और स्तर के अनुसार ऋण उपलब्ध कराती है।

शारीरिक दोषयुक्त व्यक्ति के लिए समान अवर, उनके पूर्ण योगदान एवं अधिकारों की सुरक्षा के संदर्भ में 1995 का अधिनियम पारित किया गया।

1. इसके अंतर्गत उपयुक्त सरकारी तथा स्थानीय अधिकारी –

   अ. शारीरिक रूप से बाधित प्रत्येक बालक जब तक वह 18 वर्ष तक हो उसके उपयुक्त वातावरण में निःशुल्क शिक्षा तथा शिक्षा संस्थान में प्रवेश को सुनिश्चित करेंगे।

   ब. सामान्य स्कूलों में बाधित तथा सामान्य बालकों में समन्वय के प्रयास करेंगे।

   स. विशिष्ट शिक्षा संस्थान सरकारी अथवा गैर सरकारी क्षेत्रों में स्थापित कराने पर बल देंगे। जिससे भारत देश के किसी भी भाग में रहने वाले बाधित बालक स्कूल में प्रवेश पा सकेंगे।

   द. शारीरिक बाधित बालकों के लिये व्यवसायिक प्रशिक्षण के साधन विशिष्ट शिक्षा संस्थानों को उपलब्ध कराने का प्रयास करेंगे।

2. उपयुक्त सरकारी तथा स्थानीय अधिकारी सरकारी विज्ञापन के माध्यम से निम्नलिखित कार्यों के लिए योजना बनायेंगे –

   अ. शारीरिक रूप से बाधित बालक जो कक्षा 5 तक किसी शिक्षा संस्थान में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं अथवा जो किसी कारणवश पूर्ण कालिक रूप से शिक्षा लेने में असमर्थ हैं । ऐसे बालकों के लिए अंश कालिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

ब. 16 वर्ष अथवा इससे अधिक आयु के बालकों के लिये व्यवहारिक साक्षरता उपलब्ध कराने हेतु विशिष्ट अंश कालिक कक्षाओं की व्यवस्था करना।

स. पिछड़े हुए क्षेत्रों में उपलब्ध मानव संसाधन का प्रयोग तथा उनका उपयुक्त अभिविन्यास करके नियमानुसार शिक्षा देने का प्रबन्ध करना।

द. मुक्त विद्यालय अथवा मुक्त विश्वविद्यालय के माध्यम से शिक्षा उपलब्ध कराना।

य. इलैक्टानिक अथवा किसी अन्य माध्यम द्वारा कक्षाओं तथा विचार विमर्श उपलब्ध करानां।

3. उपयुक्त अपंग बालकों की विशिष्ट शिक्षा के लिये सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता विशिष्ट शिक्षा, उपकरण संसाधन , सामग्री आदि तथा इस क्षेत्र में अन्वेषण हेतु शिक्षा विदों तथा विभिन्न कार्य क्षेत्रों में कार्यरत विशेषज्ञों की सहायता लेना।

4. उपयुक्त सरकारें आवश्यकतानुसार उपयुक्त संख्या में शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित करेंगी तथा राष्ट्रीय तथा अन्य गैर सरकारी संस्थाओं की शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहायता करेंगी जिससे प्रशिक्षित शिक्षक अपंग बालकों की शिक्षा के लिये विशिष्ट स्कूलों तथा समन्वित शिक्षा संस्थाओं में उपलब्ध हों।

5. उपयुक्त सरकारें एक विज्ञापन द्वारा विस्तृत शिक्षा योजना बनायेगी जिसके अन्तर्गत अपंग बालकों हेतु प्राविधान बनाये जायेगे।

अ. स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने हेतु शारीरिक दोष युक्त बालकों के लिये यातायात सुविधा या ऐसे बालकों के माता–पिता अथवा संरक्षक को आर्थिक भत्ता (Incentive) देना।

ब. व्यावसायिक प्रशिक्षण देने वाले स्कूल, कालेज या अन्य संस्थाओं से प्रवेश संबंधी बाधाओं को हटाना।

स. स्कूल में उपस्थित बाधित बालकों के लिए यूनिफार्म, पुस्तकें तथा अन्य सामग्रियों का वितरण करना।

द. शारीरिक बाधित बालकों के लिए छात्रवृत्ति।

य. एक उपयुक्त समिति का गठन करना जो अपंग बालकों का माता–पिता अथवा संरक्षकों की उनके बालकों के स्थापन हेतु कठिनाइयों को दूर कर सकें।

र. पूर्ण दृष्टि बाधित अथवा कम दृष्टि बाधित छात्रों के लाभ हेतु परीक्षण व्यवस्था में उपयुक्त परिवर्तन करना, जैसे पूर्णतया गणित पर आधारित प्रश्न ।

ल. अपंग बालकों के लाभ के लिये पाठ्यक्रम में उपयुक्त परिवर्तन करना तथा उनका अनुकूलन करना।

व. श्रवण बाधित बालकों की सुविधा के लिये पाठ्यक्रम में परिवर्तन जैसे केवल एक भाषा का पढ़ाया जाना।

6. सभी शिक्षा संस्थायें अन्धे छात्रों या दृष्टि बाधित छात्रों के लिए सुविधायें उपलब्ध करायेंगी।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. किस पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत (IEDC) योजना का प्रारम्भ किया गया

....

....

....

2. शारीरिक दोषयुक्त व्यक्ति के लिये समान अवसर अधिकारों की सुरक्षा के संदर्भ में किस वर्ष अधिनियम पारित किया गया ?

....

....

....

12.4 अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवं नीतियॉ

विकलांगता की व्यापकता को देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये गये। 1981–92 को अक्षम व्यक्तियों की दशाब्दी संयुक्त राष्ट्र संघ ने घोषित की थी। अक्षम व्यक्तियों के लिए अवसरों की समानता पर मानक नियम 1993 में सामान्य सभा द्वारा ग्रहण किया गया। वर्ष 2000 में अन्तर्राष्ट्रीय निःशक्तता से संबंधित पॉच देशों की गैर सरकारी संस्थाओं के नेताओं ने एक घोषणा जारी की और सहयोग की अपेक्षा की।

संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा ने मैक्सिकों द्वारा स्थापित एक तदर्थ समिति के प्रस्तावों का संज्ञान लिया जिसने निःशक्त जनों के अधिकार एवं सम्मान की सुरक्षा एवं वृद्धि के लिए व्यापक तथा एकीकृत प्रस्ताव प्रस्तुत किए। बाद में लैटिन अमरीकी क्षेत्रीय समूह के साथ मैक्सिको ने विचारों का आदान प्रदान शुरू किया। इसमें न्यूजीलैण्ड ने प्रमुख भूमिका निभायी। इसमें जार्डन, कोस्टा, रीका, चेक गणराज्य, दक्षिण अफ्रीका ने भी सहयोग किया । बहुत कम समय में अभिसमय को समर्थन के रूप में ऐतिहासिक सफलता मिली। 159 देशों ने 2007 में इस पर हस्ताक्षर किये। अभिसमय को इसकी भूमिका के रूप में मान्यता देने तथा गुणवत्ता के आधार पर न्यूजीलैण्ड के गवर्नर जनरल आनन्द सत्यानंद को 2008 का विश्व निःशक्तता पुरस्कार दिया गया ।

यह अभिसमय परंपरागत नागरिक विधि का अनुसरण करता है और "सभी मानवाधिकार सार्वजनिक, अविभाज्य, अंतःनिर्भर तथा अंतःसम्बन्धित हैं" के आधार पर कार्य करता है।

13 दिसम्बर, 2006 को संयुक्त राष्ट्र संघ के न्यूयार्क मुख्यालय में निःशक्त जनों के अधिकारों के इस अभिसमय (convention) को अंगीकृत किया गया। इसके अन्तर्गत 50 धाराएं सम्मिलित हैं। अधिनियम की धारा 1 इसके उद्देश्य को निर्धारित करती है, जिसके अंतर्गत निःशक्त जनों के मानवाधिकारों एवम आधारभूत स्वतंत्रताओं को वर्धित करने, रक्षित करने और सुनिश्चित करने की बात कही गयी है। अभिसमय की दूसरी व तीसरी धारा संप्रेषण के सामान्य नियमों, तार्किक आवास सुविधा एवं सार्वजनिक रचना से संबंधित है। अभिसमय की धारा 4 से 32 राज्य के संवैधानिक उत्तरदायित्वों से संबंधित हैं और नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही प्रताड़ना के विरूद्ध अभिसमय से संबंधित हैं यह अभिसमय धारा 19 के अंतर्गत पहुॅच एवं सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग से संबंधित अधिकारों के संदर्भ में है। अभिसमय की 20वी धारा व्यक्तिगत गतिशीलता से संबंधित है। अभिसमय की 26वीं धारा आवास एवं पुर्नवास से संबंधित है। धारा 29 तथा 30 निःशक्त जनों को राजनीतिक, सार्वजनिक एवं सांस्कृतिक जीवन, पुनः सृजन एवं खेल से संबंधित अधिनियम की धारा 8 मानवाधिकारों से संदर्भ में जागरूकता उत्पन्न करती है औरा धारा 9 सड़कों , भवनों तथा सूचना तक निःशक्त जनों की पहुॅच को सुनिश्चित करती है। धारा 33 राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों द्वारा प्रतिवेदन एवं अनुश्रवण को शासित करती है। धारा 49 इस अभिसमय को उपलब्ध होने वाले प्रारूप से संबंधित है।

यह अभिसमय कुछ निर्देशक सिद्धान्तों पर आधारित है, जिनमें सम्मान, व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता, भेदभाव हीनता, समाज में पूर्ण तथा प्रभावी

भागीदारी एवं समावेशन, विभिन्नता के लिए सम्मान तथा निःशक्त जनों का मानवीय विविधता एवम् मानवीयता के आधार पर स्वीकरण, अवसरों की समानता, सुविधाओं एवं संसाधनों तक पहुँच, महिलाओं एवं पुरूषों के बीच समानता, निःशक्त बच्चों की उभरती हुयी क्षमताओं के प्रति सम्मान और निःशक्त बच्चों की पहचान के संदर्भ सम्मिलित हैं।

यह अभिसमय निःशक्तता को परिभाषित करता है, तार्किक आवास के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है, भेदभाव से बचाव को प्राथमिकता देता है, सूचनाओ तक पहुँच का मार्ग प्रशस्त करता है। खतरे की परिस्थितियों का निर्धारण करता है। न्याय तक पहुँच को सुनिश्चित करता है, समावेशी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, पोढ़ शिक्षा तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करता है। यह अभिसमय निःशक्त जनों के स्वास्थ्य अधिकारों और इनके एकता को संरक्षित करता है। आवास एवं पुर्नवास की सुविधा तथा भागीदारी के अधिकारों को सुनिश्चित करता है। अभिसमय के अन्तर्गत कार्य तथा रोजगार की उपलब्धता सुनिश्चित की गयी है। तथा उपयुक्त स्तर के जीवन और सामाजिक सुरक्षा को स्थान दिया गया है। इनको मत देने का भी अधिकार है। इस अभिसमय में अक्षम व्यक्तियों के सभी आयामों पर विचार किया गया है। यह अभिसमय विकलांग जनों के सम्मान, स्वतंत्रता, मानवाधिकार के संदर्भ में प्रोत्साहन देने एवं सुनिश्चित करने के उद्‌देश्य़ से प्रेरित है।

निःशक्त जनों के लिये बने अभिसमय के अनुश्रवण **(Monitoring)** हेतु अधिकारों से सम्बन्धित एक समिति का गठन किया गया है। जो अभिसमय में सम्मिलित देशों से निरन्तर प्रतिवेदन प्रस्तुति और अधिकार संरक्षण की दशा एवं दिशा से संबंधित विवरणों को प्राप्त करने की अपेक्षा करती है। यह समिति प्राप्त प्रतिवेदनों पर विचार करती है और उपयुक्त टिप्पणी के साथ संबंधित राष्ट्रों को वापस करती है। यह समिति 18 स्वतंत्र सदस्यों वाली है। और अभिसमय में जोड़े गये वैकल्पिक प्रोटोकाल के तहत व्यक्तिगत शिकायतों को सुनती है। शिकायतों को सुनते समय यह समिति उल्लंघनों का परीक्षण करती है। समिति की बैठक सामान्यतः वर्ष में दो बार जिनेवा में होती है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. 1981–92 को अक्षम व्यक्तियों की दशाब्दी किसने किसने घोषित किया?

....

....

....

4. 13 दिसम्बर 2006 को संयुक्त राष्ट्र संघ को न्यूयार्क मुख्यालय में निशक्त जनों को अधिकारों के अन्तर्गत कितनी धारायें सम्मिलित हैं?

....

....

....

12.5 सारांश

निःशक्त जनों के संबंध में शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के क्रम में विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं, अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों एवं नीतियों का पर्याप्त योगदान रहा है। अनेक कल्याणकारी कार्यक्रमों तथा योजनाओं के माध्यम से इस दिशा में सकारात्मक प्रयासों का नतीजा है कि आज विकलांग जन अपने को एक सुरक्षित तथा समान अवसर वाले समाज के नागरिक के रूप में को स्थापित पा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय ने व्यापक मंथन के उपरान्त जो जागरूकता उत्पन्न की है, वह सभी राष्ट्रों के लिए दिशा निर्देशिका का कार्य कर रही हैं अपने देश में भी इनका व्यापक असर देखने को मिल रहा है।

12.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में निःशक्त जनों के लिए किये गये शैक्षिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
2. निःशक्त जनों की समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
3. निःशक्त जनों को राष्ट्र की मुख्य धारा सम्मिलित करने के लिए केन्द्रीय स्तर पर किये गये प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।
4. निःशक्त जनों के लिए निर्मित अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय के प्रमुख बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए।

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना ।
2. 1995 में ।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ ने ।

4. 50 धाराएं ।

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, लाल रमन बिहारी, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ 2010–11

2. चौहान, सी.पी.एस., कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004।

3. भारत, 2004, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

4. शर्मा, आर.ए., विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2007 ।

5. पाण्डेय, रामशकल, उदीयमान भारत समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ।

7. गुप्ता, आर.पी. तथा ए. हुसैन इश्यूज इन इंडियन एजूकेशन, राधा पब्लिकेशन्स, 1998, नई दिल्ली।

8. वार्षिक प्रतिवेदन 2010–11, शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ।

खण्ड : पाँच

शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ

Issues and Trends in Education

इकाई -13 5
शिक्षा की चुनौतियाँ और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई -14 53
समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई -15 73
सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	पूर्व निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0एस0मिश्रा	आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 अखिलेश चौबे	पूर्व आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 विद्या अग्रवाल	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इला0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डा0 रामेन्द्र गुप्ता	एसोसियएट प्रोफेसर, डी0वी0 कालेज, उरई जालौन (इकाई-1,2,3)
प्रो0 सुमित्रा सिंह	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई- 7,8,9,10,11,12)
प्रो0 सुषमा पाण्डे	आचार्य, शिक्षा विभाग,दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर (इकाई-4,5,6)
डा0 बुद्ध प्रिय	असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (इकाई- 13,14,15)

सम्पादक

प्रो0 प्रतिभा उपाध्याय	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परिमापक

प्रो0उषा मिश्रा	आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

समन्वयक

डॉ0 रंजना श्रीवास्तव	प्रवक्ता, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ0 जी0 एस0 शुक्ल	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN-UP-978-93-83328-04-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन -उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

B.Ed.SE-02 : समकालीन भारत और शिक्षा

खण्ड–एक शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई–1 शिक्षा और शिक्षा के अभिकरण

इकाई–2 शिक्षा दर्शन

इकाई–3 भारतीय चिन्तक और समकालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य

खण्ड–दो विविधता का अवबोध

इकाई–4 विविधता की अवधारणा एवं प्रकार

इकाई–5 खेल एवं अधिगम में विविधता

इकाई–6 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विविधता एवं अधिगम में विविधता

खण्ड–तीन समकालीन मुद्दे और सम्बन्ध

इकाई–7 विद्यालयी शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं इससे संबंधित मुद्दे शिक्षा का अधिकार एवं सार्वजनिक पहुँच

इकाई–8 गुणवत्ता एवं समानता के मुद्दे – भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर विशेषतः बालिकाओं, कमजोर वर्गों एवम् निःशक्तजनों के संदर्भ में

इकाई–9 समान शैक्षिक अवसर और विद्यालयी असमानता

खण्ड–चार शैक्षिक आयोग एवं नीतियाँ

इकाई–10 शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधान

इकाई–11 राष्ट्रीय आयोग एवं अधिनियम, निःशक्तता संबंधी नीतियाँ : 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1986, 1992), निःशक्तजनों के लिए राष्ट्रीय नीति, 2006

इकाई–12 कार्यक्रम, योजनाएँ, अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एवम् नीतियाँ

खण्ड–पाँच शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई–13 शिक्षा की चुनौतियाँ और मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

इकाई–14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय

इकाई–15 सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

ख़ण्ड–एक : शिक्षा में मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खण्ड 'शिक्षा में मुद्दे और प्रवृत्तियाँ' के अन्तर्गत इकाई– 13, 14, 15 में शिक्षा के विभिन्न मुद्दे यथा समावेशी शिक्षा, समुदाय आधारित शिक्षा तथा पूर्व प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक तक की विविध प्रवृत्तियों की चर्चा विस्तार से की गई है।

इकाई 13 मे उन चुनौतियों, मुद्दो तथा उनके समाधान पर चर्चा किया। जिसमें स्वतंत्रता के पश्चात्, केन्द्र एवं राज्य सरकारों के द्वारा अनेक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, अनेक समितियों ने शिक्षा के क्षेत्र में परिर्वतन की आवश्यकता पर विचार किया तथा अनेक शिक्षाविदों ने शैक्षिक सुधारों की लम्बी–लम्बी श्रृखलाएँ प्रस्तुत हैं। इनमें से कुछ सुझावों को कियान्वित किया गया जबकि कुछ सुझावों को विभिन्न कारणों से लागू नहीं किया जा सका है। निःसंदेह विगत छह दशकों में शैक्षिक प्रसार व गुणवता वृद्धि की दृष्टि से काफी कार्य किया गया है, फिर भी यह आवश्यकता की दृश्टि से अपर्याप्त ही है। अभी भी शिक्षा की अनेक चुनौतिया एवं मुद्दें है। जनयसंख्या शिक्षा ने विकास एवं प्रसार को अनुपयुक्त बना दिया है। जनसंख्या की वृद्धि से शिक्षा की संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनो ही प्रकार की उन्नति आवश्यकतानुसार नहीं हो सकी। आज भी विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का अभाव है।

इकाई 14 में विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा के संप्रत्यय पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विशेष के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है, इनके विद्यालय पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग–अलग होती है। एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपको सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा में मंद बुद्धि बालकों की पहचान एवं शिक्षा, दृष्टिबाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा तथा श्रवणवाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा की चर्चा हुई है।

इकाई 15 में वर्णित समुदाय आधारित शिक्षा छात्रो के क्षमताओं को पहचानने तथा आस–पास के समुदाय की आवश्यकताओं को पूर्ति करने में मदद करता है। इसमें विद्यार्थी मूल्यों को प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होते है। जो स्वतंत्रता के साथ अपनी बातों को अभिव्यक्त कर सकते है, उन्हें बढ़ा सकते है तथा वे अपने समुदाय से बाधित समस्याओं को दूर कर सकते है। अगर समुदाय आधारित शिक्षा के इस मॉडल को लम्बे समय तक प्रयोग में लाया जाता है, तो समुदाय इस प्रक्रिया में शामिल हो जाएगा, उसके बाद एक चक्रीय शैक्षिक का निर्माण हो जाएगा, जो निरन्तर चलती रहेगी।

इकाई–13 शिक्षा चुनौतियाँ एवं मुद्दे : पूर्व प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक

संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ, मुद्दे एवं समाधान

13.4 माध्यमिक शिक्षा की चुनौतियाँ, मुद्दे एवं समाधान

13.5 उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ, मुद्दे एवं समाधान

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास प्रश्न

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ ग्रंथ

13.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पश्चात्, केन्द्र एवं राज्य सरकारों के द्वारा अनेक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, अनेक समितियों ने शिक्षा के क्षेत्र में परिर्वतन की आवश्यकता पर विचार किया तथा अनेक शिक्षाविदों ने शैक्षिक सुधारों की लम्बी–लम्बी श्रृखलाएँ प्रस्तुत हैं। इनमें से कुछ सुझावों को कियान्वित किया गया जबकि कुछ सुझावों को विभिन्न कारणों से लागू नहीं किया जा सका है। निःसंदेह विगत छह दशकों में शैक्षिक प्रसार व गुणवता वृद्धि की दृष्टि से काफी कार्य किया गया है, फिर भी यह आवश्यकता की दृष्टि से अपर्याप्त ही है। अभी भी शिक्षा की अनेक चुनैातिया एवं मुदें है। कुछ चुनैातियों या समस्याओ का कोई समाधान नहीं खोजा जा सका है एवं कुछ के समाधान प्रस्तुत किए गए है। इस इकाई मे हम उन्हीं चुनैातियों या समस्याओं, मुद्दो तथा उनके समाधान पर चर्चा करेगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप निम्न उद्देश्यों को पूर्ति करने मे सक्षम हो सकेगें ।

1. पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षा से संबंधित चुनौतियों एवं उसके समाधान को जान सकेगें ।
2. माध्यमिक शिक्षा से संबंधित चुनौतियो एवं उसके समाधान के बारे में बता सकेगें।
3. उच्च शिक्षा की चुनौतियों एवं उसके समाधान के बारे मे जान सकेगें।
4. छात्र शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था को समझ सकेगें।

13.3 पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियॉं, मुद्दे एवं समाधान

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत मे भी बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया।

इसीलिए, संविधान सभा (Consituent Assembly) ने जिसे देश का संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा गया था, निम्नांकित शब्दों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति–निदेशक सिद्धान्त घोषित किया– राज्य इस संविधान के लागू किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नही कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा।''

चुनौतियाँ एवं उनके समाधान

13.3.1 शिक्षा की दोषपूर्ण नीति (Faulty Policy of Education)–

सन् 1950 में क्रियान्वित किये जाने वाले भारतीय संविधान की 45वीं धारा के माध्यम से यह घोषणा की गई थी कि सरकार 10 वर्ष की अवधि में 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सब बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का प्रयास करेगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देने के लिए 'अखिलय भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा–परिषद्''(All India Council for Elementary Education 1957) का निर्माण किया गया, केन्द्रीय सरकार द्वारा, राज्य–सरकारों को वार्षिक सहायता अनुदान दिया गया और पिछली सात पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त धनराशि व्यय की गई। किन्तु इन सब प्रयासों के बावजूद 6–11 वय–वर्ग के 97.9 प्रतिशत बच्चों को और 11–14 वय–वर्ग के 55.1 प्रतिशत बच्चों को ही शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने का लक्ष्य था। 48 वर्ष के उपरान्त भी निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने का आधारभूत कारण है– केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों को दोषपूर्ण नीति।

सरकार की नीत दोषपूर्ण इसलिए है, क्योंकि वह वास्तविकता पर आधारित न होकर आदर्शवादिता पर अवलिम्बत है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार ने बेसिक शिक्षा–प्रणाली को राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली के रूप में स्वीकार किया। उसने

प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों के लिए बेसिक शिक्षा को आदर्श माना। अतः उसने पहली पंचवर्षीय योजना'' में ही प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों मं परिवर्तित करने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। किन्तु दूसरी योजना की अवधि में ही उसको इस बात का अनुभव हो गया कि भारत जैसे विशा देश में बेसिक शिक्षा–प्रणाली को प्रचलित करने में बहुत अधिक समय लगेगा। अतः सरकार ने तीसरी पंचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा'' मे यह घोषित किया– पूरी तरह से विकसित बुनियादी विद्यालयों को चलाने की दिशा में प्रगति होने में बहुत समय लगगा।''

बहुत समय क्यो लगेगा? इसका कारण स्पष्ट है। प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए साज–सज्जा, प्रशिक्षित अध्यापकों और विशाल धनराशि की आवश्यकता है। इन तीनों चीजों को भारत जैसे निर्धन देश के लिए अल्प समय में जुटाना असम्भव है, आधारहीन आशा है। यह जानते हुए भी सरकार अपने आदर्श के पीछे दौड़ रही है, जो मृग–मरीचिका के समान आगे बढ़ता चला जा रहा है। इस बात का ज्ञान होने पर भी सरकार प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले अधिकांश धन को उसे बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने मे व्यय कर रही है। इस प्रकार, सरकार अपने आदर्श के वशीभूत होकर भारतीय संविधान में लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सक्रिय कदम न उठाकर अपने उत्तरदायित्व की स्पष्ट अवहेलना कर रही है।

13.3.2 शिक्षा का दोषपूर्ण प्रशासन–(Faulty Administration of Education)–

भारत में शिक्षा–राज्य का विषय है और अधिकांश राज्यों में प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व–नगरपालिकाओं, जिला– परिषदों आदि स्थानीय संस्थाओ पर है। केन्द्र सरकार– आर्थिक सहायता के रूप में प्राथमिक शिक्षा का केवल आंशिक उत्तरदायित्व वहन करती है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में 4 मुख्य दोष प्रकट हो गये है यथा–

1. सब स्थानीय संस्थाएँ अपनी–अपनी इच्छा के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन करती है। परिणामतः देश में प्राथमिक शिक्षा में प्रशासन में विचित्र बहुरूपता परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानिय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रशंसनिय कार्य किया है और कुछ इस दिशा में एक–दो कदम ही उठा पाई है। इस प्रसंग में 'कोठारी कमीशन' ने लिखा है– ''निर्धन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के उपर बहुधा अपूर्ण कार्य का सबसे अधिक भार है''।

2. भारत की लगभग सभी स्थानीय संस्थाएँ अपनी अयोग्यता, अकर्मण्यता एवं अकिंचनता के लिए विख्यात है। या तो वह ऋण–ग्रस्त हैं या दरिद्रता के दायानल सं प्रज्जवलित हो क्षीणकाय बन चुकी है। ऐसी संस्थाओं से प्राथमिक शिक्षा के सप्रुशासन की बात सोचना व्यर्थ है।

3. स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी लोकप्रियता में अभिवृद्धि करने के लिए अपने निर्वाचन–क्षेत्रों में नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तो कर देते है, पर धनाभाव के कारण विद्यालय निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि नही कर पाते है। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस अनुपात मे विद्यालयों की संख्या बढ़ी है, उस अनुपात में निरीक्षकों की संख्या नही बढ़ी है। ऐसी स्थिति में विद्यालयों का उपयुक्त निरीक्षण न होना और परिणामस्वरूप उनके प्रशासन में शिथिलता एवं अनियमितता का प्रवेश हो जाना स्वाभाविक ही है।

4. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियमों का निर्माण परतन्त्र भारत में हुआ था। उस समय की और नव भारत को परिस्थितियों में आकाश–पाताल का अन्तर हैं। किन्तु अधिनियमों में किसी प्रकार का संशोधन न किए जाने के कारण वे समयानुकूल नही रह गये है। इसके अतिरिक्त, कोई ऐसी केन्द्रीय संस्था नहीं है, जो स्थानीय संस्थाओं को उनके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य करें। अतः प्रशासकीय प्रयोजन की दृष्टि से ये अधिनियम अर्थहीन और निष्प्रयोज्य समझे जाने लगे हैं।

समाधान–शिक्षा के प्रशासन में सुधार (Reform in Administration of Education)–

प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन–सम्बन्धी दोषों का निराकरण करने के लिए दो सुझाव दिये जा सकते है। पहला सुझाव यह है कि केन्द्रीय सर्रकार को यह स्वीकार करके कि नागरिकों को शिक्षित करने का भार राष्ट्र के उपर होता है, प्राथमिक शिक्षा के पुनीत कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए। इसे इस शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति का निर्माणस करना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा–विषयक अधिनियमों को समयानुकूल बनवाना चाहिए और निर्धन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं का प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं प्रशासन के लिए मुक्त ह्रदय से सहायता–अनुदार देना चाहिए। सरकार यह कहकर कि भारत में शिक्षा– राज्य का विषय है, अपने को प्राथमिक शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त नही कर सकती है। तत्कालीन सरकार ने इस सम्बन्ध मे अपने दायित्व को स्वीकार किया है और इस शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत व्यय करने का निर्णय किया है। साथ ही उसने नयी शिक्षा–नीति का निर्धारण एवं उसके संचालन का कार्य अपने

हाथों में लिया है। इसी निर्णय के अनुसार उसने सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की और सन् 1992 में उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी किये है।

दूसरा सुझाव, जो 'कोठारी कमीशन' ने दिया है, यह कि भारत भारत सरकार को एक विद्यालय–परिषद् (School Board) का निर्माण करके, उसे सम्पूर्ण देश की विद्यालय–स्तर की शिक्षा के सब कार्य सौप देने चाहिए, यथा सरकार द्वारा निर्धारित की जाने वाली शिक्षा–नीति का कार्यान्वयन, शिक्षा का विकास एवं नियोजन विद्यालयों को सहायता अनुदान आदि।

परन्तु किन्हीं कारणोंवश कोठारी कमीशन का उक्त सुझाव लागू न हो सका। सन् 1986 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की और शिक्षा के क्षेत्र में जन–सहभागिता पर बल दिया। कार्य–योजना, 1986 सभी स्तरों पर शिक्षा की आयोजना तथा प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण में लोगो की सहभागिता के महत्व पर बल दिया। विकेन्द्रीकरण का अभप्राय है जिला, उप जिला तथा पंचायत स्तरों पर निर्णय लेने में लागो के चुने हुए प्रतिनिधियों की लोकतांत्रिक सहभागिता। इसके लिए सन् 1991 में संविधान में 72वॉ संशोधन किया गया। इसमें जिला, उप–जिला तथा पंचायत स्तरों पर लोकतान्त्रिक ढंग से चुने गये निकाय स्थापित करने की परिकल्पना की गई। संविधान की प्रस्तावित 11वीं अनुसूची में अन्य बातों के साथ–साथ पंचायती राज निकायों को निम्नलिखित अधिकार सौंपने का प्रावधान है– प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ तथा गैर–औपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय और सांस्कृतिक क्रिया–कलाप।

संविधान संशोधन विधेयक के अन्तर्गत प्रत्येक पंचायत एक ग्राम शिक्षा समिति का गठन करेगी जो ग्राम स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में निर्धारित कार्यो के प्रशासन के लिए जिम्मेदार होगी इन ग्राम शिक्षा समितियों की प्रमुख जिम्मेदारी व्यवस्थित रूप से घर–घर सर्वेक्षण करके और अभिभावकों के साथ समय–समय पर चर्चा करके ग्राम में सूक्ष्म स्तर की आयोजना तैयार करनी होगी। समिति यह भी प्रयास करेगी कि प्रत्येक परिवार में प्रत्येक बालक प्राथमिक शिक्षा मे भाग लें।

यदि उक्त का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन हो गया तो कार्य योजना, 1992र के अनुसार इक्कीसवीं सदी के प्रारम्म्भ से पूर्व में ही हम निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगें।

13.3.3 दोषपूर्ण पाठ्यक्रम (Faulty Curriculum)

प्राथमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम अनेक गम्भीर दोषों से परिपूर्ण है। वह संकीर्ण, कठोर, अरूचिकर एवं एकमार्गीय है। वह पूर्णतया साहित्यिक है और उसमें

पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया जाता है। वह छात्रों को अपनी रचनात्मक शक्तियाँ एवं 'कुशलताओं का विकास करने और कार्य करके सीखने का कोई अवसर नही देता है। वह समाज एवं विद्यालय में किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नही करता है, ग्रामीण बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण नही करता है और स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित न होने के कारण उपयोगी नही है। अत 'Hindustan Times' के एक लेख से निम्नांकित शब्द उद्धत करना पूर्णतया उचित प्रतीत होता है– ''शिक्षा–विशेषज्ञों ने नगर–विद्यालयों के पाठ्यक्रम की दशा और भी अधिक शोचनीय है।''

समाधान–पाठ्यक्रम में सुधार (Reform in Curriculum)

प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए दो सुझाव दिये जा सकते हैं। पहला सुझाव यह कि प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जाय। यही कारण है कि भारत–सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को दोषमुक्त करने और उसकी गुणात्मक उन्नति करने के लिए प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने का निश्चय किया है। इससे वांछित लक्ष्य की प्राप्ति तो हो सकती है पर बेसिक शिक्षा की योजना इतनी व्ययपूर्ण है कि न तो उसे अभी तक सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया जा सकता है और न निकट भविष्य में किये जाने की आशा की जा सकती है।

इस परिस्थिति में हमारा दूसरा सुझाव यह है कि जब तक बेसिक शिक्षा की योजना सम्पूर्ण देश में क्रियान्वि्त न हो जाये, तब तक प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार किसी उपयोगी शिल्प या हस्तकार्य को स्थान दिया जाये। इसी बात को ध्यान में रखकर 'कोठारी कमीशन' ने निम्नांकित दो विचार व्यक्त किये है–

1. निम्न प्राथमिक स्तर के छात्रों का उन कार्यो में भाग लेना चाहिए, जिनसे उनकी रचनात्मक एवं उत्पादन–कुशलता का विकास हो।
2. उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों को साधारण कलाओं एवं शिल्पों से सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।

अपने इन विचारों के आधार पर 'कोठारी कमीशन' ने निम्न और उच्च प्राथमिक स्तरों पर कार्य–अनुभव (Work Experience) और समाज सेवा (Social Service) को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने का सुझाव दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा निति, 1986 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचेप पर एक सामान्य कोर के साथ–साथ अन्य लचीले घटकों पर आधारित एक राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली की परिकल्पना की गई है। सन् 1986 तथा 1992 की कार्य योजनाओं मे शिक्षा के लिए बालकेन्द्रित

दृष्टिकोण का अपनाने की परिकल्पना की गई है। इस परिप्रेक्ष्य में सभी बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने तथा नामांकित बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक स्कूलों में रोककर रखने तथा शिक्षा की कोटि में पर्याप्त सुधार लाने के प्रयासों पर बल दिया गया है। साथ ही स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढाँचा तैयार कराया। इस कार्य को सन् 1988 मे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने पूरा किया। इस पाठ्यक्रम में स्कूली बस्ते के बोझ को कम करने का प्रयास किया गया है। साथ ही प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम शिक्षण स्तर (Minimum Level of Learning- MLL) निर्धारित करने का प्रयास किया है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. 6 से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का प्रयास संविधान की किस धारा के अन्तर्गत किया गया।

....

....

....

2. कार्य अनुभव तथा समाज सेवा का सुझाव किस कमीशन ने दिया ?

....

....

....

13.3.4 प्राकृतिक कठिनाइयाँ (Natural Difficulties)–

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में प्राकृतिक कठिनाईयों विकट समस्या उपस्थित कर रही है। इन कठिनाईयों का सम्बन्ध मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों से है, जिनमें भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। राजस्थान के रेतीले प्रदेश में जनसंख्या कम होने के कारण ग्राम एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं। यही बात कश्मीर, गढ़वाल, अल्मोड़ा, हिमाचल प्रदेश आदि कम जनसंख्या वाले पर्वतीय प्रदेशों के बारे में कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त आसाम, मध्य प्रदेश और

दक्षिणी भारत मे ऐसे अनेक क्षेत्र है, जो घने वनों से आच्छादित है और जहाँ की अल्प जनसंख्या यत्र–तत्र विखरे हुए छोटे और सुदुर ग्रामों में निवास करती है।

समाधान–कुछ सुझाव (Some Suggestions)–

प्राकृतिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने और उनकी उपस्थिति में बच्चों का प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए तीन सुझाव दिये जा सकते है। पहला, आवागमन के सुरक्षित मार्गो का निर्माण करने और यातायात के सुविधाजनक साधनों को उपलब्ध बनाकर, उपरिअंकित कठिनाइयाँ को पराभूत किया जा सकता है। भारत जैसे भू–रचना वाले देश में यह कार्य असुगम अवश्य है, पर असम्भव नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि पिछली चार पंचवर्षीय योजना में सड़को का निर्माण करके अनेक दूरस्थ ग्रामों को एक–दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया है। ऐसी आशा है कि अगामी पंचवर्षीय योजनाओं में सम्पर्क मार्गो के निर्माण द्वारा बालकों को विद्यालयों को जाने की सुविधा प्रदान की जा सकेगी।

आठवीं योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इसके लिये निम्नलिखित राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किये गये है–

1. बालिकाओं तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के व्यक्तियों सहित सभी बच्चों का सार्वभौम नामांकन।

2. एक किलोमिटर की पैदल दूरी की परिधि में सभी बच्चों के लिये प्राथमिक स्कूल उपलब्ध कराना।

3. बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों, ऐसे कार्यरत बच्चों तथा बालिकाओं, जो विद्यालयों में नही जा सकते, के लिए अनौपचारिक/गैर–औपचारिक (Non-formal) शिक्षा की व्यवस्था करना।

4. इस शिक्षा के लिए गैर–औपचारिक शिक्षा केन्द्रों की संख्या को 3.5 लाख तक बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया।

5. अपर प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की सहभागिता को बढ़ाने के लिये अतिरिक्त अवसरों हेतु पूर्व शर्ते के रूप में प्राधमिक स्कूल से उपर प्राथमिक स्कूल के मौजूदा अनुपात 1:4 से 1:2 में सुधार।

6. पढ़ाई को जारी रखने के लिये ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड की योजना को अपर प्राथमिक स्तर पर भी बढ़ाना। वर्ष 1987–88 से 1992–93 की अवधि में इस योजना को देश के 91.5 प्रतिशत ब्लॉको में कार्यान्वित किया गया।

13.3.5 धन का अभाव (Dearth of Money)–

प्राथमिक शिक्षा के समक्ष धन के अभाव की समस्या बहुत की महत्वपूर्ण है। भारत सरकार अन्य देशों की सरकारों की तुलना में शिक्षा पर सबसे कम धन व्यय करती है। जबकि रूस अपनी राष्ट्रीय आय का 7 प्रतिशत, जापान, 6 प्रतिशत, अमरीका, 4.7 प्रतिशत इंगलैंड 4.5 प्रतिशत शिक्षा आय का केवल 1.2 प्रतिशत व्यय करते है।

इसके विपरीत भारत सरकार वर्ष 1950–51 में अपनी राष्ट्रीय आय का केवल 1.2 प्रतिशत व्यय करती थी। परन्तु अ बवह 3.9 प्रतिशत व्यय कर रही है। यद्यति इस क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई है। फिर भी वह दूसरे देशों की तुलना में कम व्यय कर रही है। धनाभाव की ऐसी कंकीर्ण स्थिति में सम्पूर्ण भारत में अनिवार्य शिक्षा का प्रसार न होना, एक अनिवार्य निष्कर्ष हैं।

समाधान–कुछ सुझाव (Some suggestions)–

अनिवार्य शिक्षा के कार्यक्रम के लिये धन की प्राप्ति हेतू निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान दिया सकता है।–

1. भारत सरकार को अपनी सब योजनाओं में थोड़ी–थोड़ी बचत करके, प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय में वृद्धि करनी चाहिए।

2. इस समय प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर सरकार के व्यय का अनुपात 1:5 है। सरकार को जन–शिक्षा की गम्भीरता के समझकर, इस अनुपात को 5:1 कर देना चाहिए।

3. सरकार जिस धन का उपयोग प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए कर रही है, उसका प्रयोग पहले अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए करना चाहिए।

4. दिनकर देसाई का सुझाव है कि चीन, रूस, मिस्त्र जापान, जर्मनी एवं आस्ट्रेलिया के समान भारत में भी प्राथमिक शिक्षा के निम्न स्तर की अवधि 5 वर्ष के बजाय 4 वर्ष की कर देनी चाहिए और इस प्रकार बचने वाले धन से नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।

5. 1991 के भारत की 84.39 करोड़ जनसंख्या 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चे 46.8 प्रतिशत थे। परन्तु जनसंख्या की तीव्र वषद्धि ने बालकों की इस संख्या में वषद्धि कर दी है। बच्चों की इस अति विशाल संख्या के लिए सरकार अपनी सम्पूर्ण आर्थिक शक्ति का प्रयोग करके भी अल्प समय में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कदापि नहीं कर सकती है। अतः यह आवश्यक है कि जनता इस कार्य में सरकार का हाथ बॅटाए। जनता ने भारत–चीन और भारत–पाकिस्तान

युद्धों के दौरान में जिस तत्परता और जिस आत्म–त्याग का परिचय दिया, उसका एक अंश भी यदि उसमें अनिवार्य शिक्षा के प्रति हो, तो भारत के किसी भी बच्चे का जीवन शिक्षा के अभाव के कारण उतना हीन अनाकर्षक एवं अरूचिकर नहीं रह जायेगा, जितना कि आज है।

6. भारत–सरकार को विदेशी शासकों की प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने की नीति का कुछ समय के लिए परित्याग कर देना चाहिए और इससे बचने वाले धन को सामान्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में उसे गोखले के अग्रांकित वाक्य को अपने निर्देशक–सूत्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए– '' शिक्षा की गुणात्मक उन्नति महत्वपूर्ण अवश्य है, पर उस पर बल तभी दिया जाना चाहिए, जब निरक्षरता का अन्त हो जाये''।

13.3.6 प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव (Dearth of Trained Teachers)–

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की वांछित संख्या उपलब्ध न होने के कारण एक जटिल समस्या उपस्थित हो गई है। यह समस्या– छात्र–संख्या निरन्तर होने वाली वषद्धि के कारण और भी अधिक जटिल हो गई है।

'कोठारी कमीशन' ने वर्ष 1985–86 तक प्राथमिक स्तर पर छात्र–संख्या की सम्भावित वृद्धि तालिका दी है और यह सुझाव दिया है कि इस स्तर पर शिक्षक एवं छात्रों का अनुपात 1:50 होना चाहिए। इन बातों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि भविश्य में प्रतिवर्ष 2.4 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। प्राथमिक विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों में से 3 प्रतिशत या तो अवकाश ग्रहण कर लेते है या अध्यापन कार्य छोड़ देते हैं। इस प्रकार देश को भविष्य में प्रतिवर्ष 3.26 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी।

सन् 1965 के एक सर्वेक्षण के अनुसार सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य लगाने के लिए 28 लाख प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता थी। किन्तु सरकार के एक प्रयास के बावजूद भी 1990–91 तक केवल 16 लाख 37 हजार शिक्षक प्राइमरी स्तरपर तथा 10 लाख 59 हजार उच्च प्राथमिक स्तर पर थे।

प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों के अभाव का सर्वप्रथम कारण यह है कि उनका वेतन इतना अल्प है कि नवयुवक–अध्यापक काय्र के प्रति आकृष्ट नही होते है, और यदि किन्हीं परिस्थितियों वश हो भी जाते है, तो अधिक आर्थिक लाभ का पद प्राप्त होने पर अध्यापन–कार्य से सदैव के लिए मुँह मोड़ लेते हैं।

नगरों की अपेक्षा ग्रामों के विद्यालयों में शिक्षकों का अधिक अभाव है। इसका कारण यह है कि नगरों में अतिरिक्त धनोपार्जन एवं मनोरंजन के जो साधन सुलभ होते है उनके ग्रामों में कभी भूलकर भी दर्शन नही होते है। अतः नगर में अतिरिक्त धन का अर्जन करने वाला, सायकाल के समय राष्ट्रीय राजपथ पर स्वच्छदता से विचरण करने वाला या किसी सिनेमाघर मे चित्रों एवं संगीत से अपने नेत्रों एवं कानों को तष्त करने वाला नवयुवक शिक्षक–ग्राम में जाकर धूल फाँकने और आनन्दविहिन जीवन व्यतीत करने के लिए किसी भी शर्ते पर तैयार नही होता है। यही कारण है कि नगरों की अपेक्षा क्षेत्रों में शिक्षकों का तिगुना अभाव है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षको का अनुपात– 2 : 6 है।

अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है एवं ग्रामों मे और भी अधिक है। नगरों में इस अभाव का मुख्य कारण– अल्प वेतन हैं और ग्रामों में निवास स्थान की असुविधा।

समाधान– अध्यापकों की पूर्ति– (Supply of Teachers)–

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपायों को काम मे लाया जा सकता है–

1. शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि करके, अध्यापन–कार्य को आकर्षक बनाया जाय। सरकार ने इस दिशा मे कदम उठाया है।
2. ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में उन्हीं क्षेत्रों में निवास करने वाले पुरूषों एवं स्त्रियों की नियुक्ति की जाय और उनको शहरी क्षेत्रों के अध्यापकों से अधिक वेतन दिया जाय। अध्यापिकाओं को निवास की विशेष सुविधाएँ दी जायें। यदि आवश्यक हो, तो उनको भत्ता भी दिया जाये और कम शैक्षिक योग्यता होने पर भी उनको नियुक्त किया जाय।

13.3.7 विद्यालयों की स्थापना (Establishment of Schools)–

प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक रूप प्रदान करने के लिए देश के विभिन्न भागो में विद्यालयों की स्थापना एंव आवश्यक शर्ते है। नगरों में तो इस शर्ते को सरलता से पूरा किया जा सकता है, पर ग्रामों में नहीं। इसका कारण यह है कि भारत–ग्रामों का देश है और अनेक ग्राम–विद्यालय–विहीन एवं अत्यन्त अल्प जनसंख्या वाले है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार 5,57,117 पूर्ण रूप से बसे तथा 48,107 अर्द्ध बसे ग्राम है। इनमें 3,18,633 ग्राम ऐसे है, जिनकी जनसंख्या 500 से कम है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, 2,40,048 ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय नही है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि भारत के लगभग 2 लाख ग्रामों में विद्यालय नहीं है, जिनमें से अधिकांश ग्राम 500 से कम जनसंख्या वाले है। इसके अतिरिक्त, अनेक ग्राम एक–दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित है। न तो विद्यालयों के निर्माण के लिए धन उपलब्ध हो सकता है और न 500 से कम जनसंख्या वाले ग्रामों में थोड़े से बच्चों के लिए विद्यालय–निर्माण पर धन व्यय करना बुद्धिमानी का कार्य कहा जा सकता है। इन दोनो तथ्यों ने देश के प्रशासकों के समक्ष विकट समस्या उपस्थित कर दी है।

समाधान–स्थापना की योजना (Scheme of Establishment)–

ग्रामों मे विद्यालय–निर्माण के लिए धन जुटाना और छोटे तथा इधर–उधर बिखरे हुए ग्रामों में निवास करने वाले बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना ये दोनो ही कार्य दुष्कर प्रतीत होते है। किन्तु, प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण के लिए सरकार ने जितनी धनराशी निर्धारित की है, उसको निम्नांकित योजना के अनुसार व्यय करके विद्यालय–स्थापना की दिशा में हितकर कार्य किया जा सकता है।

प्राथमिक विद्यालय की स्थापना ऐसे केन्द्रीय भागों में की जाये, जहाँ से अन्य ग्राम कम–से–कम दूरी पर हों। इस प्रकार के ग्रामों में स्थापित किये जाने वाले विद्यालयों में अन्य ग्रामों के बच्चे सुगमता से पहुँचकर ज्ञान का अर्जन कर सकते है। भारत–सरकार ने इस दिशा मे निर्णायक कदम उठाया है। उसने निर्णय किया है कि पॉचवी पंचवर्षीय योजना में विद्यालयों का निर्माण इस विधि से किया जायेगा कि किसी भी बालक के योग से प्राथमिक विद्यालय 1.5 किलोमीटर और मिडिल स्कूल 5 किलामीटर से अधिक नहीं होगा। सरकार को आशा है कि इस योजना के पूर्ण होने पर 6–11 वय–वर्ग के 97 प्रतिशत और 11–14 वय वर्ग के 47 प्रतिशत बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा मिल जायेगी।

छठी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा को सर्वभौम बनाने के लिए निम्नांकित बातों पर बल दिया गया है–

1. मौजूदा सुविधाओं के प्रयोग का विस्तार करना, जिनमें स्कूल में पढ़ाई के धण्टों का समायोजन सम्मिलत है जो स्थानिय परिस्थितियों के अनुसार एक दिन में तीन घण्टे से अधिक नहीं होंगे।
2. नई सुविधाओं की व्यवस्था, जो आर्थिक रूप से व्यवहार्य तथा शैक्षिक रूप से सुसंगत हों।
3. गैर औपचारिक शिक्षा (Non-formal education)– प्रणाली को बढ़ावा देना। इसमें शाला–त्यागी बच्चों तथा काम मे लगे बच्चों को शिक्षा देने पर बल दिया गया है।

4. औपचारिक तथा गैर–औपचारिक दोनो प्रणालियों में छात्रों को बनाये रखने पर जोर दिया जायेगा और बच्चों को प्रभावकारी कार्य दिया जायेगा।

5. बच्चों को समुचित प्रोत्साहन देना जैसे– मध्याहन भोजन, स्कूल की वर्दी देना, शिक्षा प्राप्त करने की सामग्री मुफ्त देना और समय की कीमत के एवज में अनुसूचित जातियों के परिवारों की लड़कियों को मुआवजा देना चाहिए।

पाँचवें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वे, 1986 के अनुसार 94.5 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास एक किलोमिटर पैदल रास्ते की दूरी में प्राइमरी स्कूल और 3 किलोमिटर पैदल रास्ते की दूरी में लगभग 83.98 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास मिडिल स्कूल है। वर्ष 1990–91 में 5 लाख 58 हजार से अधिक प्राइमरी तथा एक लाख 46 हजार से अधिक मिडिल स्कूल थे। कार्य योजना, 1992 में यह परिकल्पना की गई कि 300 अथवा इसके अधिक जनसंख्या वाली 35 हजार से अधिक बस्तियों में और नये प्राइमरी स्कूल खोलने होंगे। साथ ही उनमें ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना को लागू करना होगा।

13.3.8 विद्यालय के भवन (Building of Schools)–

विद्यालयों की स्थापना में बहुत कुछ सम्बद्ध विद्यालय भवनों की समस्या है। सम्पूर्ण देश में सरकार और स्थानिय संस्थाओं द्वारा विद्यालयों के लिए विशेष रूप से निर्मित किये जाने वाले भवन केवल इतने है, जिनमें 50 प्रतिशत छात्र विद्या का अर्जन कर सकते है। शेष विद्यालय विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थानों में चल रहे हैं। कुछ राज्यों में इनका संचालन मन्दिरों, गाँवो की चौपालों, किराये के मकानों और धनी पुरूषों के स्थान के थोड़े–से भागो में किया जा रहा है। कुछ राज्य ऐसे भी है , जिनमे डेरो, झोंपड़ियों खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे शिक्षण–कार्य किया जा रहा है।

विद्यालय भवनों की यह दुर्दशा इस बात का तकाजा करती है कि भारत के भावी नागरिकों के लिए नवीन विद्यालयों की सृष्टि की जाये। किन्तु यह कार्य लम्बे समय और लम्बी रकम की माँग करता है। ऐसी स्थिति में विवके का आग्रह है कि एक ओर तो विद्यालय निर्माण के कार्य का सूत्रपात किया जाये और दूसरी ओर निम्नांकित उपायों द्वारा विद्यालय–भवनों की समस्या का समाधान किया जाये–

1. विद्यालय–भवनों के लिए ऐसे मन्दिरों, मस्जिदों, सरायों, धर्मशालाओं और व्यक्तिगत या सार्वजनिक स्थानों का चुनाव किया जाय, जहाँ छात्रों को अधिकतम सुविधाएँ प्रदान की जा सकें और उनको शिक्षा देने केलिए इनका अधिक–से अधिक उत्तम प्रयोग किया जाय। वैदिक काल से मुस्लिम–युग में इसी प्रकार के स्थानों में

प्राथमिक विद्यालय चलते थे। चीन मे तो प्राथमिक विद्यालय अब भी मन्दिरों से संलग्न है। जिस समय इंगलैंड में विद्यालय–भवनों का अभाव था, उस समय वहाँ बच्चों को रैल के पुलों के नीचे बैठाकर शिक्षा दी जाती थी। इन सब उदाहरणों से अनुप्राणित होकर, अनिवार्य शिक्षा के कार्य को स्थागित करने की बजाय पूर्ण उत्साह से प्रसार की दिशा मे अग्रसर किया जाना चाहिए। यदि संयोगवश किसी स्थान में विद्यालयों के लिए भवन अप्राप्य हों, तो प्राचीन भारतीय शिक्षा–प्रणाली या आधुनिक शान्ति–निकेतन पद्धति का अनुसरण करके, वृक्षों की छाया में बच्चों को ज्ञान अर्जन करने का अवसर प्रदान किया जाय। आयरलैंड मे तो कुछ ही समय पहले तक इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता था। सारांश यह है कि उपयुक्त भवनों के निर्माण की प्रतीक्षा न करके, किसी भी सुविध ाजनक स्थान पर भारत के बच्चों के मस्तिकों को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने का अनवरत प्रयास किया जाय।

2. पारी–विधि (**Shift-System**)– का प्रयोग करके न केवल विद्यालयो भवनों वरन् अध्यापकों के अभाव की समस्या भी बहुत सीमा तक सुलझाई जा सकती है। इस विधि के अनुसार एक ही विद्यालय–भवन को मध्याहन से पूर्व एवं मध्यान्ह के उपरान्त विभिन्न कक्षाओं के शिक्षण के लिए प्रयोग किया जाता है। फ्रांस, जापान, जर्मनी पुर्तगाल, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि विश्व के अनेक देशों ने शिक्षा–प्रसार के प्रारम्भिक चरणों में इस विधि को प्रचलित किया था। चीन, लंका, मिस्त्र टर्की, डेनमार्क आस्ट्रेलिया आदि देशों में यह विधि आज भी प्रचलित है।

3. जनता का सहयोग प्राप्त करके भी विद्यालय–भवनों के अभाव की बहुत–कुछ पूर्ति की जा सकती है। यदि सरकार ग्राम–निवासियों को शिक्षण की सब सामग्री प्रदान कर दे, तो पहले शिक्षण–कार्य खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे आरम्भ किया जा सकता है। उसके पश्चात् सरकार भूमि एवं भवन–निर्माण की सामग्री की व्यवस्था करके, गाम–निवासियों को विद्यालय–भवन का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। स्वर्गीय मौलाना अबुल कलाम आजाद का सरकार को यह परामर्श था– ''हमें ग्राम–निवासियों से अपील करनी चाहिए कि यदि हम उनके लिए भवन–निर्माण सामग्री की व्यवस्था कर दे तो वे अपने निवास करने के गृहों के समान विद्यालय–भवनों का निर्माण करें।''

13.3.9 अपव्यय एवं अवरोधन (Wastage and Stagnation)–

प्राथमिक शिक्षा मे अपव्यय एवं अवरोधन की भीषण समस्या है। एजूकेशन इन इण्डिया' (Education in India), 1964–65 के अनुसार बालकों में 58 प्रतिशत तथा

बालिकाओं में 64.7 प्रतिशत अपव्यय था। 'कोठारी–कमीशन के अनुसार– निम्न–प्राथमिक स्तर पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय क्रमशः 65 प्रतिशत एवं 62 प्रतिशत है और उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अनुपात क्रमशः 24 प्रतिशत एवं 34 प्रतिशत है। इसी प्रकार, जैसा कि 'कोठारी–कमीशन' मे प्रतिवेदन में अंकित है– अवरोध ान, बालकों की कक्षा 1 में 40.3 प्रतिशत कक्षा 4 में 21.7 प्रतिशत और कक्षा 8 में 13. 2 प्रतिशत है। बालिकाओं की इन तीन कक्षाओं मे अवरोधन क्रमशः 47.1 प्रतिशत , 25. 6 प्रतिशत और 16.6 प्रतिशत है।

समाधान– कुछ सुझाव (Some Suggestions)–

अपव्यय एवं अवरोधन का निवारण करने के लिए अग्रांकित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है– (1) पाठ्यक्रम में सुधार, (2) परीक्षा–प्रणाली में सुधार, (3) शिक्षा–व्यवस्था में सुधार, (4) विद्यालय के अन्दर और बाहर के वातावरण मे सुधार, (5) अभिभावकों की शिक्षा, (6) उत्तम विद्यालयों की व्यवस्था, (7) शिक्षण–विधियों की रोचकता, (8) सामाजिक समस्याओं का समाधान, (9) छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति, और (10) शिक्षा एवं जीवन में उचित सम्बन्ध की स्थापना।

13.3.10 भाषाओं का बाहुल्य (Multiplicity of Languages)–

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार मे भाषाओं का बाहुल्य असाधारण अवरोध–उपस्थित कर रहा है। 'भारत' 1973 (पृष्ठ.17) के अनुसार– हमारे देश में 826 भारतीय एवं गैर– भारतीय भाषाएँ और 1652 बोलियाँ (मातृभाषाएँ) बोली जाती है। **देश के प्रशासकों तथा शिक्षाविदों के समक्ष समस्या यह है कि इतनी विभिन्न भाषाओं एवं बोलियाँ का प्रयोग** करने वाले बालकों एवं बालिकाओं को किस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय?

भारतीय संविधान में जिन 15 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है, वे इस देश के अधिकांश निवासियों द्वारा बोली जाती है। अतः उनको शिक्षा का माध्यम बनाने में किसी प्रकार की कठिनाई नही है। किन्तु शेष 811 भाषाओं को इस पद पर आसीन करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य कठिनाई यह है कि भारत में ऐसी अनेक जातियाँ है, जिनका न तो कोई साहित्य है और न कोई बोली। इनमें उल्लेखनीय है– अनुसूचित एवं **आदिम जातियाँ (Scheduled Castes and Tribes)**– जिनकी संख्या क्रमशः आठ करोड़ और 3.8 करोड़ है, और निरधिसूचित आदिम जातियाँ (Denotified Tribes)– जिनकी संख्या 40 लाख है। ये सभी जातियाँ पिछड़ी हुई है और इनमें अभी तक शिक्षा का बहुत कम प्रसार हुआ है।

विषिष्ट विद्यालय (Special School)– भारत के जिन भू–भागों में आदिम, अनुसूचित एवं पिछड़ी हुई जातियाँ निवास करती है, उनमें अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने का सर्वोतम उपाय है– विशिष्ट विद्यालयों या आश्रम स्कूलों की स्थापना। भारत–सरकार इन विद्यालयों की स्थापना का कार्य उत्साहपूर्वक कर रही है। 6,000 से अधिक विद्यालयों एवं छात्रावासों का निर्माण कर चुकी है, और इनमें अध्ययन करने वाले छात्रों को पुस्तकों लेखन सामग्री आदि का सुविधाएँ भी प्रदान कर रही है। उक्त सुविध ाओं के अतिरिक्त छात्रवषतियों की भी व्यवस्था है।

13.3.11 प्रेरणा का अभाव (Lack of Incentive)–

अनिवार्य शिक्षा के विचार में बाधा उपस्थित करने वाली अन्तिम समस्या है– प्रेरणा का अभाव। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रामीण जनता निर्धन है और प्रत्येक ग्राम मे प्राथमिक विद्यालय नहीं है। निर्धन अभिभावक अपने बालकों को अपने ग्रमों के विद्यालयों में भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ ही समय में लिए भेजते हैं, या विलकुल नहीं भेजते है। जहाँ तक उनको अन्य ग्रामों के विद्यालयों में भेजने का प्रश्न है, इसकी ये अभिभावक कभी कल्पना भी नही कर सकते है।

इसका कारण यह है कि बालकों को विद्यालय जाने मे और अभिभावकों को उनको भेजने में दो विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। बालक प्रातःकाल भोजन करके अपने गृहों से चलते हैं और सायंकाल को वापिस आने पर ही भोजन के दर्शन करते है। इसका उनको स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निर्धन अभिभावकों को अपने बालकों की पुस्तकों, लेखन–सामग्री एवं शिक्षा–सम्बन्धी अन्य व्यय का भार वहन करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति मे न तो बालक विद्यालय जाने के लिए उत्सुक रहते है और न अभिभावक उनको भेजने मे लिए।

समाधान–सहायक सेवाएँ (Ancillary Services)–

उल्लिखित समस्या का समाधान करने के लिए विद्यालयों में सहायक सेवाओं की व्यवस्था की जानी अनिवार्य है। इन सेवाओं में निःशुल्क मध्याह्न भोजन, पाठ्य–पुस्तकों, लेखन–सामग्री, चिकित्सा इत्यादि को स्थान दिया जाना चाहिए। ये सेवाएँ या सुविधाएँ ऐसी प्रबल प्रेरक शक्तियों का कार्य करगी कि स्वयं बालक विद्यालय जाने का आग्रह करेंगे और अभिभावक उन्हें भेजने के लिए तत्पर रहेंगें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा प्रारम्भिक शिक्षा

(National Policy Education(1986) and Elementary Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में दो बातों पर बल दिया गया–

(अ) 14 वर्ष की अवस्था के समस्त बच्चों की विद्यालयों में भर्ती तथा उनका विद्यालय में टिके रहना, तथा।

(ब) शिक्षा की गुणवता में सुधार।

14 वर्ष की आयु पूरा करने वाले सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान, संविधान का एक नीति निदेशक तत्व है। वर्ष 1950 से इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ठोस प्रयास किये गये है। कुछ वर्षो मे संस्थाओं की संख्या तथा उनके प्रकार तथा नामांकन में प्रभाव बढ़ोत्तरी हुई है। शिक्षा संस्थाओं के सर्वसुलभ प्रावधान को आंशिक तौर पर प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 5) पर प्राप्त कर लिया गया है। पाँचवे अखिल भारतीय शिक्षा सर्वे, 1986 के अनुसार 94.5 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास एक किलोमिटर पैदल रास्ते की दूरी मे स्कूल है, 3 किलोमीटर के पैदल रास्ते की दूरी में लगभग 83.98 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास मिडिल स्कूल है। प्राथमिक स्कूलों की संख्या वर्ष 1950–51 में 2.10 लाख से बढ़कर वर्ष 1950–51 में 13,600 से बढ़कर वर्ष 1985–86 में 1.38 लाख हो गई। 6 से 11 आयु वर्ग के बच्चों का कुल नामांकन वर्ष 1950–51 में 43.1 से बढ़कर वर्ष 1960–61 में 62.4 प्रतिशत तथा 1970–71 में 76.4 प्रतिशत तथा वर्ष 1980–81 में 80. 5 तथा वर्ष 1985–86 में 85.0 प्रतिशत हो गया। इसी तरह 11 वर्ष से 14 आयु वर्ग के बच्चों का कुल नामांकन वर्ष 1950–51 मे 12.9 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1985–86 में 48.3 प्रतिशत हो गया।

प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण कुल मिलकार अभी तक अप्रश्य लक्ष्य है तथा इसका काफी रास्ता अभी तय करना बाकी है। पढ़ाई बीच में छोड़ जाने वाले बच्चों की दर काफी अधिक बनी हुई है। स्कूलों मे बच्चों को रोके रखने की दर कम होना तथा अपव्यय विचारणीय विषय है। वर्ष 1985–86 मे कक्षा 1 से 5 तक पढ़ाई बीच में छोड़कर जाने वाले बच्चों की दर 64.4 प्रतिशत थी। लड़कियाँ की सहभागिता मे वृद्धि होने के बावजूद, असमानता अभी भी विद्यमान है। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा में लड़कियों की सहभागिता वर्ष 1950–51 में 28.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1985–86 में 40.2 प्रतिशत होने पर भी यह प्रतिशतता 50 प्रतिशत की सामान्य प्रतिशतता से अभी भी कम है। उच्च प्राथमिक कक्षाओं (6 से 8) में लड़कियों की सहभागिता कम है। यह वर्ष 1950–51 में 16.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1985–86 में 35.1 प्रतिशत हो गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्य योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी गई है तथा इस सम्बन्ध में नये कार्यक्रम भी शुरू किये गये है।

सन् 1992 में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को संशोधित किया गया। सन् 1992 की कार्य योजना में निम्नलिखित पर बल दिया गया–

1. प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में पर्याप्त रूप से तीन बड़े कमरे तथा तीन शिक्षकों को उपलब्ध कराकर ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के कार्य–क्षेत्र को बढ़ाना। साथ ही इस योजना को उच्च प्राथमिक स्तर तक बढ़ाने का भी निर्णय लिया गया।
2. यह विशेष रूप से निर्धारित किया गया है कि भविष्य में भर्ती किये जाने वाले शिक्षकों मे कम से कम 50 प्रतिशत महिलाएँ होंगी।
3. प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के सम्बन्ध मे यह परिकल्पना की गई कि इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ होने से पहले 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों को सन्तोषजनक कोटि की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी।
4. सर्वसुलभ प्रारम्भिक शिक्षा को प्राप्त करने के लए स्कूल प्रणाली से 18 करोड़ बच्चों को पढ़ाना होगा। इससे शिक्षक छात्र 1:40 के अनुपात के आधार पर वर्तमान 27 लाख शिक्षकों की सख्या को 45 लाख तक बढ़ाना होगा। छात्रों की संख्या में वषद्धि होने से अगले सात वर्षो में अतिरिक्त 11 लाख कमरों की आवश्यकता होगी।
5. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा मुख्य रूप से उन बच्चों की, विशेषकर लड़कियों की शिक्षा की जरूरतों को पूरा करेगी जो कि औपचारिक विद्यालयों में भाग नहीं ले सकी है।
6. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा (लड़के तथा लड़कियाँ) केन्द्रों की स्थापना तथा उन्हें चलाने के लिए राज्य सरकार को 75:25 के आधार पर सहायता दी जायेगी।
7. केवल लड़कियों के लिए अनौपचारिक/निरौपचारिक केन्द्रों का गठन तथा उन्हें चलाने के लिए राज्य सरकार को 90:10 के अधार पर सहायता दी जायेगी।
8. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना तथा उन्हें चलाने के लिए स्वैच्छिक एजेंसियों को शत–प्रतिशत सहायता दी जायेगी।

13.4 माध्यमिक शिक्षा की चुनौतियॉ, मुद्दे एव समाधान

स्वतंन्त्र भारत मे माध्यमिक शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ है। किन्तु इस विकास का सम्बन्ध केवल उसकी संख्यात्मक वृद्धि से है, गुणात्मक उन्नति से नही। समय–समय पर किये जाने वाले प्रयासों के बावजूद न तो उसकी संरचना में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है और न उसकी उपयोगिता में कोई विशेष अभिवृद्धि। वह हमारी

शिक्षा–व्यवस्था की अब भी सबसे निर्बल कड़ी है। यह वास्तविक जीवन मे असम्बद्ध हैं। वह उन मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति कोई ध्यान नहीं देती है, जिनकी पूर्ति प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रोढ़ जीवन मे चाहता है। इस प्रकार हमारी प्रचलित माध्यमिक शिक्षा में अनेक दोषों और समस्याओं का समावेश हो गया। हम कुछ प्रमुख समस्याओं और उनके समाधान पर निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहें है–

13.4.1 छात्र अनुशासनहीनता (Student Indiscipline)–

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक नवीन जटिल समस्या– देशव्यापी छात्र–अनुशासनहीनता की है। इसके लिए छात्रों पर दोषारोपण करना, उनके प्रति असीम अन्याय करना है। इसका कारण यह है कि अनुशासनहीनता के लिए छात्र नही, वरन् अनेक शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारण उत्तरदायी है। इन कारणों में सबसे अधिक गम्भीर है– अनुपयुक्त पाठ्यक्रम दोषपूर्ण, परीक्षा–प्रणाली, उद्देश्यहीन शिक्षा, सहशिक्षा का प्रचलन, जातीय पक्षपात, आर्थिक कठिनाईयाँ, सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन, छात्रों के प्रति अध्यापकों की उदासीनता, राजनीतिक दलों का छात्रों को प्रोत्साहन, कामोद्दीपक चलचित्र, अश्लील गीत इत्यादि। इन सब कारणों के फलस्वरूप छात्रों मे अनुशासनहीनता की इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है कि छात्र–वर्ग, समाज के भाल पर कलंक की कालिम को प्रतिदिन अधिक ही अधिक गहरा करता चला जा रहा है। यदि इस समस्या का तुरन्त समाधान नहीं किया गया तो वह असाध्य रोंग बनकर हमारे देश के लिए दारूण दुःख का कारण बन सकती है।

13.4.2 धन का अभाव (Dearth of Money)–

माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के मार्ग में धनाभाव के प्रायः एक अज्ञेय अवरोध उपस्थि कर दिया है। भारत के अधिकांश माध्यमिक स्कूल धनाभाव के कारण अपने छात्रों का शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास करने में पूर्णतया सफल नही होते हे। धनाभाव का मुख्य कारण यह है कि ये स्कूल बहुत कुछ छात्रों से प्राप्त होने वाले शुल्क से चलते है। 25 प्रतिशत से अधिक व्यक्तिगत माध्यमिक स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त नही होती है। सरकार की आर्थिक सहायता के अभाव मे किसी भी स्कूल का कुशलतापूर्वक कार्य करना असम्भव है। यह सहायता इसलिए और अधिक आवश्यक है, क्योंकि स्कूलों को राज्य द्वारा छात्रों के लिए अधिक–से–अधिक पाठ्य–विषयों की शिक्षा और सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यो की व्यवस्था करने के लिए बाध्य किया जाता है। जब तक इन कार्यो के लिए स्कूलों को सहायता–अनुदान के रूप में सरकार से पर्याप्त धन नही मिलेगा, तब तक उनमें कार्यक्षमता का अभाव अनिवार्य रूप से बना रहेगा।

13.4.3 निर्देशन का अभाव (Absence of Guidance)–

भारत के अनेक माध्यमिक स्कूलों में निर्देशन कार्यक्रमो का अभाव है। इन स्कूलों मे निर्देशन ने केवल छात्रों की दषश्टि से, वरन् शिक्षकों एवं प्रधानाचार्य की दषष्टि से भी आवश्यक है। छात्रों की दषष्टि से इसलिए आवश्यक है, क्योंकि अपरिपक्व मस्तिष्क वाले होने के कारण वे अपनी क्षमताओं के अनुकूल पाठ्य–विषयों का चयन करने में असमर्थ होते है। त्रषटिपूर्ण चयन का परिणाम होता है– परीक्षा मे उनकी असफलता और असफलता–अपव्यय का कारण बनती है। जहाँ तक शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यो का प्रश्न है, निर्देशन उनको अपने छात्रों की अभिरूचियों एवं योग्यताओं का ज्ञान प्रदान करता है, जिससे सम्पन्न होकर वे उनकी शैक्षिक प्रगति मे अधिक योग दे सकते है।

13.4.4 दोषपूर्ण पाठ्यक्रम (Defective Curriculum)–

लगभग, एक शताब्दी पूर्व निर्मित किया जाने वाला पाठ्यक्रम अब भी सम्पूर्ण देश में लगभग कुछ परिर्वतनों के साथ माध्यमिक स्कूलों में प्रचलित है। समयानुकूल न होने के कारण उनकी उपयोगिता नष्ट हो गई है और उनमें अनेक गम्भीर दोष प्रकट हो गऐ है। माध्यमिक शिक्षा आयोग, के अनुसार, उनका उल्लेख निम्नांकित क्रम में किया जा सकता है–

1. पाठ्यक्रम– पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक है।
2. पाठ्यक्रम– नीरस, बोझिल एवं परम्परागत है।
3. पाठ्यक्रम– संकुचित एवं एकमार्गिय (Unilateral) है।
4. पाठ्यंक्रम– किशोरों की विभिन्नन रूचियों एवं आवश्यकता को पूर्ण नही करता है।
5. पाठ्यक्रम पर परीक्षा का पूर्ण प्रभुत्व है।
6. पाठ्यक्रम मे प्राविधिक व्यावसायिक विषयों का अभाव है।
7. पाठ्यक्रम का छात्रों के वातावरण और वास्तविक एवं सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाठ्यक्रम के उपर्युक्त दोषों के कारण छात्रों का जो अहित होता है, उस पर प्रकाश डालते हुए 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने लिखा है– जब छात्र स्कूल छोड़ते है, तो ये समाज से असामंजस्यता का अनुभव करते हैं और वे उसमें अपने स्थान को विश्वास एवं कुशलता से ग्रहण नही कर पाते हैं।''

13.4.5 दोषपूर्ण परीक्षा–प्रणाली (Defective System of Examination)–

भारत में प्रचलित परीक्षा–प्रणाली कितनी दोषपूर्ण है, इसका अनुमान 'राधाकृष्णन् कमीशन के अग्रांकित शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है। लगभग आधी शताब्दी से परीक्षा को भारतीय शिक्षा का एक निकृष्टतम तत्व स्वीकार किया गया है। परीक्षा को एक निकृष्टतम तत्व समझे जाने का कारण है उसमें दोषों की प्रचुरता। इन दोषों मे सर्वप्रमुख दोष यह है कि सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर मेट्रीकुलेशन परीक्षा का अखण्ड आधिपत्य है। प्रत्येक हाई और हायर सेकण्डरी स्कूल की कार्य–क्षमता, प्रत्येक अध्यापक की शिक्षण–दक्षता और प्रत्येक छात्र की बौद्धिक योग्यता के केवल एक ही कसौटी है– परीक्षा। जहाँ तक छात्रों का सम्बन्ध है, यह कसौटी उनके लिए अभिशाप बन गई है। क्योंकि इसने उनमें अपराध की प्रवषति को इतना सबल बना दिया है कि वे परीक्षा में उर्तीण होने के लिए किसी भी प्रकार का अनुचित कार्य करने में रंचमात्र भी संकोच नही करते है।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने परीक्षा के उपर्युक्त दोषों की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका मत है कि बाह्मय एवं आन्तरिक, दोनों परीक्षाओं का एकाकी उद्देश्य–छात्रों की मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्ध्यिों की जाँच करता है। वे छात्रों के विकास के अन्य पक्षों की जाँच नही करती है। और यदि करती है तो अप्रत्यक्ष एवं अविश्वसनीय रूप में। 'आयोग ने इसे परीक्षा का अत्यन्त प्राचीन एवं संकुचित कार्य बताया है। उनका कहना है कि 20वीं शताब्दी में परीक्षा के अर्थ और विस्तार मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। उसका कार्य केवल छात्रापें के मानसिक एवं साहित्यिक विकास की जाँच करना नही है, वरन् उसके चतुर्मुखी विकास की भी जाँच करना है।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने बलपूर्वक घोषित किया है कि वर्तमान परीक्षा–प्रणाली द्वारा छात्रों की मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों की माप में विश्वसनीयता का अभाव है। इसका कारण यह है कि प्रचलित निबन्धात्मक प्रकार के प्रश्नों के मूल्यांकन में परीक्षक के मनोभावों का मूर्धन्य स्थान है। अतः उसके द्वारा प्रदान किये जाने वाले अंको को विश्वसनीय नही माना जा सकता है। इन तर्को के आधार पर 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने अपने निष्कर्ष को निम्नांकित वाक्य मे लेखबद्धं किया है–

'उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय ली जाने वाली परीक्षाएँ हमको विद्यार्थियों की मानसिक उपलब्यिों का भी ठीक मूल्यांकन करने मे सहायक नही है।

समाधान–परीक्षा–प्रणाली में परिवर्तन (Change in Examination System)– माध्यमिक शिक्षा–आयोग द्वारा इंगित किये जाने वाले परीक्षा–प्रणाली के दोषो से चिन्तित होकर, भारत–सरकार ने उनका निवारण करने का निर्णय किया। इस उद्देश्य से उसने सन् 1958 मे केन्द्रीय परीक्षा यूनिट (Central Exmination Unit) की नियुक्ति की। इस यूनिट के प्रशिक्षित मूल्यांकन अधिकारियों ने मूल्यांकन की नवीन धरणा के अनुसार परीक्षा–प्रणाली में परिर्वतन किये जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार, मूल्यांकन की विधियाँ ऐसी होनी चाहिए, जिनसे छात्रों के बहुरंगी विकास के सम्बन्ध में पूर्णतया सत्य प्रमाण उपलब्ध हो। यह तभी सम्भव है जब ये विधियाँ– विश्वसनीय, वस्तुपरक एवं व्यावहारिक (Reliable objective Practicable) हों। मूल्यांकन की इस नवीन धारणा की व्याख्या करते हुए 'कोठारी कमीशन' ने लिख है। 'मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का अभिन्न अंग है एवं शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह छात्र की अध्ययन की आदतों एवं अध्यापकों की शिक्षण–विधियों पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। इस प्रकार, मूल्यांकन न केवल शैक्षिक उपलब्धि के मापन मे, अपितु उसमें सुधार करने में भी सहायता देता है।

मुदालियर कमीशन द्वारा अपने परिपक्व अनुभव एवं कोठारी कमीशन के मूल्यांकन की नवीन धारणा के आधार पर समकालिन माध्यमिक शिक्षा–प्रणाली में परिर्वतन करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है।

1. माध्यमिक शिक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।

2. परीक्षा में वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न पूछे जायें और वे पाठ्यक्रम के अधिक –से–अधिक क्षेत्र पर आधारित किए जायें।

3. आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments)– को व्यापक बनाकर, उनके द्वारा छात्रों के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जाय।

4. बाह्य एवं आन्तिरिक परीक्षाओं मे छात्रों की उपलब्ध्यिों का मूल्यांकन– अंको में न किया ज.कर, प्रतीकों में किया जाय।

5. बाह्य परीक्षाओं द्वारा छात्रों की उपलब्धियों का अन्तिम मूल्यांकन करते समय, आन्तरिक जाँचों और नियतकालिक जाँचों को उचित महत्व दिया जाय।

13.4.6 शिक्षण का निम्न स्तर (Low Standard of Teaching) –

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक विकट समस्या– शिक्षण का निम्न स्तर है। पिछले कुछ वर्षो से माध्यमिक शिक्षा की संरचना को नवीन स्वरूप प्रदान करने के लिए,

उसका पुनर्गठन किया जा रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसके उद्देश्यों, पाठ्य–विधियों एवं कायक्रमों में अनेक परिवर्तन किए गये है। परिणामतः आज के माध्यमिक स्कूल 10 या 10 वर्ष पहले के माध्यमिक स्कूल नहीं है, उनको अनेक नवीन कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपे गए है। उनकी सफलता मुख्यतः दो बातो पर निर्भर है– उपयुक्त शिक्षण– विधियाँ एवं उत्साही शिक्षक।

जहाँ तक शिक्षण–विधियों का प्रश्न है, वे सर्वथा अनुपयुक्त है। इसका कारण यह है कि प्रचलित शिक्षण–विधियाँ केवल कुछ सीमा तक छात्रों का मानसिक विकास करती है। वे निर्जीव, नीरस एवं अमनोवैज्ञानिक होने के कारण न तो छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रतिक्रिया करती हैं और न उनके समस्त गुणों का विकास करने में सहायता देती है। जहाँ तक उत्साही शिक्षकों का प्रश्न है, उनकी उपलब्धि की सुदूर भविष्य में भी आशा नही है। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए "माध्यमिक शिक्षा–आयो ने लिखा है हमें इस बात से अत्यधिक दुःख हुआ कि शिक्षकों को सामाजिक स्थिति, वेतन और कार्य की दशाएँ उत्यन्त असन्तोषजनक हैं। वास्तव में , हमारा सामान्य विचार यह है कि समग्र रूप में उनकी स्थिति पहले से बहुत अधिक खराब है।

समाधान– कुछ सुझाव (Some suggestion)– वर्तमान माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण–स्तर को समुन्नत बनाने के लिए दो पमुख सुझाव दिए जा सकते है– शिक्षण की विधियों एवं शिक्षक स्थिति में सुधार। शिक्षण–विधियों के सुधार के सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने जो सुझाव दिए है वे प्रशंसनीय है और उनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है।

1. शिक्षण –विधियों मे क्रिया–पद्धति (Activity Method)– एवं योजना पद्धति (Project Method)– का प्रमुख स्थान होना चाहिए।

2. शिक्षण–विधियों को छात्रों को व्यक्तिगत प्रयासों से ज्ञान का अर्जन करने और उसे प्रयोग करने का अवसर देना चाहिए।

3. शिक्षण–विधियों को छात्रों में कार्य को प्रेम, कुशलता, ईमानदारी और पूर्ण रूप से करने की शक्तिशाली इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए।

4. शिक्षण–विधियों को छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रति ध्यान देना चाहिए और सभी को प्रगती करने के समान अवसर देने चाहिए।

सरांश में माध्यमिक शिक्षा–आयोग ने प्रगतिशील शिक्षण–विधियों (Dynamic Methods of Teachings) का समर्थन किया है। उनका मत है कि ये विधियाँ– सक्रिय

एवं स्फूर्तिपूर्ण होने के कारण प्रचलित नीरस एवं निर्जीव विधियों से कहीं अधिक उतम है।

13.4.7 तीन भाषाओं का अध्ययन (Study of Three Languages)–

सरकार की भाषा–सम्बन्धी नीति ने माध्यमिक शिक्षा में एक अवांछनीय समस्या उपस्थित कर दी है। कुछ सीमा तक इस नीति का सूत्रपात्र मुदालियर आयोग ने किया। उसने यह सुझाव दिया कि निम्न और उच्च माध्यमिक स्तरों पर छात्रों दो भाषाओं का अध्ययन किया जाय। कोठारी अयोग ने इस सुझाव में संशोधन करके, यह विचार प्रकट किया कि निम्न माध्यमिक स्तर के 3 भाषाओं का और उच्च माध्यमिक स्तर पर 2 भाषाओं का अध्ययन किया जाय। भारत सरकार ने इन दोनो आयोगों के विचारों के आधार पर त्रिभाषा–सूत्र (Three Language Formula) प्रतिपादित किया है। उसने अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Education Policy)– में स्पष्ट कर दिया है कि माध्यमिक स्तर पर छात्रों के लिए 3 भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य है। ये भाषाएँ इस प्रकार है।

1. हिन्दी–भाषी राज्यों में हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा, जिसमे दक्षिण की कोई भाषा होनी चाहिए।
2. आहिन्दी भाषी राज्यों में– हिन्दी, क्षेत्रीय भाषा और अंगेजी,

मुदालियर और 'कोठारी आयोगो के अनुसार, माध्यमिक स्तर पर छात्रों को भाषाओं के अतिरिक्त लगभग 7 और विषयों का अध्ययन करना अनिवार्य है। इस प्रकार 3 भाषाओं सहित कुल विषयों की संख्या लगभग 10 हो जाती है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र साधारणतः 11–17 वय वर्ग के होते है। इस वय–वर्ग के बच्चों के लिए 10 विषयों का पाठ्यक्रम निस्सन्देह रूप से अत्यधिक बोझिल है। अतः उसमें अन्य विषयों के साथ–साथ भाषाओं की संख्या में भी कमी की जानी आवश्यक है।

समाधान–दो भाषाओं का अध्ययन (Study of Two Languages)– माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की आयु एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उचित तो यही जान पड़ता है कि उनके लिए दो भाषाओं का अध्ययन बहुत काफी है। तीन भाषाओं के अध्ययन के दुष्परिणाम हो सकते है। या तो वे इनका अधूरा अध्ययन करें, या इनका पूर्ण अध्ययन करने के लिए अन्य विषयों को अधूरा अध्ययन करें। ये दोनों ही बाते स्पष्ट रूप से उसके हित के प्रतिकूल है। दो भाषाओं का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित किया जाना चाहिए–

1. हिन्दी–भाषी राज्यों– हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा।
2. अहिन्दी–भाषी राज्यों में– मातृभाषा और हिन्दी।

हम सरकार के इस विचार से सहमत नहीं है कि 3 भषाओं मे से एक अंग्रेजी होनी चाहिए। हाँ, यदि छात्र चाहें तो वैकल्पिक विषय के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन कर सकते है। हम यह स्वीकार करते है कि अंग्रेजी– विश्व की महत्वपूर्ण भाषा, है पर हम यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। सम्भवतः इसकी पष्ठभूमी मे यह धारणा है कि अंग्रेजी का अध्ययन न करने से भारत, औधोगिक या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पीछे रह जाय। पर यह धारणो निराधार है। रूस, जर्मनी और जापान के उदाहरण हमारे समाने हैं, वहाँ अंग्रेजी का गौण स्थान है फिर भी, ये देश किसी दृष्टि से संसार के किसी भी देश से पीछे नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को स्थान दिया जाय और छात्रों के लिए केवल दो भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य बनाया जायेगा। अंग्रेजी के विषय में हमारी यह धारणा महात्मा गाँधी के अग्रांकित विचार पर आधारित है– ''आज अंग्रेजी निस्सन्देह रूप से विश्व की भाषा है। अतः मै इसे विद्यालय के पाठ्यक्रम मे नही, वरन् विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में द्वितीय वैकल्पिक भाषा का स्थान दूँगा।

13.4.8 गैर–सरकारी स्कूलों की अत्यधिक वृद्धि (Immense Incease in Non-Government Schools)–

गैर– सरकारी माध्यमिक स्कूलों के अन्तर्गत 3 प्रकार के स्कूलों को स्थान दिया गया है, यथा–

1. निकाय स्कूल (Schools Rub by Local Boards)
2. स्वसंचालित स्कूल (Schools Run by Private Bodies)
3. अमान्यता–प्राप्त व्यक्तिगत स्कूल (Unrecognized Private Schools)।

स्वातन्त्रयोत्तत काल में शिक्षा–प्रसाद की आड़ में इन तीनों प्रकार के स्कूलों की संख्या मे अत्यधिक वृद्धि हुई है। हम इनका संक्षिप्त परिचय दे रहे हे। यथा–

1. निकाय स्कूल– भारत में नगरपालकाओं, म्युनिस्पिल बोर्डो और शिक्षा परिषदों द्वारा संचालित किये जाने वाले माध्यमिक स्कूल 12.0 प्रतिशत है। इनकी कार्य कुशलता पर असन्तोष प्रकट करते हुए, माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है– ''यद्यपि हम इनकी कार्य–कुशलता के बारे में कोई अनुचित व्यक्त नहीं देना चाहते हैं, तथापि हमारे पास यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि इन स्कूलों में सुधार करने की अत्यधिक आवश्यकता है।''

2. स्वसंचालित स्कूल– भारत में ये स्कूल 69.2 प्रतिशत है। इनकी दशा निकाय स्कूलों से कहीं कहीं अधिक शोचनीय है। वे जातीय वर्गो, धार्मिक संस्थाओं, राजनीतिक दलों, सेठ–साहूकारों आदि की व्यक्तिगत सम्पति हैं, उनकी आय के निश्चित साधन है। इनमें कार्य करने वाले शिक्षकों को सरकार द्वारा निर्धारित वेतन से कहीं कम वेतन मिलता है और उनमे प्रबन्धकों की इच्छानुसार कभी त्यागपत्र ले लिया जाता है। इनमें उचित उपकरणों का अभाव है और छात्रों की उचित शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

माध्यमिक शिक्षा–आयोग ने स्वसंचालित स्कूलों का चित्र इस प्रकार अंकित किया है– ये स्कूल शिक्षा–संस्थाओं के रूप में न चलाए जाकर बहुत कुछ व्यवसायिक उधोग के रूप में चलाए जाते है। अनेक दशाओं में व्यक्ति अपनी निजी हैसियत में या व्यतियों के समूह बिना उचित भवन या उपकरण के विद्यार्थियों की भरती करके स्कूलों को चलाने लगते हैं, जिससे वे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते है कि शिक्षा–विभागो के पास छात्रों के हित के लिए उनको मान्यता देने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं होता है।

3. अमान्यता–प्राप्त व्यक्तिगत स्कूल– स्वसंचालित स्कूलों से कही अधिक शोचनिय दशा– असमान्यता प्राप्त स्कूलें की है। ये अधिकांश रूप में कसी एक व्यक्ति या (Institute of Education) ने अपने हाल के एक सर्वेक्षण के आधार पर एक आश्चर्यजनक रहस्य का उद्घाटन किया है। रहस्य यह है कि जितने छात्र दिल्ली में हायर सेकण्डरी परीक्षा में सम्मिलित होते है, उनसे दूने छात्रों का अमान्यता प्राप्त प्राईवेट स्कूलों द्वार पंजाब की मैट्रीकुलेशन परीक्षा के लिए तैयार किया जाता है। दिल्ली के एक विशाल प्राईवेट स्कूल के प्रधानाचार्य का मासिक वेतन 1200 रूपये है। इसी प्रकार के एक अन्य प्राइवेट स्कू की 12 शाखायें है।

ये स्कूल– दुकानों के रूप में चलाये जाते है और इनका एकमात्र उद्देश्य धन का अर्जन करना है। इस प्रकार के स्कूलों के शिक्षकों के चरित्र का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इन स्कूलों में छात्रों के विभिन्न गुणों एवं जन्मजात योग्यताओं की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। इस प्रकार, ये स्कूल छात्रों के लिए अभिशाप हैं। इनसे छात्रों का और अन्तोगत्वा देश का कितना महान् अहित हो रहा है, इसका सजीव वर्णन एच०जी० येल्स के अग्रांकित शब्दों मे पढिए– "अगर आप इस बात को महसूस करना चाहते हैं कि पीढ़ियों के बाद पीढ़ियाँ किस तरह पहाड़ी नदियों के वेग से जी हाँ, पहाड़ी नदियों के वेग से– तबाही की ओर बढ़ती जा रही हैं, तो किसी प्राईवेट स्कूल को ध्यान से देखिए।

समाधान–शिक्षा का राष्ट्रीयकरण (Nationalization of Education) – हमने जिन स्कूलों का उपरिकांत पंक्तियों मे वर्णन किया है, उन्हीं का हमारे देश में बाहुल्य

है, क्योंकि राजकीय माध्यमिक स्कूल केवल 18.8 प्रतिशत है। ये सभी गैर–सरकारी स्कूल–छात्रों की वैयक्तिक क्षमताओं के विकास में बाधा उपस्थित करते है। वे उनको इस बात का अवसर और सुविधाएँ प्रदान नहीं करते है कि उनकी विशेष प्रतिमाओं एवं प्रबल स्वाभाविक प्रवृतियों का विकास हो सकें। वे उनको उन आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कशतिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं ढालते है, जिनके बीच उनको रहना है। वे उनके जीवन को सीमित, संकुचित एवं कुण्ठित कर देते है। वे उनको राष्ट्र के जीवन को समृद्ध बनाने का प्रशिक्षण नहीं देते हैं।

इस प्रकार के माध्यमिक स्कूल– देश के भाल पर कलंक के बिन्दु हैं, अपमानजनक एवं आपतिजनक हैं। वे हमारी माध्यमिक शिक्षा की समुन्नति के लिए घातक हैं, उसके विध्वंस के पूर्व सूचक है। वे माध्यमिक शिक्षा की प्रगति के पथ पर ऐसे खतरों के संकेत चिन्ह है, जिनसे उनकी रक्षा की जानी आवश्यक है। इसका केवल एक उपाय है– शिक्षा का राष्ट्रीकरण, सभी गैर–सरकी स्कूलों क। राजकीय प्रबन्ध। साथ ही उन्हें भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा का एक अंग बनाया जाय।

13.5 उच्च शिक्षा की चुनौतियॉ, मुद्दे एव समाधान

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद उसका संख्यात्मक विकास अत्यन्त त्वरित गति से हुआ है। साथ ही दूसरी विशेष बात यह है कि उसका विकास आदि से अन्त तक अनियोजित रहा है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर गया हैं, छात्रों मे ज्ञानार्जन की अभिलाषा नष्ट हो गई है, शिक्षित व्यक्तियों के समक्ष बेरोजगारी की समस्या उपस्थित हो गई है और सर्वोपरि यह शिक्षा–देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को पूर्ण करने मे असमर्थ हो गई है। अतः जैसा कि कोठारी कमीशन' ने लिखा है– ''भारत में सामान्य भावना यह है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असन्तोषजनक एवं भयप्रद भी है।

उच्च शिक्षा के प्रति इस सामान्य भावना के कारण है, उसमें परिलक्षित होने वाली बहुरंगी चुनौतियाँ। हम कुछ प्रमुख समस्याओं एवं उनके समाधान के उपायो को निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत चर्चा कर रहे है।

13.5.1 छात्र अनुशासनहीनता (Student Indiscipline)–

उच्च शिक्षा की सम्भवतः सबसे विकराल समस्या– छात्र–अनुशासन हीनता की है। यह कहना पूर्णतया युक्तियुक्त होगा कि इस समस्या की जननी– आधुनिक उच्च शिक्षा है, जिसकी छत्रछाया में यह दिन–प्रतिदिन भीमकाम रूप धारण करती चली जा रही है औरन नित्य नूतन आकृति में प्रकट हो रही है।

कलकता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति प्रोफेसर एन० के० सिद्धान्त ने एक अध्ययन के आधार पर 7 प्रकार के अनुशासनहीन कार्यो का उल्लेख किया है–

1. उच्छृंखल व्यवहार 2. सामान्य दुर्व्यवहार, 3. यौन–सम्बन्धी दुर्व्यवहार, 4. परीक्षा के दुर्व्यवहार, 5. स्वाधिकारों का दुरूपयोग, 6. धन–सम्बन्धी अनियमितता और 7. चोरी एवं सेंधमारी।

यह अनुशासनहीनता के कार्यो की अन्तिम सूची नहीं है अपितु बानगी–मात्र है। इन कार्यो की संख्या में इतनी वर्षद्धि हो गई है किसी भी सूची को पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। अकारण हड़तालें, अनावश्यक प्रदर्शन, पुलिस से झगड़ा बल का अनुचित प्रयोग, छोटी–छोटी बातों के लिए अनशन, कक्षाओं से बहिर्गमन परीक्षाओं का बहिष्कार, शिक्षकों के साथ अभद्र व्यवहार, सार्वजनिक स्थानों पर मारपीट, कॉलेजों के भवनों एवं रजिष्ट्रारों के कार्यालयों का अग्निहोम, परीक्षा में अनुचित साधनों का सुलेआम प्रयोग, छात्र–संघों के पदाधिकारियों द्वारा अपने अधिकारों का दुरूपयोग, युवतियों का अपहरण और उनके साथ बलात्कार– से सब प्रतिदिन देखे और सुने जाने वाले छात्र–अनुशासनहीता के कुछ नमूने हे।

यह कहना है अतिशयोक्ति न होगी कि उच्च शिक्षा की संस्थाओं में अनुशासनहीनता की समस्या उत्तरोत्तर अधिक–ही–अधिक जटिल होती जा रही है। इसीलिए ''भारतीय विश्वविद्यालय प्रशासन'' ने यह मत प्रकट किया है– ''उच्च शिक्षा के केन्द्रो में अनुशासन बनाए रखने की समस्या प्रतिदिन अधिक गम्भीर होती जा रही है।

("The problem of maintaining discipline in the seats of higher education is assuming greater importance every day)–

समाधान –कुछ सुझाव (Some Suggestions)– छात्र अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए उनके कारणों के अवगत होना आवश्यक है। कोठारी कमीशन ने कुछ कारणों का उल्लेख किया है, जो संक्षिप्त होते हुए भी विस्तृत हैं, यथा–

1. छात्रों का अनिश्चित भविष्य।
2. छात्रों एवं शिक्षकों मे पारस्परिक सम्पर्क का अभाव।
3. अनेक शिक्षकों में विद्वता का अभाव एवं छात्रों की समस्याओं में उनकी अरूचि।
4. अनेक पाठ्य–विषयों का यांत्रिक एवं असन्तोषजनक स्वरूप।
5. शिक्षा–संस्थाओं की विशाल संख्या।
6. शिक्षा– संस्थाओं में शिक्षण एवं सीखने की अपर्याप्त सुविधाएँ।
7. शिक्षा– संस्थाओं के अध्यक्षों मे दृढ़ता, कल्पना एवं कुशलता का अभाव।

8. शिक्षा–संस्थाओं के कार्यो में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप।
9. कुछ कॉलेजो एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की पारस्परिक राजनीति।
10. देश के सार्वजनिक जीवन में अनुशासन का अभाव।
11. वयस्कों के अनुशासन का निम्न स्तर।
12. व्यस्को में नागरिक चेतना एवं सच्चरित्रता का अभाव।

भारतीय समाज में हिंसापूर्ण व्यवहार'' विषय पर भारतीय मनोवैज्ञानिक एसोसियेशन की दिल्ली शाखा द्वारा 2 अप्रैल 1972 को आयोजित परिचर्या में पढ़े जाने वाले लेख मे विश्वविद्यालय प्रशासन के दोषों को छात्र अनुशासनहीनता के लिए उत्तरदायी बताया गया और विश्वविद्यालय प्रशासन के निम्नलिखित दोषों का उल्लेख किया गया। 1. अनिश्चित परीक्षा तिथियाँ, 2. प्रश्न–पत्रों में कम महत्व वाले विषयों पर प्रश्न, 3. कॉलेज अध्यापकों के आश्रितों के लिए विशेष सुविधाएँ 4. पुस्तकालय सुविधाओं का अभाव, 5. छात्रावासों की कम संख्या, 6. विश्वविद्यालय अधिकारियों की निर्दयता और ढीला प्रबन्ध।

इसके अतिरिक्त अनुशासनहीनता क़े कुछ कारण और भी है यथा–

1. दोषपूर्ण परीक्षा–प्रणाली 2. अपूर्ण एवं कीमती पुस्तके, 3. परिवार का दूषित वातावरण, 4. शिक्षा–संस्थाओं का दूषित वातावरण 5. नैतिक शिक्षा का अभाव 6. शिक्षकों में नेतष्त्व की भावना का अभाव 7. शिक्षा–संस्थाओं में सामुदायिक कार्यो का अभाव और 8. निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं का अभाव।

अनुशासनहीनता के कारणों का निवारण करने और छात्रों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करने के लिए समय–समय पर विभिन्न आयोगो, शिक्षाविदों आदि के द्वारा बहुमूल्य सुझाव दिए गये हैं। हम उनकी चर्चा निम्नांकित पंक्तियों में कर रहे है।

(1) उपकुलपतियों का सुझाव– सन् 1969 में भारतीय विश्वविद्यालय के उपकुलपतियों का सम्मेलन (Vice Chancellor's Conference) मे यह सुझाव दिया गया कि छात्रों को समय–समय पर राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमों, धर्म–निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकीकरण, संविधान एवं नागरिकता का परिचय दिया जाना चाहिए। यह परिचय उनमें देश के प्रति निष्ठा उत्पन्न करेगा, जिसके फलस्वरूप उनकी अनुशासन भावना में वृद्धि होगी।

(2) भारतीय विश्वविद्यालय प्रशासन का सुझाव– भारतीय विश्वविद्यालय प्रशासन (Indian University Administration) के अनुसार अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने का सर्वोतम उपाय यह है कि तरूण छात्रों की क्रियाओं को स्वस्थ दिशाओं में मोड़ा जाय। यह तभी सम्भव है, जब उनके लिए अतिक्ति शैक्षिक

सुविधाओं का आयोजन किया जाय, यथा–खेल–कूद छात्रावासों में सामुदायिक जीवन भोजनालयों का छात्रों द्वारा प्रबन्ध वाद–विवाद एवं गोष्ठियाँ। परन्तु शर्त यह है कि इन सब कार्यो में शिक्षक अग्रणी हों।

(3) राधाकृष्णन् कमीशन का सुझाव– ''राधाकृष्णन् कमीशन'' के विचारानुसार अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। यह शिक्षा निश्चय रूप से उनके चरित्र का निर्माण कर सकती है। क्योंकि यह शिक्षा– श्रेष्ठ साहित्य एवं श्रेष्ठ पुस्तकों में निहित रहती है, इसलिए छात्रों को उनका अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ मे 'कमीशन ने लिख– ''श्रेष्ठ साहित्य, श्रेष्ठतम भावना को जाग्रत करता है और उच्चतम आदर्श एवं आकांक्षा को बढ़ावा देता हे। अतः श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन, जो हम में आशा का संचार करती है, विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में अनिवार्य है।

(4) कोठारी कमीशन के सुझाव– ''कोठारी कमीशन'' ने छात्र–अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए बहुत ही सुलझे दिए है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है।–

1. शिक्षा एवं प्रशासन से सम्बन्धित सब कमियों को दूर किया जाना चाहिए।

2. शिक्षा के सब स्तरों एवं सब संस्थाओं में सुधार किया जाना चाहिए।

3. छात्र–संघ एवं छात्रों की समस्त समितियों में शिक्षक अवश्य होने चाहिए।

4. उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं द्वारा छात्रों को निर्देशन एवं परामर्श दिये जाने का कार्य किया जना चाहिए।

5. छात्रों में स्व–अनुशासन (Self-Discipline) एवं सकारात्मक अनुशासन (Positive Discipline) की भावनाओं का विकास किया जाना चाहिए।

6. छात्रों एवं शिक्षकों में पारस्परिक प्रेम एवं सम्मान पर आधारित एक–दूसरे का साथी होने की भावना का विकास किया जाना चाहिए।

7. सम्पूर्ण विश्वविद्यालय–जीवन को एक माना जाना चाहिए। अतः छात्रों शिक्षकों एवं प्रशासन के मध्य विभेदीकरण के सब प्रयासों का अन्त किया जाना चाहिए।

8. प्रत्येक विश्वविद्यालय की सभा एवं साहित्यिक परिषद् (Court and Academic Council) में छात्रों के प्रतिनिधि होने चाहिए, ताकि वे अपने दायित्वों को समझ सकें और आवश्यकता पड़ने पर अपनी माँगों को प्रस्तुत कर सकें।

9. प्रत्येक कॉलेज एवं प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग में छात्रों एवं शिक्षकों की संयुक्त समितियाँ (Joint Committee) होनी चाहिए। इन समितियों की बैठकों में छात्रों

की सभी समस्याओं पर विचार किया जाना चाहिए और उनका समाधान खोजने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

10. विश्वविद्यालय के उपकुलपति एवं कॉलेज के प्रिंसिपल की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय समिति (Central Committee) का निर्माण किया जाना चाहिए। इस समिति में छात्रों एवं शिक्षकों–दोनो के प्रतिनिधि उचित अनुपात में होने चाहिए। यह समिति न केवल छात्रों की जटिलतम समस्याओं का समाधान करने में सफल होगी, अपितु छात्रों एवं शिक्षकों में निकट सम्पर्क भी स्थापित करेगी।

11. अनुशासनहीनता के चाहे जो भी कारण हो, छात्रों की इस प्रवषति का दमन करना और उनको सभ्य व्यक्ति बनाना शिक्षा का सर्वप्रथम कार्य है, आयोग के शब्दों में –शिक्षा चाहे और कुछ करे या न करें, उसे कम–से–कम युवकों एवं युवतियों में सभ्य व्यवहार के मानदण्डो को सीखने और प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

उपर्युक्त सुझावों का सतर्कता से अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते है कि अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए 8 उपाय विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकते है यथा 1. उच्च शिक्षा के समस्त दोषों का निवारण 2. नैतिक शिक्षा की व्यवस्था, 3. निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था 4. छात्र–क्रियाओं एवं छात्र–कल्याण सेवओं के व्यवस्था 5. अतिरिक्त शैक्षिक सुविधाओं का आयोजन, 6. छात्रों एवं शिक्षकों में निकट सम्पर्क 7. छात्रों में स्व–अनुशासन की भावना का विकास और 8. विश्वविद्यालय की भाषाओं एवं साहित्यिक परिषदों में छात्रों का प्रतिनिधित्व।

ये उपाय, अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने में श्लाघनीय योग दे सकते है। किन्तु केवल उपाय ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि छात्र शिक्षक, समाज, सरकार, अभिभावक एवं राजनीतिक दल– सभी संयुक्त रूप में इस समस्या का उन्मूलन करने के लिए हार्दिक प्रयास करें। इनका कारण यह कि अनुशासनहीनता का दायित्व किसी एक पर न होकर सब पर है, एकपक्षीय न होकर बहुपक्षीय है। हम अपने इस विचार की पुष्टि मे शिक्षा–आयोग के निम्नांकित शब्दों को उद्धत कर सकते है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अनुशासनहीनता का उत्तरदायित्व एकपक्षीय नहीं है। यह केवल छात्रों या अभिभावकों या शिक्षकों या राज्य–सरकारों या राजनैतिक दलों का उत्तरदायित्व नही है वरन् बहुपक्षिय है। इन सबका इस उत्तरदायित्व में भाग है।

13.5.2 निर्देशन व परामर्श का अभाव (Absence of Guidance and Counselling)–

उच्च शिक्षा की संस्थाओं में निर्देशन एवं परामर्श–सेवाओं का प्रायः पूर्ण अभाव है। अतः छात्र अपनी स्वयं की इच्छा से अपने अभिभावकों के दबाव से या किसी अनुभवहीन व्यक्ति के परामर्श से पाठ्य–विषयों का चयन करते है। इस प्रकार का चयन अनेक छात्रों के समक्ष संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित कर देता है। पाठ्य–विषयों का थोड़ा–सा अध्ययन ही उनको स्पष्ट संकेत देने लगता है कि वे उनकी रूचियों के अनुकूल नहीं है, या उस पर अधिकार प्राप्त करने की उसमें क्षमता नहीं है या वे उनके भावी जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है।

इन बातों का पहला दुष्परिणाम होता है– परीक्षा के असफलता और दूसरा दुष्परिणाम होता है– जीवन में असफलता। इस प्रकार, निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं के अभाव के कारण अनेक छात्रों का अपने भावी जीवन में पग–पग पर निराशा एवं निष्फलता के झपेटों का शिकार बनना पड़ता है।

समाधान–निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था (Provision of Guidance and Counselling)– छात्रों की भावी सफलता एवं सम्पन्नता के लिए परम आवश्यक है कि निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं को उच्च शिक्षा का अविभाज्य अंग बनाया जाय। ये सेवाये प्रत्येक कॉलेज और प्रत्येक विश्वविद्यालय के छात्र को उपलब्ध होनी चाहिए। ये सेवाए ही उसकी रूचियों एवं आवश्यकताओं, उसकी क्षमताओं एवं शैक्षिक योग्यताओं का अध्ययन करके उसे उपयुक्त एवं उपयोगी पाठ्य–विषयों का चयन करने में सहायता हो सकती है। इतना ही नहीं ये सेवाएँ उसकी आर्थिक, वैयक्तिक एवं पारिवारिक उलझने को सुलझाने मे भी उसकी सहायता कर सकती है।

अतः आवश्यक है कि उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं मे निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं की उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए। ये सेवाएँ–छात्रों को संस्थाओं में प्रवेश करने के समय से लेकर उनको छोड़ने के समय तक और उसके पश्चात् भी होनी चाहिए।

"कोठारी कमीशन" ने इस बात पर दुख प्रकट किया है कि हमारी उच्च शिक्षा की संस्थाओं में निर्देशन एवं परमर्श सेवाओं का एक भी चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होता है। उसने सिफारिश की है कि सभी संस्थाओं में इन सेवाओं की यथाशीघ्र स्थापना की जानी चाहिए। उसका सुझाव है कि प्रत्येक 1000 छात्रों वाली संस्था में एक परामर्शदाता (Counsellor) होना चाहिए और यदि संस्थाओं में छात्र–संख्या कम है तो दो या अधिक संस्थानों के लिए एक परामर्शदाता हो सकता है। निर्देशन एवं परामर्श का

कार्यक्रम जो छात्रों को पाठ्यक्रमों का चयन करने और उनकी संवेगात्मक एवं मनौवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने मे सहायता देता है है उच्च शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए।

कोठारी कमीशन के सुझाव की उपयोगिता को स्वीकार करके दिल्ली और बनारस जैसे कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने छात्रों के लिए निर्देशन एवं परामर्श का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है। अन्य विश्वविद्यालयों में भी इस कार्यक्रम का सूत्रपात किया जाना आवश्यक है।

13.5.3 दोषपूर्ण पाठ्यक्रम (Defective Curriculum)

स्वतन्त्र भारत में उच्च शिक्षा का इतना अधिक प्रसार हुआ है कि वह शिक्षा की समस्त उपलब्ध सीमाओं को पार कर गया है। शिक्षा प्रसार के नाम से कुछ स्थानों में कर्मठ समाज सेवकों ने और अन्य स्थानों में धनार्जन के लिए लालायित लोगो ने थोड़ी–सी भूमि पर कुछ कमरे खड़े करके उनको कॉलेजों की संज्ञा दे रखी है। नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना और पुराने विश्वविद्यालयों के क्षेत्राधिकारों में कमी होने के कारण इन नाममात्र के कॉलेजों को मान्यता प्राप्त करने मे किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। इन सब कॉलेजो के पाठ्यक्रमों में प्रायः वहीं विषय है, जिनके शिक्षण के लिए न तो विशेष सुविधाओं की आवश्यकता है और न विशेष साज–सज्जा की यथा– इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, इत्यादि।

शिक्षा –विस्तार के लिए इन कॉलेजों की स्थापना की सराहना अवश्य की जा सकती है, पर इनमें प्रचलित पाठ्यक्रमों की नहीं। इसका कारण यह है कि ये पाठ्यक्रम अनेक दोषों से परिपूर्ण है। यथा– कठोरता, विविधता एवं व्यावसायिक विषयों का अभाव, पाठ्य–विषयों की छात्रों एवं समाजल के लिए अनुपयोगिता और अध्ययन के विषयों की सीमित संख्या। अतः छात्रों को अपनी रूचियों के अनुसार विषयों का चयन करने का कोई अवसर प्राप्त नही होता। फलस्वरूप उनकी क्षमताओं कुण्ठित हो जाती है और उनका मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

यदि हम समग्र रूप से उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रमों पर दृष्टिपात करें तो हमें उनका रूप बहुत–कुछ वही मिलता है जो उक्त कॉलेजों के पाठ्यक्रम का है। अन्तर केवल इतना है कि कुछ शिक्षा–संस्थाओं में अध्ययन के विषय अधिक है। वास्तविक यह है कि यद्यति आज के भारत की आवश्यकताओं पराधीन भारत की आवश्यकताओं से सर्वथा भिन्न है, तथापि पाठ्यक्रमों मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता है। उनमें अब भी वही घिसे–पिटे विषय हैं जो आज से लगभग 50 वर्ष पहले थे।

अतः हम कह सकते है कि हमारी उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रम दोषपूर्ण है और आधुनिक भारत के लिए नितान्त निरर्थक है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए राधाकृष्णन् कमीशन ने लिखा है। जो पाठ्यक्रम वैदिक काल में उपयोगी था, उसे 20वीं शताब्दी में बिना परिवर्तन किए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

समाधान--पाठ्यक्रम में सुधार (Reform in Curriculum) राधाकष्णन् कमीशन के विचार से सहमत होने के कारण कोठारी कमीशन ने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन एवं सुधार करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए है।

1. उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम को विद्यालय–पाठ्यक्रम से कठोरतापूर्वक सम्बद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

2. स्नातक–पूर्व स्तर पर पाठ्यक्रम उससे अधिक लचीला होना चाहिए, जितना कि इस समय है।

3. उक्त स्तर पर छात्रों को पाठ्य–विषयों का चयन करने के लिए अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए।

4. उक्त स्तर पर सामान्य, विशिष्ट एवं ऑनर्स पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रमों को परिवर्तित करक अधिक लचीला बनाया जाना चाहिए।

पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए कोठारी कमीशन का सबसे महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि शिक्षा का देश एवं व्यक्तियों की आवश्यकताओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कमीशन ने पाठ्यक्रम में कार्यानुभव, व्यवसायिक विषयों और कृषि, विज्ञान एवं प्राविधिक शिक्षा को स्थान दिए जाने का सुझाव प्रस्तुत किया है।

भारत सरकार ने कमीशन के सुझाव को स्वीकार करके, उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए पाँचवी पंचवर्षीय योजना में निम्नांकित कार्यक्रमों को स्थान देने का निश्चय किया है।

1. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को प्रचलित करके, स्नातकों की रोजगार–सम्बन्धी योग्यता में वृद्धि करना।

2. उच्च शिक्षा के प्रत्येक पाठ्यक्रम का व्यावहारिक समस्याओं एवं समाजिक उपयोगिता से सम्बन्ध स्थापित करना।

3. पाठ्यक्रम को लचीला, बनाकर, छात्रों को अधिक पाठ्य–विषयों में से अपनी रूचियों के अनुकूल विषयों का चयन करने की स्वतन्त्रता प्रदान करना।

13.5.4. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective System Examination)–

कॉलेजों एवं विश्वविद्यलयों में प्रचलित परीक्षा–प्रणाली मुख्यतः निबन्धात्मक प्रकार की है। निबन्धात्मक प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्य–विषय पर आधारित न होकर, उसके केवल एक अंश पर आधारित होते है। अतः वर्तमान परीक्षा–पद्धति में वैधता, व्यापकता, वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता का पूर्ण अभाव है। इसके अतिरिक्त इस पद्धति में बाह्मय परोक्षाओं का शीर्षस्थ स्थान है और कक्षा–कार्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं को तनिक भी महत्व नहीं दिया जाता है।

हमारी उच्च शिक्षा में दोषपूर्ण परीक्षा–प्रणाली की समस्या लगभग एक शताब्दी से विद्यमान है। यह समस्या इतनी त्रासपूर्ण है कि कोई भी छात्र साल भर चैन की नींद नहीं सो पाता है, क्योंकि वह जानता है कि वर्ष के अन्त मे होने वाली अन्तिम बाह्मय परीक्षा उसके लिए विष की पोटरी बन सकती है। दिल दहलाने वाली इस भयावह परीक्षा ने अनेक आयोगो और समितियो के ध्यान को अपनी ओर बरबस खींचा है। सन् 1902 में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने इसके विषय में यह मत व्यक्त किया– भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा का महानता दोष यह है कि शिक्षण, परीक्षा के अधीन है न कि परीक्षा, शिक्षण के।

सन् 1949 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने यह विचार प्रकट किया– यदि हमसे विश्वविद्यालय शिक्षा मे केवल एक बात के बारे मे सुझाव देने के लिए कहा जाय, तो यह सुझाव परीक्षाओं के सम्बन्ध में होगा।

समाधान– परीक्षा प्रणाली में सुधार (Reform in Examination System) उच्च शिक्षा मे प्रयोग की जाने वाली परीक्षा–प्रणाली को दोषमुक्त करने के लिए समय–समय पर जो सुझाव दिये गये है, उनका संक्षिप्त वर्णन दष्टव्य है। यथा–

(अ) राधाकृष्णन् कमीशन के सुझाव– इस कमीशन के मुख्य सुझाव निम्नलिखित है–

1. शिक्षा मन्त्रालय को मूल्यांकन की वैज्ञानिक विधियाँ का कार्य आरम्भ करना चाहिए।

2. अन्तिम परीक्षा को में छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन करते समय उनके द्वारा दिये जाने वाले कक्षा–कार्य पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए।

3. प्रत्येक विषय के लिए निर्धारित सम्पूर्ण अंको मे से एक तिहाई अंक कक्षा–कार्य के लिए होने चाहिए।

4. स्नातक स्तर पर छात्रों की परीक्षा प्रत्येक वर्ष के अन्त में स्वतः पूर्ण इकाइयों (Self-Contained Units) के रूप में ली जानी चाहिए।

5. स्नतकोतर स्तर पर सत्र–परीक्षाओं को अन्तिम परीक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

6. प्रत्येक विश्वविद्यालय मे परीक्षकों का एक स्थायी बोर्ड होना चाहिए, जिसे विश्वविद्यालय और उसके समबद्ध के शिक्षकों को वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की योजनाएँ बनाने में सहायता देनी चाहिए।

(ब) कोठारी कमीशन के सुझाव– परीक्षा–सुधार के सम्बद्ध मे कोठारी कमीशन के सुझाव अग्र प्रकार है।

1. सब शिक्षण–विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं का स्थान शिक्षकों के आन्तरिक एवं सतत् मूल्यांकन (Internal and Continuous Evaluation) को दिया जाना चाहिए।

2. सब सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालयों मे बाह्य परीक्षाओं की पूर्ति करने के लिए आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) की पद्धति प्रारम्भ की जानी चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों के शिक्षकों को मूल्यांकन की नवीन एवं उन्नत विधियाँ से परिचित कराया जाना चाहिए।

उल्लिखित आयोग के सुझावों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनो ने बाह्य परीक्षाओं के महत्व को कम करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त दोनो ने आन्तरिक परीक्षाओं एवं मूल्यांकन की नवीन विधियों के प्रयोग पर बल दिया है।

(स) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सुझाव– शिक्षा–मन्त्रालय ने राधाकृष्णन कमीशन के सुझाव को स्वीकार करके, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grant Commission) से मूल्यांकन की नवीन विधियों एवं परीक्षा प्रणाली में सुधार करने के उपायों के सम्बन्ध में अपना परामर्श देने को कहा। आयोग ने इन कार्यो को सम्पन्न करने के लिए अपने कुछ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने सन् 1962 में अपना प्रतिवेदन किया जिसमें परीक्षा में सुधार करने के लिए निम्नलिखित मुख्य सुझाव दिये गये।

1. विश्वविद्यालयों की बाह्य परीक्षाओं में कमी की जाय।

2. छात्रों की प्रगति की बाह्य मूल्यांकन करने के लिए, उनके शिक्षकों द्वारा प्रगति परीक्षाओं (Continuous Assessments) का कार्य आरम्भ किया जाय।

3. शिक्षा–कार्य में व्याख्यानों के अतिरिक्त विचार गोष्ठियों (Seminars) ट्यूटोरियल कार्य (Tutorial Work) आदि का भी प्रयोग किया जाय।

4. ट्यूटोरियल कक्षाओं में छात्रों द्वारा किये जाने वाले कार्य का नियमित रूप से मूल्यांकन किया जाय, मूल्यांकन को लिखित रूप में रखा जाय और अन्तिम परीक्षा में उसको महत्व दिया जाय।

भारत सरकार इन सुझावों को मान्यता प्रदान कर चुकी है और इनकी पष्ठभूमि में कार्य आरम्भ हो चुका है। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अनुसार– ''परीक्षा सुधर का कार्यक्रम जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आरम्भ किया जा चुका है, पाँचवी योजना में और तेजी से किया जायेगा।

परीक्षा–सुधार लम्बे अरसे से गम्भीर चर्चा का विषय रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा–नीति 1986 मे परिकल्पना की गई है कि परीक्षा–प्रणाली में सुधार लाया जाना चाहिए ताकि ऐसी मूल्यांकन प्रणाली सुनिश्चित की जा सकें जो छात्र के विकास के लिए प्रामाणिक तथा विश्वसनीय मानदण्ड होने के साथ–साथ अध्ययन और अध्यापन में सुधार लाने वाला सशक्त साधन भी हो। कार्यात्मक दृष्टि से इसका अभिप्राय निम्नलिखित से होगा–

1. अवसर और आत्मपरकता के अतिशय तथ्य को समाप्त करना।
2. कण्ठस्थीकरण पर दबाव को कम करना।
3. पूरी शैक्षिक अवधि में सतत् तथा व्यापक मूल्यांकन जिसमें शिक्षा के शैक्षिक तथा गैर–शैक्षिक दोनो पहलू शामिल हों।
4. शिक्षकों छात्रों तथा अभिभावकों द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया का कारगर उपयोग।
5. परीक्षा के संचालन में सुधार
6. अंको के स्थान पर ग्रेडो का प्रयोग।

कार्य योजना, 1992 में यह परिकल्पना की गई है कि सभी विश्वविद्यालयों मे स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर वैधीकरण परीक्षाओं को शुरू किया जाय। प्रारम्भ में सभी विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर, विभागों द्वारा धीरे–धीरे सेमेस्टर, ग्रेडिंग, सतत् मूल्यांकन तथा क्रेडिट प्रणालियों को अपनाया जाय। इसके बाद स्नातक स्तर पर लागू किया जाय। प्रत्येक विश्वविद्यालय ग्रेडिंग के सम्बन्ध मे व्यापक मार्ग–निर्देश तैयार करेगा। जिनका अनुसरण इसके अधिकार क्षेत्र में आने वाले कॉलेजों, संस्थाओं तथा विभागों द्वारा किया जायेगा। शिक्षकों को ग्रेडिंग प्रणाली से परिचित कराने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से परीक्षा–सुधार में

समपयुक्त पाठ्यक्रम विकसित किये जायेगें ताकि विभिन्न प्रकार और स्तर के कर्मियो को बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण दिया जा सकें।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में एक परीक्षा सुधार केन्द्र स्थापित किया जायेगा जो उच्च शिक्षा में परीक्षा सुधारों से सम्बन्धित सूचना का समन्वय, प्रलेखन और प्रचार–प्रसार करेगा। इसी प्रकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् इस कार्य को स्कूल स्तर पर करेगा।

परीक्षाओं से सम्बन्धित विभिन्न कुप्रथाओं को परिभाषित करने तथा उनको सज्ञेय तथा गैर जमानती अपराध समझे जाने से सम्बन्धित एक कानून बनाये जाने की सम्भावना पर विचार किया जायेगा। ऐसे कानून बन जाने पर इसमें कानून के अन्तर्गत विभिन्न अपराधों के लिए दण्ड के स्वरूप और प्रकार को निर्धारित करने और परीक्षाओं से सम्बन्धित विभिन्न ऑपरेशनों में लगे व्यक्तियों को अपने अधिकार क्षेत्र मे शामिल करने तथा उनकी सुरक्षा भी प्रदान करने का प्रावधान होगा।

स्वैच्छिक आधार पर राष्ट्र व्यापी परीक्षाएँ आयोजित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन (National Evaluation Organization- NEO) को गुणात्मक नियन्त्रण तन्त्र के रूप में विकसित किया जायेगा ताकि निष्पादन की तुलनात्मकता के लिए और स्वतंन्त्र परीक्षाओं के संचालन के लिए भी मानदण्ड विकसित किये जा सकें। सन् 1992 में इस संगठन की स्थापना हो गई है।

13.5.5 अपव्यय (Wastage)

हमारे देश मे उच्च शिक्षा के स्तर पर अपव्यय की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। उसकी गम्भीरता का अनुमान राधाकष्ण्न् कमीशन के अग्रांकित शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है– सार्वजनिक धन का प्रति वर्ष अति महान अपव्यय हो रहा है। किन्तु इससे भी अधिक दुख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की इस महान् हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है, जितनी कि छात्रों एवं उनके अभिभावकों के समय, शक्ति तथा धन के नाश और उनकी आशाओं एवं अभिलाषाओं पर भयंकर हिमपात के प्रति।

"A deplorable wastage of public fund goes on year after year but what is worse there is an unconcerned complacency about the serious loss of public fund on the one hand and waste of time, energy and funds of students and their parents besides terrible frustration of their, hopes and aspirations on the other"

डॉ० एस० एन० मुकर्जी ने उच्च शिक्षा में अपव्यय के कुछ आँकड़े इस प्रकार दिये हैं– डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में जितने छात्र प्रवेश लेते है, उसमें से 50 प्रतिशत से अधिक बी०ए०, बी० कॉम० और बी०एस०सी० की परीक्षाओं में असफल होते है। इस

प्रसंग मे डॉ० देशमुख के अग्रांकित वाक्य को उद्धत करना असंगत प्रतीत नही होता है– ''भारत में विश्वविद्यालय–शिक्षा मे अपव्यय की मात्रा संसार मे सबसे अधिक है।''

उच्च शिक्षा में होने वाले इस महान् अपव्यय के प्रमुख कारण इस प्रकार है–

1. शिक्षण का निम्न स्तर।
2. छात्रो की आर्थिक कठिनाईयों
3. छात्रावासों की सुविधा का अभाव
4. योग्य शिक्षकों का अभाव
5. उपयुक्त शिक्षण–सुविधाओं का अभाव
6. आयोग्य छात्रों का उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश।

समाधान– कुछ सुझाव (Some Suggestions)– उच्च शिक्षा की परिधि में से अपव्यय की भयावह समस्या को निष्कासित करने के लिए निम्नांकित उपायों को प्रयोग में लाया जा सकता है–

1. परीक्षा–प्रणाली को परिवर्तित एवं दोषमुक्त किया जाय।
2. बाह्य परीक्षाओं की तुलना में आन्तरिक परीक्षाओं को अधिक महत्व दिया जाय।
3. परीक्षाओं में असफल होने वाले छात्रों के लिए परीक्षा एवं पुनः मूल्यांकन की व्यवस्था की जाय।
4. पाठ्यक्रम में छात्रों की अभिरूचियों एवं अभिवषतियों के अनुसार अधिक विषयों को स्थान दिया जाय और उनको व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय।
5. सार्जेण्ट–रिर्पोट के अनुसार, हाई स्कूल की परीक्षा में सफल होने वाले विद्यार्थियों में 15 में से केवल 1 को उच्च शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी जाय।
6. केन्द्रीय शिक्षा–सलाहकारों बोर्ड (CABE) के अनुसार, केवल उन्हीं छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी जाय जिनके लिए यह शिक्षा भविष्य में आवश्यक है।
7. कोठारी कमीशन के अनुसार चयनात्मक प्रवेश प्रणाली (System of Selective Admission) का प्रयोग करके केवल योग्य विद्यार्थियो को ही उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश दिया जाय।

13.5.6 छात्र संख्या में वृद्धि (Increase in Number of Students)

गत वर्षो में उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में अति तीव्र गति से वृद्धि हुई है। वर्ष 1950–51 मे विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या 3.6 लाख वर्ष 1960–61 में 8.9 लाख और वर्ष 1993–94 में 48.05 लाख थी। भारत ऐसे सीमित साधनों वाले देश के लिए छात्रों की इस निरन्तर बढ़ती हुई संख्या के लिए शिक्षा की सुविधाएँ सुलभ बनाना असम्भव है।

इस प्रकार छात्र संख्या की वृद्धि से गम्भीर चुनौतियाँ सम्बद्ध है– छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के लिए शिक्षा की सुविधाओं की व्यवस्था और शिक्षित व्यक्तियों के लिए बताते हुए लिख है– हमारे देश की अर्थव्यवस्था न तो इस पैमाने पर उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए धन जुटा सकती है और न उसमें लाखों स्नातकों के लिए उपयुक्त रोजगारों की व्यवस्था करने की क्षमता है।

"An economy like ours can neither have the funds to expand higher education on this scale nor the capacity to find suitable employment for millions of graduates"

समाधान–' कुछ सुझाव (Some Suggestions)– छात्रों की बढ़ती हुई संख्या से उत्पन्न होने वाली उपर्युक्त समस्याओं का समाधान करने के लिए कोठारी कमीशन ने 3 सुझाव दिए है यथा–

1. चयनात्मक प्रवेश–प्रणाली का प्रयोग।

2. स्नातक–पूर्व स्तर पर कला एवं वाणिज्य की कक्षाओं मे छात्र–संगठनों की वृद्धि पर अंकुश।

3. स्नातक–पूर्व स्तर पर कृषि, शिक्षण और इंजीनियरिंग की शिक्ष की व्यवस्था। जहाँ तक दूसरे और तीसरे सुझाव का प्रश्न है, शिक्षा–मर्मज्ञों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। परन्तु पहले सुझाव के सम्बन्ध में उनमें मतैक्यता नहीं हैं। कुछ शिक्षा–विशेषज्ञों ने चयनात्मक प्रवेश–प्रणाली का जोरदार विरोध करते हुए कहा है कि प्रजातन्त्र की सुदृढता की दृष्टि से नवयुवकों की उच्च शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगाना सर्वथा अनुचित है। उसके विपरीत इस प्रणाली के समर्थकों ने इसके पक्ष मे 2 अकाट्स तर्क दिए है। पहला, उच्च शिक्षा मे होने वाले विशाल अपव्यय को रोकने और इस शिक्षा के स्तर को उँचा उठाने के लिए चयनात्मक प्रवेश पणली का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। दूसरा उच्च शिक्षा की संस्थाओं में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनमें उसे प्राप्त करने की योग्यता है और जिनके लिए वह जीवन मे उपयोगी सिद्ध हो।

चयनात्मक प्रवेश–प्रणाली को केन्द्रीय शिक्षा–सलाहकार बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० देशमुख का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ है। डॉ०

देशमुख ने इस प्रणाली का देश के लिए शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता एवं उपलब्ध आर्थिक साधनों के आधार पर समर्थन करते हुए कहा है– यदि उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध सीमित साधनों की अपव्यय से रक्षा की जानी है, तो विश्वविद्यालय में छात्रों को चयन के आधार पर ही प्रवेश दिया जाना चाहिए।

13.5.7 शिक्षा का निम्न स्तर (Low Standard of Education)–

हमें बहुधा यह सुनाई देता है कि आज की शिक्षा से पहली कहीं ज्यादा अच्छी थी। पहले बी०ए० पास व्यक्ति बहुत अंग्रेजी लिखता और बोलता था, पर आज के एम०ए० पास व्यक्ति को न तो अंग्रेजी आती है औ न हिन्दी। इससे सिद्ध होता है कि हमारे देश में उच्च शिक्षा का स्तर पहले से बहुत अधिक गिर गया है। इस पर चिन्ता प्रकट करते हुए आयंगर ने लिखा है– "हमारे ज्ञान या शिक्षा का स्तर वैसे तो कभी उँचा नहीं था, पर अब तो यह तीव्र गति से नीचे की ओर जा रहा है।"

"Our standard whether is scholarship never very high or exacting are now fast racing to the bottom" K.R.Y. Iyengar

वस्तुतः जब किसी वस्तु का स्तर एक बार गिरना आरम्भ हो जाता है तक वह फिर अपने पुराने स्तर पर नहीं पहुँच पाती है। यही बात उच्च शिक्षा के विषय मे कही जा सकती है। इसका स्तर वर्षो से निरन्तर गिरता चला आ रहा है, और इसलिए इसका अपनी पूर्ण स्थिति को पुनः प्राप्त करना असम्भव प्रतीत होता है। इसका कारण बताते हुए डॉ० मुकर्जी ने लिख है– "शिक्षा का स्तर एक बार गिर जाने पर फिर उँचा नहीं उठता है क्योंकि उस पर ग्रेशम का नियम लागू हो जाता है।"

"Academic standards once lowered are not retrievable, and Gresham's law is applicable to them" S.N. Mukerji

समाधान– कुछ सुझाव (Some Suggestions)– यद्यपि डॉ० मुकर्जी के अनुसार, उच्च शिक्षा को अपने पूर्व स्तर पर नहीं पहुँचाया जा सकता है, पर यदि इस कार्य को धैर्य, लगन और परिश्रम से कया जाय, तो इसमें सफलता अवश्य प्राप्त हो सकती है। इसी विश्वास से बल प्राप्त करके शिक्षा–स्तर के गिरावट के प्रमुख कारणों और उनके निवारण के उपायों की चर्चा, की जा रही है, यथा–

1. **कारण**– प्रवेश –नीति में असमानता– शिक्षा स्तर के गिरावट का पहला कारण– विश्वविद्यालयों में प्रवेश–नीतिमे असमानता है। उदाहरणार्थ– आंध्र और अन्नामलई विश्वविद्यालयों में प्री–यूनीवर्सिटी क्लास मे प्रेवेश की न्यूनतम आयु 14 वर्ष है। दिल्ली, बड़ौदा और गुजरात मे यह आयु 15 वर्ष है। मद्रास, कर्नाटक, कुरूक्षेत्र

और जादवपुर विश्वविद्यालयों में त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश की न्यूनतम आयु 15 वर्ष है।

प्रवेश–नीति में समानता न होने के कारण अपरिपक्व अवस्था वाले– छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिल जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव– शिक्षा के स्तर पर पड़ता है और वह गिर जाता है।

उपचार– प्रवेश–नीति में समानता– शिक्षा का उन्यन करने के लिए सब विश्वविद्यालयों में प्रवेश–नीति का समान होना आवश्यक है। उनमें केवल परिपक्व अवस्था वाले छात्रों को ही प्रवेश दिया जाना चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा–सलाहकार बोर्ड ने एक प्रस्ताव पारित करके, प्रवेश की न्यूनतम आयु 17 वर्ष निर्धारित की है।

विश्वविद्यालय–अनुदान आयोग ने 17 वर्ष की न्यूनतम आयु से अपनी सहमति प्रकट की है। किन्तु उसका विचार है कि आयु को तुरन्त निर्धारित करना, छात्रों के हित के प्रतिकूल होगा। अतः पहले इस आयु को 16 वर्ष रखा जाय।

स्वयं आयोग के शब्दों में आरम्भ में प्रथम डिग्री कोर्स में प्रवेश पाने की न्यूनतम आयु 16 वर्ष निर्धारित की जाना चाहिए।

2. कारण– छात्र–संख्या में वृद्धि– शिक्षा स्तर के गिरावट का दूसरा कारण छात्र–संख्या में वर्षद्धि है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद उच्च शिक्षा की संस्थाओं में छात्र–संख्या की असाधारण वर्षद्धि हुई, पर उस अनुपात मे शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार नहीं हुआ है। इससे शिक्षा का स्तर गिर गया है एवं भविष्य में और अधिक गिरने की आशंका है। इस तथ्य का समर्थन करते हुए, विश्वविद्यालय शिक्षा–आयोग ने लिखा है– यदि शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार किए बिना हमारे विश्वविद्यालयों में छात्रों का प्रवेश जारी रहेगा, तो शैक्षिक स्तरों के लिए अधिक निम्न होने का भारी खतरा है।

उपचार– शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार– शैक्षिक स्तरों को निरन्तर न होने देने के साथ–साथ उनका उन्नयन करने के लिए आवश्यक है कि छात्र–संख्या के अनुपात में शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जाय। यह कार्य धन के अभाव में असम्भव है। अतः आवश्यक है कि केन्द्रीय और राज्य–सरकारों द्वारा कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाय। यदि यह सम्भव नहीं है तो कोठारी–कमीशन द्वार प्रस्तावित सुझाव के अनुसार, छात्रों को प्रवेश देने के लिए चयनात्मक प्रवेश–प्रणाली का प्रयोग किया जाय।

3. कारण–योग्य शिक्षकों का अभाव– शिक्षा–स्तर के गिरावट का तीसरा कारण योग्य शिक्षकों का अभाव है। यह अभाव इसलिए है, क्योंकि स्नातकोत्तर परीक्षाओं में उतीर्ण होने वाले योग्य नवयुवकों को ऐसे सरकारी और गैर–सरकारी पद प्राप्त हो जाते

हैं, जहाँ उनको अधिक वेतन और अधिक सुविधाएँ मिलती है। परिणामतः कम योग्यता वाले व्यक्ति ही शिक्षण व्यवसाय को ग्रहण करते है। इनमें से अनेक व्यक्ति, शिक्षकों के रूप में तन–मन से अपने छात्रों के मस्तिष्क को ज्ञान से आलोकित करने की चेष्टा करते है। परन्तु अपनी कम योग्यता के कारण वे अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते है। डॉ० कोठारी ने ठीक लिख है– यह विषय अत्यन्त गम्भीर और चिन्ता का कारण है कि यद्यपि अनेक शिक्षा–संस्थाओं में शिक्षा–कार्य बहुत अधिक होता, पर उत्तम शिक्षा कार्य बहुत कम होता है।

उपचार– योग्य शिक्षको की नियुक्ति– योग्य व्यक्तियों को शिक्षण–कार्य के प्रति आकर्षित करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक बात यह है कि उनको उत्तम वेतन, कार्य एवं सेवा की उत्तम दशाएँ अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। इस सम्बन्ध मे 'कोठारी कमीशन' ने कुछ अत्युत्तम सुझाव दिए है, यथा– उच्चतर वेतन क्रम, प्रतिभाशाली शिक्षकों को अनुसन्धान कार्य करने के लिए अनुदान, भारत सरकार के कर्मचारियों के समान शिक्षकों को सेवा–निवृति लाभ, त्रिमुखी लाभ योजना (Triple Benefit Scheme) आदि।

4. कारण– 12 वर्षीय विद्यालय शिक्षा योजना की अवहेलना– शिक्षा स्तर के गिरावट का चौथा कारण– 12 वर्षीय विद्यालय शिक्षा योजना की अवहेलना है। विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने इस बात पर बल दिया है कि विद्यालय–शिक्षा की अवधि 11 वर्ष की न होकर 12 वर्ष की होनी चाहिए। सन् 1949 में राधाकृष्णन् कमीशन ने यह सिफारिश की कि प्रथम डिग्री कोर्स में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जो स्कूल और इण्टर कॉलेज में 12 वर्ष पढ़ चुके हों। सन् 1960 में योजना आयोग की शिक्षा–समिति ने सुझाव दिया कि विद्यालय शिक्षा 11 वर्ष के बजाय 12 वर्ष की होनी चाहिए।

सन् 1962 में अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा संघ की विचारगोष्टी ने 12 वर्ष की विद्यालय–शिक्षा की सिफारिश करते हुए कहा– विचारगोष्ठी का मत है कि 11 कक्षा वाली उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की योजना असफल हो गई है। अतः गोष्ठी 12 की विद्यालय–शिक्षा की सिफारिश करती है। 12 वर्ष में से 5 वर्ष प्राथमिक शिक्षा, के 3 वर्ष निम्न माध्यमिक शिक्षा के और 4 वर्ष उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के होने चाहिए।

"The Seminar is unanimously of the opinion that Eleven Class Higher Secondary School Scheme has failed. It, therefore recommends the pattern of 5+3+4 meaning five years of primary education, followed by 3 years of junior of lower secondary and 4 years of higher secondary stage"

वर्ष 1963–64 मे होने वाले राज्यों के शिक्षा–मन्त्रियों के सम्मेलन ने 11 वर्षीय विद्यालय–शिक्षा के विचार को अस्वीकार किया। सन् 1966 के कोठारी कमीशन' ने 12 वर्ष की विद्यालय–शिक्षा का अनुमोदन किया (7 वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा और 5 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा)

उपचार– 12 वर्षीय विद्यालय– शिक्षा योजना का कार्यान्वयन– सब राज्यों में 12 वर्षीय विद्यालय–शिक्षा की योजना का अनिवार्य रूप से कार्यान्वयन किया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा यह नियम बना दिया जाना चाहिए कि 12 वर्ष की विद्यालय–शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाय। इन छात्रों की मानसिक शक्तियों का पर्याप्त विस्तार को जाता है। अतः उनको विभिन्न विषयों का उच्च अध्ययन करने में किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी। सरकार ने सभी राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में 10+2 के शैक्षिक ढाँचे को लाूगू कर दिया है।

5. कारण – शिक्षण का निम्न स्तर– शिक्षा स्तर के गिरावट का सर्वप्रथम कारण– शिक्षण का निम्न स्तर है। इसका उतरदायित्व मुख्यतः अध्यापकों पर है, जो कक्षा–शिक्षण में व्याख्यान–विधि अतिरिक्त भूलकर भी किसी अन्य विधि का प्रयोग नहीं करते है। पर आखिर वे इस विधि का प्रयोग क्यों करते है? इसका एक मात्र कारण है– इस विधि की सरलता। यह देखा गया है कि प्रत्येक अध्यापक अपने सेवाकाल के थोड़े से प्रारम्भिक वर्षो में परिश्रम करके, अपने व्याख्यानों को तैयार कर लेता है। तदुपरान्त वह उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या नवीनीकरण किए बिना अवकाश ग्रहण करने के समय तक उनको कक्षा में दोहराता रहता है। शिक्षण की यह विधि कितनी सरल है। इसको प्रयोग करके, शिक्षक अपनी शक्ति, समय एवं परिश्रम की बचत करता है और आराम से अपने दिन गुजारता है।

व्याख्यान–विधि किसी समय उपयोगी थी, पर अब इसकी उपयोगिता नष्ट हो चुकी है। इसका कारण सेमुअल जॉनसन के शब्दों में सुनिए– व्याख्यान किसी समय लाभप्रद थे, पर अब जबकि सब व्यक्ति पढ़ चुके हैं और पुस्तकें इतनी विशाल संख्या में है व्याख्यान आनवश्यक हो गये है।

छात्रों की दृष्टि से व्याख्यान–विधी की जितनी कड़ी निन्दा की जाय, उतनी ही कम है। वे या तो निष्क्रिय श्रोताओं के समान कक्षा में बैठे रहते है, या चुपचाप बाहर खिसक कर मनोरजन की खोज करते है। दोनो प्रकार के छात्रों को अध्यापक के व्याख्यानों से रंचमात्र भी लाभ नहीं होता है। अतः उनके ज्ञान की वृष्टि की आशा करना व्यर्थ है, पर उनके शैक्षिक स्तर के गिरावट की आशा करना व्यर्थ नहीं है।

उपचार– शिक्षण में सुधार– शिक्षा अयोग ने शिक्षण में सुधार किए जाने पर बल देते हुए लिखा है– उच्च शिक्षा मे किए जाने वाले सबसे अधिक आवश्यक सुधारों में से एक यह है कि शिक्षण में सुधार किया जाय।

शिक्षा–आयोग ने शिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण उपायों का उल्लेख किया है, यथा– औपचारिक कक्षा–कार्य के समस में कमी बचनें वाले समय का टयूटोरियल कार्य एवं विचारगोष्ठियों में प्रयोग, छात्रों द्वारा स्वतंन्त्र अध्ययन, छात्रों की रटने की प्रवषति का दमन, छात्रों की मौलिक चिन्तन एवं समस्या–समाधान के लिए प्रोत्साहन, प्रयोगशाला–कार्य पर बल, उतम पुस्तकालयों की व्यवस्था, छात्रों द्वारा पुस्तकालयों का अधिक प्रयोग इत्यादि।

केरल विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डॉ० के० सी० राजा का एक प्रशंसनीय सुझाव है कि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों मे प्रथम बार नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों के लिए सेवा–पूर्व प्रशिक्षण (Pre-Servic Training) की व्यवस्था की जाय। इस प्रशिक्षण में उनको अपने विभागों से संचालन, शिक्षण की उपयोगी विधियों और अपने छात्रों को ज्ञान–प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करने के विविध उपायों से अवगत कराया जाय। इस प्रशिक्षण की आवश्यकता बताते हुए डॉ० राजा ने कहा– "यह धारणा अनुचित प्रतीत होती है कि एम०ए० की परीक्षा में प्रथम या द्वितीय श्रेणी में उतीर्ण होने वाले व्यक्ति में अपने विषय की शिक्षा देने की पर्याप्त योग्यता होती है। उसे सेवा–पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

शिक्षण में सुधार के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालय तथा कॉलेज शिक्षकों के स्तर को सुधारने उन्हें प्रेरणा देने के लिये निम्नलिखित उपाय किये है–

1. वेतन मानों में संशोधन।
2. अनुसन्धान के लिये प्रोत्साहन।
3. नव–नियुक्त प्रवक्ताओं के लिये अनुस्थापन कार्यक्रम तथा सेवाकालीन शिक्षकों के लिये पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करने के लिये शैक्षिक स्टाफ कॉलेजो की (Academic Staff Colleges) स्थापना की।
4. उच्च शिक्षा–संस्थाओं की आन्तरिक दक्षता में सुधार लाने के लिये प्रोच अमरीक सिंह समिति के सुझाव पर राष्ट्रीय उच्च शिक्षा प्रशिक्षण और अनुसन्धान संस्थान की स्थापना की जायेगी। यह संस्थान विश्वविद्यालयों में सामान्य प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाने के लिये अन्तर विश्वविद्यालय केन्द्र के रूप में विश्वविद्यालय

अनुदान आयोग के अन्तर्गत एक पंजीकष्त सोसायटी होगा। यह संस्था उच्च शिक्षा सम्बन्धी नीति तैयार करेगा। साथ ही अनुसन्धान एवं प्रबन्धन को बढ़ावा देगा।

राममूर्ति समिति तथा उच्च शिक्षा

(Ramamurti Committee and Higher Education)

राममूर्ति समिति ने उच्च शिक्षा में स्तर कायम करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये है–

राममूर्ति कॉलेजों ने उच्च शिक्षा में स्तर कायम करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये है–

1. नवीन कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना करने से पूर्व केन्द्र राज्य सरकारों से परामर्श करे। साथ ही निर्धारित शर्तो की पूर्ति पर ध्यान दें।

2. केन्द्र सरकार नवीन केन्द्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करके राज्यों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करें।

3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की पुनः संरचना की जाय। इसकी पुनः संरचना इस प्रकार है।

(i) आयोग के पूर्णकालीन सदस्य हों– चेयरमैन, वाइस चेयरमैन तथा पाँच अन्य सदस्य। ये पाँच सदस्य शिक्षण, अनुसन्धान, विस्तार (Extension) प्रबन्ध (Management) तथा वित से सम्बन्धित हों।

(ii) आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये जायें।

4. विश्वविद्यालय को परीक्षा–संचालन के कार्य से मुक्त करके उन्हें स्नातकोतर डाक्टोरल तथा पोस्ट डाक्टोरल के कार्यो पर अधिक ध्यान देने के लिये कहा जाय।

5. स्वायत्त कॉलेजों (Autonomous Colleges) की स्थापना पर बल दिया गया।

6. पाठ्यक्रम विकास तथा कोर्सो की पुनः संरचना के लिये महत्वूपूर्ण, कदम उठाये जाय।

7. विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के शिक्षकों के वेतनमान में संशोधन के नये आयोग तत्काल कदम उठायें।

8. विश्वविद्यालय के नवयुक्त शिक्षकों के लिये एक वर्ष की अवधि के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार शिक्षक छात्र अनुपात क्या है?

....

....

....

4. त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत माध्यमिक रूप पर किन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य है ?

....

....

....

13.6 सारांश

इस इकाई मे हमने उन चुनौतियों, मुद्दो तथा उनके समाधान पर चर्चा किया। जिसमें स्वतंत्रता के पश्चात्, केन्द्र एवं राज्य सरकारों के द्वारा अनेक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, अनेक समितियों ने शिक्षा के क्षेत्र में परिर्वतन की आवश्यकता पर विचार किया तथा अनेक शिक्षाविदों ने शैक्षिक सुधारों की लम्बी–लम्बी श्रृखलाएँ प्रस्तुत हैं। इनमें से कुछ सुझावों को कियान्वित किया गया जबकि कुछ सुझावों को विभिन्न कारणों से लागू नहीं किया जा सका है। निःसंदेह विगत छह दशकों में शैक्षिक प्रसार व गुणवता वृद्धि की दृष्टि से काफी कार्य किया गया है, फिर भी यह आवश्यकता की दृश्टि से अपर्याप्त ही है। अभी भी शिक्षा की अनेक चुनैातिया एवं मुद्दें है। कुछ चुनैातियों या समस्याओ का कोई समाधान नहीं खोजा जा सका है एवं कुछ के समाधान प्रस्तुत किए गए है। माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा की उपर्युक्त समस्याओं तथा ऐसी ही और अन्य समस्याओं को प्रमुख कारण जनसंख्या की वृद्धि है। इसने शिक्षा के विकास एवं प्रसार को अनुपयुक्त बना दिया है। जनसंख्या की वृद्धि से शिक्षा की संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनो ही प्रकार की उन्नति आवश्यकतानुसार नहीं हो सकी। आज भी विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का अभाव है। यद्यपि भारत में खुली

शिक्षा को अपनाया गया है और फिर भी जनमानस की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफलता ही देखने को मिल रही है।

13.7 अभ्यास प्रश्न

1. हमारे देश में चौदह वर्ष तक की आयु के सब बच्चों के लिए प्राथमिकता शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने के लिए कौन–कौन से पग उठाये जाने चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति मे हम अब तक क्यों असफल रहें है? विवेचन कीजिए।
2. स्वतंत्रता पश्चात् माध्यमिक शिक्षा की चुनौतियों की सूची बनाकर अपने साथियों के बीच चर्चा करें।
3. वर्त्तमान उच्च शिक्षा की चुनौतियों पर प्रकाश डालें।

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. धारा 45
2. कोठारी कमीशन
3. 1 : 40
4. हिन्दी भाषा राज्यों में हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा जिसमें दक्षिण की कोई भाषा होनी चाहिये।

– अहिन्दी भाषी राज्यों में – हिन्दी, क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी।

13.9 संदर्भ ग्रंथ

1. अग्रवाल, जे0 सी0 स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास; नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो, 1968।
2. कबीर, हुमायूँ स्वतन्त्र भारत में शिक्षा; दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1956।
3. गुप्ता, एस0 पी0 भारतीय शिक्षा का ताना–बाना; इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, 2008।
4. गुप्ता, एस0 पी0 भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ; इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, 2008।
5. पाण्डेय, आर0 एस0 भारतीय शिक्षा की सम–सामयिक समस्याएँ; आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2011

इकाई – 14 समावेशी शिक्षा एवं विशेष विद्यालय (INCLUSIVE EDUCATION AND SPECIAL SCHOOLS)

इकाई की रूपरेखा –

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 समावेशी शिक्षा

14.4 विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा

4.4.1 विशेष शिक्षा

4.4.2 एकीकृत शिक्षा

14.5 एकीकृत शिक्षा तथा समावेशी शिक्षा में अन्तर

14.6 विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा

14.6.1 मंद बुद्वि वालक

14.6.2 दृष्टि वाधित बालक

14.6.3 श्रवण वाधित बालक

14.7 समावेशी शिक्षा हेतु प्रशासनिक उपाय

14.8 माता पिता एवं अभिभावकों की भूमिका

14.9 सक्षम/सकलांग सहपाठियों की भूमिका

14.10 नियमित अध्यापकों की भूमिका एवं उत्तरदायित्व

14.11 विशेष विद्यालय

14.12 सारांश

14.13 अभ्यास प्रश्न

14.14 संदर्भ ग्रंथ

14.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

समाज में कई प्रकार के बालक मौजूद होते है, उनमें वैयक्तिक विभिन्नता होती है। कुछ बालक सामान्य बालक से कुछ अलग होते है। जिन्हे विशिष्ट बालक या विशेष आवश्यकता वाले बालक कहा जाता है। जब विशेष आवश्यकता वाले बालक एवं सामान्य बालकों को एक ही छत के नीचे शिक्षा प्रदान किया जाता है तो वह समावेशी शिक्षा कहलाती है।

इस इकाई में हम लोग समावेशी शिक्षा एवं विशेष शिक्षा एकीकृत शिक्षा पर चर्चा करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की पहचान एवं उनकी शिक्षा के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे, साथ ही समावेशी शिक्षा प्रशासनिक उपायों एवं माता–पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका की भी चर्चा करेंगे।

हम आशा करते है कि आप इस इकाई को ध्यान पूर्वक पढेंगे तथा समावेशी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को जानेंगे।

14.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई को अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि

- समावेशी शिक्षा के व्यापक अर्थ को समझ सकेंगे।
- विशेष शिक्षा, एकीकृत शिक्षा एवं समावेशी शिक्षा के बीच तुलना कर सकेंगे।
- प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की पहचान एवं उनकी शिक्षा पद्धति को समझ सकेंगे।
- समावेशी शिक्षा के प्रशासनिक उपायों की चर्चा कर सकेंगे।
- समावेशी शिक्षा में माता–पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे।

14.3 समावेशी शिक्षा (INCLUSIVE EDUCATION)

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थियों के कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही कक्षा में विकास करना।

समावेशन विभिन्न अधिगमकर्त्ता, जैसे–विभिन्न अक्षम बालकों, विभिन्न तरीकों से सिखने वाले बालकों को उनकी व्यक्तिगत अधिगम क्षमताओं को विकसित करने की लिए

शिक्षण व्यूह रचना को अपनाना एवं बिना किसी भेदभाव या समूह से अलग कर विद्यार्थियों को शिक्षा देना।

समावेशी शिक्षा के उद्देश्य–

- समावेशी विद्यालय का उद्देश्य उचित व्यक्तिगत सहायता एवं सेवा प्रदान करना।
- शिक्षक समावेशी कक्षा में विभिन्न तरीकों को अपनाकर सभी विद्यार्थियों के अधिगम को बढ़ाता है।
- समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी वर्ग के विद्यार्थियों में ज्ञान, कौशल एवं सूचनाओं को बढ़ाना है।
- इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार के पिछड़ों एवं अलग–अलग क्षमताओं वाले छात्रों को एक साथ विद्यालय में समाहित करना।
- शिक्षकों के सहयोग एवं सहभागिता, माता–पिता एवं सामाजिक नेताओं द्वारा अच्छे कलाओं का विकास करना।

समावेशन एक शैक्षिक उपागम एवं दर्शन है जो कि सभी विद्यार्थियों को सामाजिक सदस्यता के साथ शैक्षिक एवं सामाजिक उपलब्धि प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती है। समावेशन में प्रत्येक विद्यार्थियों का उनके विशेष आवश्यकताओं एवं विशेष अधिगम क्रियाओं को शामिल किया जाता है।

समावेशी शिक्षा एक विस्तृत शब्दावली है, जिसके अन्तर्गत कई तथ्यों को समाहित किया गया है। इसमें सभी बालकों को एक साथ शिक्षा देने का प्रावधान है। चाहे वे उनमें कितनी ही प्रकार की विभिन्नता क्यों न पाई जाती हों। जैसे– यदि कोई बालक उम्र, लिंग या भाशायी रूप से भिन्न हो, विकलांग तथा AIDS/HIV या अन्य गंभीर बिमारी से ग्रसित हो सभी को इसके अंतर्गत एक साथ शिक्षा दी जाती है। इसके तहत सभी बच्चों को आवश्यकताओं के अनुरूप ही शैक्षिक संरचना, एवं शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह विस्तृत व्यूह रचना का एक भाग है, पाठ्यक्रम जिसके द्वारा समावेशी समाज का उत्थान किया जाता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें किसी भी प्रकार के बालकों को रोका नहीं जाता है एवं अन्य प्रकार के संसाधनों के माध्यम से उनकी क्षति पूर्ति की जाती है।

14.4 विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा (Special Education – Integrated Education)

शिक्षा की व्यवस्था पूरे विश्व में प्राचीन काल से चली आ रही है। जैसे–जैसे समाज का उत्थान होता गया शिक्षा की पद्वतियाँ भी बदलती गई। इसी क्रम में शिक्षा के अन्तर्गत वैसे बालकों पर भी ध्यान दिया जाने लगा जिसे लोग पहले यह मानते थे कि ये शिक्षा प्राप्त ही नहीं कर सकते है। वैसे बालक जो सामान्य बालक या औसत बालकों से भिन्न होते इन्हे लोग विशेष बालक या विशिष्ट बालक (Special Children or Exceptional children) के नाम से जानते है। इनकों शिक्षा देने के लिए समय के अनुसार तीन प्रकार की अवधारणा विकसीत हुई है, विशेष शिक्षा, एकिकृत शिक्षा एवं समावेशी शिक्षा।

14.4.1. विशेष शिक्षा (Special Education) :–

विशेष शिक्षा एक संकुचित शब्दावली है। इस शिक्षा के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है। इसका विद्यालय, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ अलग होती है। जैसे यदि कोई बच्चा दृष्टि बाधित है, तो उनके अलग समूह बनाकर उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार यदि कोई बालक श्रवण

वाधित है या मानसिक मंद है, उन्हे भी अलग शिक्षा दी जाती है। विशेष शिक्षा गंभीर अक्षम/विकलांग बालकों के लिए उपयुक्त शिक्षा पद्धति मानी जाती है। क्योकि जो बालक गंभीर या अति गंभीर रूप से अक्षम/विकलांग होते है, वे अपने आपकों सामान्य बालकों के साथ समायोजित नहीं कर पाते है।

14.4.2. एकीकृत शिक्षा (Integrated Education):–

विशेष शिक्षा में यह देखा जाने लगा कि कोई बालक अगर सामान्य बालकों से अलग शिक्षा प्राप्त करता है, तो उसका पूर्णतः समायोजन नहीं हो पाता है। वे कई क्षेत्रों में सामान्य बालकों से पिछड़ जाते है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, एकीकृत शिक्षा की अवधारणा का विकास हुआ। भारत मे भी इसके महत्व को ध्यान मे रखते हुए सन् 1974 से कल्याण मंत्रालय द्वारा एकीकृत शिक्षा का प्रारम्भ किया गया। इसे एकीकृत शिक्षा योजना (IEDC) के रूप मे लागू किया गया। एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपकों सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें। एकीकृत शिक्षा का मुख्य उद्वेश्य विशेष आवश्यकता वाले बालकों को सामान्य बालकों के साथ एकीकृत करना है। साथ ही एकीकृत शिक्षा में बालकों को कक्षा या शिक्षक के अनुसार अपने आपको समायोजित करना होता है। इसके अतिरिक्त विशेष आवश्यकताओं को विशेष कक्षा (Special Class) संसाधन कक्ष (Resource Room) तथा विशेष शिक्षकों (Special Educator) के माध्यम से पूर्ण किया जाता है।

एकीकृत शिक्षा में निम्नलिखित तथ्य शामिल है:–

(a) सामान्य विद्यालय में विशेष आवश्यकता वाले विकलांग बालकों को शैक्षिक सुविधाएँ एवं शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना ही एकीकृत शिक्षा है।

(b) इस शिक्षा में बालकों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाता है।

(c) एकीकृत शिक्षा में विकलांग बालकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को आवश्यकतानुसार विद्यालय के कार्यक्रम व पाठ्यक्रम के लिए समायोजित करें।

(d) इसे (Short Term Goal) कहा गया है, क्योकिं इसका मुख्य लक्ष्य विकलांग बालकों को सामान्य विद्यालय में भर्ती कराना है।

14.5 एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) तथा समावेशी शेक्षा (Inclusive Education) में अन्तर :–

एकीकष्त शिक्षा (Integrated Education) समावेशी शिक्षा (Inclusive Education)

1. एकीकृत शिक्षा व्यक्तिगत प्रारूप (Individual Mode) समावेशी शिक्षा पर आधारित है। 1. समावेशी शिक्षा सामाजिक प्रारूप (Social Model) समावेशी शिक्षा पर आधारित है।

2. एकीकृत शिक्षा में विकलांग व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को विद्यालय के आवश्यकतानुसार अपेक्षित सुधार कर सामंजस्य स्थापित करे। समावेशी शिक्षा में विद्यालय का उतरदायित्व है कि वह विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम में अनुकूलन करे।

3. एकीकृत शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बालकों को सामान्य विद्यालय में प्रवेश कराना है। 3. समावेशी शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बालकों को विद्यालय की प्रत्येक क्रिया में भागिदारी सुनिश्चित की जाती है।

4. एकीकृत शिक्षा न्यूनतम अवधि का उददश्ेय है। 4. समावेशी शिक्षा एक लम्बी अवधि ा की प्रक्रिया एवं उद्देश्य है।

5. एकीकृत शिक्षा विकलांग या विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिए समान अवसर एवं समान सहभागिता को सुनिश्चित करता है। 5. समावेशी शिक्षा एकीकृत शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त पर आधारित है, इसी कारण इसे एकीकृत शिक्षा का परिवर्धित अथवा परिमार्जित रूप भी कहा गया है।

14.6 विशेष आवश्यकता वालें बालकों की शिक्षा (Education to Special Need Children)

समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षकों के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य उन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करना एवं उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा प्रदान करना है। समावेशी शिक्षा में जब तक विशेष आवश्यकता वाले बालकों की आवश्यकता को नहीं समझेगें, उन्हें हम उचित शिक्षा प्रदान नहीं कर सकतें। कक्षा में विभिन्न प्रकार के विशेष आवश्यकता वाले बालक शिक्षा प्राप्त करते है। उनमें से प्रमुख विशेष आवश्यकता वाले बालकों की चर्चा हम नीचे कर रहे हैः–

14.6.1 मंद बुद्धि बालक (Mentally Retarded Children):– मंद बुद्धि बालक से तात्पर्य वैसे बालक से है जिनकी मानसिक योग्यता सामान्य बालकों से कम होती है, अर्थात् वैसे बालक जिनकी बुद्धि लब्धि (I.Q) 70 से कम होती है, मंद बुद्धि बालक कहलाते है। मानसिक कमी पर अमेरिकन ऐसोशिएशन के अनुसार ''मानसिक पिछड़ेपन से तात्पर्य सार्थक रूप से औसत से कम सामान्य बौद्धिक कार्यपरकता से है जो अनुकूलन व्यवहार में कमी के सहगामी के रूप में विद्यमान होती है तथा विकासात्मक अवस्था में परिलक्षित होती है।''

"Mental retardation refers to significantly sub-avarage general intellectual functioning existing concurrently with deficits in adoptive behaviour and manifested during the developmental period".

मंद बुद्धि बालकों की पहचान एवं विशेषतायें (Identification & Characteristics of Mentally Retarded children) :–

मंद बुद्धि बालकों की पहचान उनकी विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है। जो निम्न है:--

1. ऐसे बालक सीखी गई बात को नवीन परिस्थितियों में प्रस्तुत करने में प्रायः कठिनाई का अनुभव करते है।
2. ऐसे बालकों अति क्रियाशील या चंचल होते है
3. ऐसे बालकों के मुँह से हमेशा लार टपकता रहता है।
4. ऐसे बालकों में सीखने की क्रिया धीमी होती है।
5. ऐसे बालकों में दो अंगो के बीच सामंस्य स्थापित करने में कठिनाई होती है। जैसे– लिखने में, पढ़ने में, चलने में इत्यादि में।
6. ऐसे बालकों को कभी–कभी दौरे भी पड़ते है।

मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा (Education to Mentally Retarded Children)

मंद बुद्धि बालकों को शैक्षिक दृष्टि से मुख्यतः तीन भागों में बॉटते है:–

(a) शिक्षणीय मानसिक मंद (Educable Mental Retardation or, EMR):– शिक्षणीय मानसिक मंद वे मानसिक मंद बालक कहलाते है, जिनकी बुद्धि लब्धि (I.Q.) 75 से 50 के बीच होती है। ऐसे बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा किसी बात को धीमी गति से समझते व सीखते है। पर्याप्त अभ्यास के पष्चात् ऐसे बालक मे सामान्य रूप से पढ़ने–लिखने और साधारण व्यवहार में आनेवाली गणितीय संक्रियाओं को दैनिक जीवन के उपयोग में लाने में से सफल हो सकते है। ऐसे बालक सामान्यतः प्राथमिक स्तर (वर्ग–7) तक की पढ़ाई पूरी कर सकते है।

(b) प्रशिक्षणीय मानसिक मंद (Trainable Mental Retardation or TMR):– प्रशिक्षणीय मानसिक मंद बालक वे बालक होते है, जिनकी बुद्वि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है। ऐसे बालकों में शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता बहुत कम होती है। इन्हें बहुत अधिक प्रयास के बाद भी केवल कक्षा 4 से 5 तक शिक्षा दी जा सकती है। परन्तु इन्हे प्रर्याप्त प्रशिक्षण और अभ्यास के पश्चात् व्यवसायिक एवं दैनिक क्रिया–कलाप सिखाया जा सकता है। जैसे-- अपनी आजीविका के न्यूनतम स्तर पर

चलाने के लिए बुनाई करना, लिफाफे बनाना, मोमबती बनाना, कुर्सी बुनना इत्यादी कार्य सिखाये जा सकते है।

(c) अभिरक्षणीय मानसिक मंद (Custodial Mental Retardation or CMR):– इसके अन्तर्गत वैसे बालक आते है, जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 50 से 25 के बीच होती है। ऐसे बालक सामान्यतया पढ़ाई नहीं कर पाते है। ये अपने दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को भी स्वयं नहीं कर पाते है। ये प्रायः दूसरों के देखभाल पर निर्भर होते है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. एकीकृत शिक्षा योजना कब प्रारम्भ की गयी ?

....

....

....

2. मंद बुद्धि बच्चों की बुद्धि लब्धि कितनी होती है ?

....

....

....

3. शैक्षणिक मानसिक मंद बच्चों की बुद्धि लब्धि कितनी होती है?

....

....

....

14.6.2 दृष्टिबाधित बालक (Visually Impaired Children):–

दृष्टिबाधित बालक वे बालक होते है जिन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता हो या बहुत कम दिखाई देता हो। एक चिकित्सीय परिभाषा के अनुसार दृष्टि बाधित को दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। प्रथम दृष्टि क्षमता (Visual Acuity) के आधार पर–एक सामान्य मनुष्य की दृष्टि क्षमता 20/20 या 6/6 होती है। वैसे बालक जिनकी दृष्टि क्षमता (Visual Acuity) 20/200 या 6/60 या इससे कम हो, उसे हम दृष्टिबाधित कहते है। द्वितीय, दृष्टि क्षेत्र (Field of Vision) के आधार पर एक सामान्य

मनुष्य अपनें ऑखों से 180^0 के क्षेत्र को देखता है। परन्तु अगर कोई बालक 20^0 या इससे कम के क्षेत्र को देख सकता है, वे बालक दृष्टिबाधित कहलाते है।

दृष्टिबाधित बालकों की पहचान एवं विशेषताएँ (Identification & characteristics of visually Impaired children)

दृष्टिबाधित बालकों की पहचान हम उनकी विशेषताओं या लक्षणों के आधार पर कर सकते है। जो निम्न है:–

(i) ऐसे बालक हमेशा अपने आँखों को मलते (Itching eyes) रहते है।

(ii) ऐसे बालक की आँखे मिलमिलाते (Blinking eyes) रहते है।

(iii) आँखों में दर्द की शिकायत करते है।

(iv) श्यामपट के पास जाकर पढ़ते एवं लिखते है।

(v) आँखों में पानी आने की शिकायत करते है।

(vi) श्यामपट पर लिखी गई बातों को अपने सहपाठी से पूछते है।

(vii) अक्सर सिर दर्द की शिकायत करते है। इत्यादि

दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा (Education to Visually Impaired children):–

एक सामान्य बालक सीखने में सबसे ज्यादा प्रयोग दृष्टि का करता है। इसके माध्यम से लगभग 80: अधिगम होती है। आँख मनुष्य की सभी ज्ञानइन्द्रियों (Senses) में प्रमुख है। इसके न होने से मनुष्य का अधिगम सबसे अधिक प्रभावित होता है। दृष्टिबाधित बालक सामान्य बालकों की तरह न तो लिख सकता है, न पढ़ सकता है, न चल सकता है और न ही कोई क्रियाकलाप कर सकता है। जिसके कारण इन्हें सामान्य कक्षाओं में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

दृष्टिबाधितों को उचित शिक्षा देने के लिए निम्न क्षेत्रों/उपकरणों में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(i) ब्रेल (Braille) ब्रेल एक प्रकार की लिपी है, जो विशेषकर दृष्टिबाधितों के लिए है। इसी लिपि के माध्यम से दृष्टिबाधित बालक पढ़ एवं लिख सकते है। इस लिपि की खोज फ्रांस के लुई ब्रेल ने की थी। यह लिपि मुख्यतः छः उभार बिन्दुओं के माध्यम से लिखी एवं पढ़ी जाती है। इसें हर अक्षर के लिए अलग–अलग उभार बिन्दु होते है। जैसे– 'अ' के लिए केवल 1 नं० की बिन्दु ( ) 'क' (1,3) इत्यादि।

ब्रेल लिपि को दाँए से बाए की ओर लिखी जाती है एवं बाँए से दाँए की ओर पढ़ी जाती है। इसे लिखने के लिए ब्रेल स्लेट एवं स्टाइल्स का प्रयोग किया जाता है।

(ii) अवेकस एवं टेलर फ्रेम (Abacus & Taylor frame):– इन उपकरणों के माध्यम से दृष्टिबाधित बालकों को गणितीय ज्ञान दिया जाता है। अवेकस एक प्रकार का मोतियॉ लगी हुई उपकरण होते है। जिससे दृष्टिबाधित बालकों को गिनती करना, साधारण जोड़–घटाव, गुणा एवं भाग सिखाया जाता है। टेलर फ्रेम भी एक प्रकार का गणितीय उपकरण है। जो कि अष्टभुज आकार की संरचनाओं का बना होता है। इन अष्टभुज आकार की संरचनाओं में टाइप को डाला जाता है। इन टाइप की दिशा परिर्वतन होने पर अंको का मान बदलता रहता है। टेलर फ्रेम से दृष्टिबाधितों को जोड़, घटाव, गुणा, भाग एवं बीज गणित के प्रश्नों को हल करना सिखाया जाता है।

(ii) अनुस्थिति ज्ञान एवं चालिष्णुता (Orientation & Mobility):– दृष्टिबाधित बालकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके लिए दृष्टिबाधितों को अनुस्थितीज्ञान एवं चालिष्णुता (Orientation & Mobility) का प्रशिक्षण दिया जाता है। अनुस्थितीज्ञान का अर्थ होता है, वातावरण में अपने स्थिती का पता लगाना। जब हम कहीं भी जाते है, तो चलने वाले को यह पता होना आवश्यक होता है कि हम कहॉ पर स्थित है और कहॉ जाना है, इसका पता दृष्टिबाधित बालक अपने अन्य ज्ञानइन्द्रियों को प्रयोग कर लगाता है, जैसे– फूलों के महक से, नाली के गंध से, मंदिर एवं स्कूल की घंटी से, चौराहे पर वाहनों के आवागमन एवं रेड लाईट इत्यादी से, दृष्टिबाधित अपने अनुस्थिती ज्ञान का पता लगाता है।

चलिष्णुता का अर्थ होता है– चलना एक दृष्टिबाधित बालक को चलने के लिए कई नियमों का पालन करना होता है। जैसे– छड़ी का प्रयोग कैसे करना चाहिए, अपने साथियों के साथ कैसे चलना चाहिए, सीढ़िया पर कैसे चढ़ना चाहिए इत्यादी गतिविधियों का प्रशिक्षण चालिष्णुता के अन्तर्गत दी जाती है ताकि दृष्टिबाधित बालक अपने आपको अपने वातावरण के साथ समायोजित कर सकें।

दृष्टिबाधित बालकों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए ''राष्ट्रीय दृष्टिहीन विकलांग संस्थान'' (National Institute for visually Handicapped), Dehradun द्वारा उपयोगी उपकरणों का निर्माण एवं अनुसंधान कार्य किया जाता है, ताकि दृष्टिबाधितों की समस्याओं का कम किया जा सकें।

14.6.3 श्रवणबाधित बालक (Hearing Impaired Children):– श्रवण वाधित बालक वे बालक होते है, जो कम सुनते है या बिल्कुल भी नहीं सुनते है। एक परिभाषा के अनुसार वैसे व्यक्ति जो 25db से अधिक तीव्रता की ध्वनी सुनते है, उन्हें श्रवण बाधित बालक कहा जाता है।

श्रवण वाधित बालकों की पहचान एवं विशेषताए (Identification & Characteristics of Hearing Impaired children) :–

कक्षा कक्ष में एक शिक्षक श्रवण वाधित बालकों की पहचान उनकी विशेषताओं के आधार पर करता जो निम्न है:–

(i) ऐसे बालक कान के पीछे हाथ लगाकर सुनने का प्रयास करते है।

(ii) ये बालक जोर से बोलते है।

(iii) श्रवण वाधित बालक बोलने बाले (वाचक) के चेहरे और होठों पर ज्यादा ध्यान देते है।

(iv) ऐसे बालक बोली गई बातों को दुबारा या नहीं सुनने की शिकायत करते है।

(v) इनके चेहरे के हाव–भाव व मुख मुद्रा द्वारा भी आवाज दोष पहचाना जा सकता है।

(vi) ऐसे बालकों में कान बहने की शिकायत होती है।

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा (Education to Hearing Impaired children)

प्रायः यह देखा गया है कि जो बच्चे सुन नहीं पाते है, वो बोल भी नहीं पाते है अर्थात गुंगे एवं बहरे दोनो ह्रोते है, परन्तु यह हर स्थिती में संभव नहीं होता है। वे बालक ही गुंगे एवं बहरे (Deaf & dumb) होते है, जो जन्म या भाषायी विकास की अवस्था के बाद पूर्व श्रवण वाधित है। और जो बालक भाषायी विकास के बाद श्रवण वाधित होते है, वे बोल सकते है।

श्रवण बाधितों के लिए मुख्य समस्या सम्प्रेषण (communication) की होती है न सुनने तथा न बोल पाने के कारण ये बालक किसी दूसरें सामान्य बालकों के साथ अपने आपको सम्प्रेषित (Communication) नहीं कर पाते है। ऐसे बालकों की शिक्षा के लिए हम निम्न उपाय कर सकते है।

(i) अल्प श्रवणबाधितों को सामान्य कक्षा में पहले बेंच पर बैठा कर शिक्षा दे सकते है।

(ii) अल्प एवं मध्यम श्रवण वाधितो को श्रवण यंत्र (Hearing Aid) की सहायता से शिक्षा दिया जा सकता है।

(iii) गंभीर एवं अति गंभीर श्रवण वाधितों को सांकेतिक भाषा (Sign language), तथा होठों (Lip reading) के द्वारा शिक्षा दी जाती है।

सांकेतिक भाषा (Sign language):– इसमें संकेतो के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से संम्प्रेषण स्थापित करता है। सांकेतिक भाषा का विकास 18वीं शताब्दी में हुआ। इसे अम्बे चार्ल्स माइकेल के द्वारा अपनाया गया था। सांकेतिक भाषा का प्रयोग विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के पद्वति द्वारा की जाती है। जैसे– अमेरिका में A.S.L (Americal Sign language), ब्रिटेन में B.S.L. (British Sign Language). उसी प्रकार भारत में I.S.L- (Indian Sign language) का प्रयोग किया जाता है।

होठ पठन (Lip reading) भी एक प्रकार का संप्रेषण का माध्यम है जिसकी सहायता से सामने वाले व्यक्ति की बातों को समझा जा सकता है।

श्रवण वाधितों के शिक्षा के लिए अली आवर जंग राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान (Ali yawar jang National Institute for Hearing Handicapped), मुम्बई द्वारा ऐसे बालकों के नए–नए सांकेतिक भाषाओं एवं क्रिया कलापों का विकास करती है। ताकि श्रवण वाधित बालकों को समाज में समायोजित किया जा सकें।

14.7 समावेशी शिक्षा हेतु प्रशासनिक उपाय

सभी प्रकार के बच्चों हेतु समावेशी शिक्षा के लिए उचित सकारात्मक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है। प्रायः यह देखा गया है कि विकलांगता के प्रति नकारात्मक अभिवृतियॉ उनके विद्यालय प्रवेश में प्रमुख बाधाएँ है, परिणामस्वरूप प्रधानाचार्य इन विद्यार्थियो को विद्यालय में प्रवेश देने से मना कर देते है। उनकी यह सोच होती है कि विकलांग बच्चे उनके विद्यालय की शैक्षिक गतिविधियों को नाकारात्मक रूप से प्रभावित करेगें। सामान्य बच्चों की शिक्षा भी प्रभावित होगी एवं साथ ही अध्यापकों की जिम्मेदारी भी अनावश्यक रूप से बढ़ जाएगी। दूसरे शब्दों में सामान्य विद्यालय विकलांग बच्चों की श़िक्षा की जिम्मेदारी नहीं ले सकते अक्सर देखने में आता है कि वे विकलांग विद्यार्थियों की क्षमताओ से अपरिचित रहने के कारण उनकी विकलांगता को अधिक ऑकते है। यदि वे विकलांग बच्चों की क्षमताओं से परिचित हो तो बिना किसी समस्या के इन बच्चों की विशेष आवश्यकता के आधार पर विद्यालय में परिर्वतन लाते हुए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराकर अपने विद्यालय में परिवर्तन लाते हुए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराकर अपने विद्यालय को आर्दश विद्यालय के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। समावेशी विद्यालय में बच्चों में परस्पर सहयोग एवं सहभागिता की भावनाओं का विकास होता है। अपने विकलांग सहपाठी का सहयोग करते हुए, ऊॅच–नीच भूलकर समान अवसरों का लाभ उठाते हुए उनकी क्षमताओं से परिचित होते है। विकलांग विद्यार्थी की विशेष आवश्यकताओं एवं विशेष उपकरणों से परिचित हो जाते है। प्रशासन का सहयोग इस अधिगम को और अधिक सुचारू एवं क्रमवद्ध बना सकता

है। इस संदर्भ में समावेशी शिक्षा के सफल नियोजन के लिए निम्न उपाय आवश्यक है :–

1. प्रशासनिक अधिकारियों हेतु परिचयात्मक (Sensitization) कार्यक्रम:–

विकलांग के प्रति नकारात्मक अभिवृतियों का प्रमुख कारण विकलांग व्यक्तिओं की क्षमताओं से अनभिज्ञ रहना है, अतः आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारियों को उनकी क्षमताओं के साथ–साथ उनकी विशेष आवश्यकताओं से भी परिचित कराया जाय। विकलांगता व्यक्ति के सोचने की शक्ति को इतना प्रभावित नहीं करती कि वह शिक्षा प्राप्त करने योग्य ही न रहे। शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया में विशेष आवश्यकता के अनुरूप अनुकूलन कर उन्हे सामान्य विद्यार्थियों की भांति ही शिक्षा प्रदान कर सकते है। हेलन केलर, सूरदास, मिल्टन जैसे अनेकों उदाहरण अतीत में देखे जा सकते है। विकलांग व्यक्ति को दया की नहीं समानता की आवश्यकता होती है। उनकी शिक्षा से सम्बन्धित सभी मुद्दों (Issues) से उन्हे परिचित कराना चाहिए। समावेशी शिक्षा योजना एवं P.W.D. अधिगम (Persons with Disability Act) आदि की जानकारी भी उन्हें उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि वे विकलांग बच्चे के उचित शिक्षार्थ उचित वातावरण व सामाग्री उपलब्ध कराते हुए उन्हें समान अवसर प्रदान करा सकें।

2. दृश्य–श्रव्य (Audio-Visual) सामाग्री द्वारा विद्यालय के कर्मचारियों व विद्यार्थियों हेतु संवेदीकरण (Sensitization) कार्यक्रम का आयोजन :–

जिस विद्यालय में विकलांग विद्यार्थियों हेतु समावेशी शिक्षा लागू की जा रही हो, सर्वप्रथम वहॉ उचित वातावरण हेतु सभी शिक्षक, गैर शिक्षा कर्मियो व सामान्य विद्यार्थियों की तैयारी अति आवश्यक है। प्रायः उनकी अभिवृतियाँ नकारात्मक होती है, अतः आवश्यकता है कि इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जाऍ। दृष्य–श्रब्य सामग्री विकलांग व्यक्ति की क्षमताओं से परिचित कराने का सशक्त माध्यम है। विभिन्न राष्ट्रीय विकलांग संस्थान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, मुख्य आयुक्त (निः शक्त जन), भारत सरकार तथा गैर सरकारी संस्थानों द्वारा दृष्य–श्रव्य सामग्री विकसित की गई है। उनको विद्यालय में उपलब्ध कराकर विभिन्न स्तर के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने में उसका उपयोग करना चाहिए।

3. विकलांग बालकों की खोज हेतु संवेदीकरण शिविर का उपयोग:–

विकलांग बालकों की खोज एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रायः माता–पिता बच्चों की विकलांगता को स्वीकार न कर तो विभिन्न चिकित्सकों के चक्कर में पड़े रहते है अथवा स्वयं ही विकलांगता को समस्या मानकर हीन भावना से ग्रसित रहते है। अपने पूर्व जन्मों की सजा मानकर विकलांगता को किसी से बताते हुए भी घबराते है,

विद्यालय भेजना तो बहुत ही दूर की बात है। अतः समाज को झकझोरने के लिए संवेदीकरण शिविर का आयोजन आवश्यक है ताकि विकलांग बच्चों की खोज हो सकें, जिससे कोई भी विकलांग बच्चा शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार से वंचित न रह सकें।

4. संसाधन कक्ष व संसाधन सामग्री विद्यालय के लिए उपलब्ध कराना–

प्रशासनिक उपायों में आवश्यक है कि विद्यालय में संसाधन कक्ष उपलब्ध कराया जाय। यह विद्यालय का कोई भी कक्ष या कमरा हो सकता है। आवश्यक है कि विकलांग विद्यार्थियों के लिए यह सुविधाजनक स्थिती में हो, केन्द्र में स्थित हो तो उत्तम होगा। ऐसे कक्ष के उपलब्ध न होने की स्थिती में कक्ष का निर्माण कराना आवश्यक हो जाता है। भवन प्रत्येक कक्ष विकलांग विद्यार्थियों की पहुॅच में होना चाहिए, जिसमें तिपहिया साइकिल (wheel chair) वाले विधार्थि एवं दृष्टिहीन विधार्थी बिना किसी समस्या के स्वतंत्र रूप से आ जा सकें। विकलांग विधार्थि की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधन कक्ष में संसाधन सामाग्री, भी उपलब्ध कराना प्रशासन का उत्तरदायित्व है। दृष्टिहीन विधार्थियों के लिए ब्रेल समाग्री स्पर्शीय सामग्री व पुस्तकें संसाधन कक्ष में होनी चाहिए, वही श्रवण विकलांग विद्यार्थियों हेतु दृश्य सामग्री, श्रवण सहायक यंत्र (Hearing Aids), Speech Therapy उपकरण इत्यादि उपलब्ध कराई जानी आवश्यक है।

5. विकलांग बच्चों हेतु आकलन दल (assessment team) का नियोजन–

प्रत्येक विकलांग बच्चा स्वयं में एक इकाई है, उसकी शिक्षा के लिए आवश्यक है कि आकलन दल उसका आकलन (assessment) कर उसके विद्यालय प्रवेश के लिए निर्देश दे। विद्यालय प्रवेश नियम विकलांग बच्चों के लिए लचीले होने चाहिए। प्रवेश के समय लिया गया गलत निर्णय उसके भावी जीवन के लिए घातक हो सकता है।

7. विकलांग विद्यार्थियों हेतु सह–चिकित्सकीय अधिकारियों (Para-medical Staff) को सेवाओं को उपलब्ध कराना–

विकलांग विद्यार्थियों की प्रायः अनेक आवश्यकताऍ होती है, जिनकी पूर्ति के लिए सह–चिकित्सकीय सेवाओं को उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। यही नहीं सामान्य विद्यार्थियों में प्रायः छिपी हुई विकलांगताऍ होती है, जैसे अधिगम विकलांगता अथवा श्रवण विकलांगता सह–चिकित्सकीय अधिकारियों (Para-medical staff) द्वारा ऐसे बच्चों की खोज कर अविलम्ब चिकित्सीय लाभ पहुॅचाकर उनके विकास में सकारात्मक भूमिका निभाई जा सकती है।

14.8 माता–पिता एवं अभिभावकों की भूमिका

एकीकृत एवं समावेशी शिक्षा में माता–पिता एवं अभिभावकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण होती है। घर को बच्चे के लिए प्रथम पाठशाला कही गयी है। शोध द्वारा पता

चला है कि प्रारम्भ के 6 वर्ष इतने महत्वपूर्ण है कि 90 से 95 प्रतिशत तक बौद्धिक विकास इस अवस्था में हो जाता है। विकलांग बच्चों के संदर्भ में तो माता–पिता व अभिभावकों की अह्म भूमिका होती है। विकलांग बालकों को न तो तिरस्कृत करना चाहिए और न ही अति संरक्षण देना चाहिए।

विकलांग बालक तो इससे अनभिज्ञ होता है कि वह अन्य से भिन्न है। इस बात का ध्यान तो उसके परिवार के सदस्य माता–पिता, अभिभावक, भाई–बहिन, पड़ोसी दिलाते है कि उसका जीवन अति कठिन है, क्योकि वह देख नहीं सकता/सकती उनकी चिन्ता दृष्टिहीन/श्रवणवाधित एवं अन्य बालकों को सोचने पर विवश करती है कि वह अन्य व्यक्तियों, माता–पिता व भाई–बहिनों से भिन्न है, जो कि उन सभी के लिए चिन्ता का विषय है। उसका कोमल मन व बुद्धि कुछ भी समझ पाने मे असमर्थ होती है। माता–पिता विभिन्न चिकित्सको के चक्कर इस आशा से लगाते रहते है कि उनका बच्चा विकलांग नहीं हो सकता ईश्वर उनके साथ इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकता, बच्चे कि दृष्टि/श्रवण वाधित शक्ति वापिस आ जाएगी। इस प्रकार दर–दर की ठोकरें खाते हुए उसके माता–पिता उसके जीवन के प्रारंम्भिक वर्षो को व्यर्थ में ही गंवा देते है, परिणामस्वरूप दृष्टिहीन/श्रवण वाधित बालक के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष कुछ सीखने की अपेक्षा इसी संघर्ष में गुजर जाते है। यदि माता–पिता शिक्षित है व उन्हें समयानुसार विशेष शिक्षा व विशिष्ट विद्यालय की जानकारी मिल जाती है तो बच्चे की शिक्षा उचित समय पर प्रारम्भ हो जाती है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विशेष शिक्षा की सुविधा में बहुत अन्तर है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों को विकलांग बालकों को शिक्षा प्राप्ति के लिए शहरी क्षेत्र में भेजना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ज्यादातर विशिष्ट विद्यालय शहरी क्षेत्रों में ही स्थित होते है। आवासीय विशिष्ट विद्यालय भेजने से पहले यदि गॉव में समेकित बाल विकास योजना (ICDS) के अन्तर्गत बालवाड़ी लगाई जाती हो तो विकलांग बालकों को वहॉ भेजना चाहिए। घर में उसे दैनिक क्रिया–कौशल में प्रशिक्षित करना चाहिए। निकट के आवासीय विशिष्ट विद्यालय से समय–समय पर इस संदर्भ में परामर्श दिया जा सकता है।

बच्चों में अच्छी आदतों का विकास बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। विकलांग बालकों को अन्य सामान्य बच्चों के समान ही इन आदतो से परिचित कराकर उनका पालन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए ताकि उनमें अच्छी आदतो का विकास हो सके। विशिष्ट विद्यालय चूँकि प्रायः आवासीय होते है, अतः विकलांग बालकों को प्रवेश से पूर्व दैनिक क्रिया–कौशल में निपुण होना आवश्यक होता है।

14.9 सक्षम/सकलांग सहपाठियों की भूमिका

विद्यालय में सक्षम/सकलांग सहपाठियों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे केवल कक्षा व विद्यालय में स्वस्थ प्रोत्साहन प्रदान करने वाले वातावरण का निर्माण करते है, बल्कि समकक्ष होने के कारण उनके स्वप्रत्यय विकास में भी महत्वर्पूण भूमिका अदा करते हैं विद्यालय का वातावरण सौहार्दपूर्ण होने दृष्टिहीन बच्चे का प्रत्येक अनुभव सुखद हो जाता है। आज के समय में शोध द्वारा सिद्ध हो गया है कि बच्चे प्रौढ़ अध्यापक की तुलना में अपने समकक्ष विद्यार्थियों से ज्यादा सफलता से सीखते है। विशेष रूप से कमजोर अथवा पिछड़े बालकों पर अध्यापक व्यक्तिगत रूप से अधिक ध्यान दे सकते है, यदि सामान्य स्तर की समस्या उनके सहपाठियों की सहायता से हल हो सकें।

14.10 नियमित अध्यापकों की भूमिका एवं उत्तरदायितत्व

एकीकृत व समावेशी शिक्षा में नियमित अध्यापकों की सक्रिय भूमिका होती है। उन्हें विशेष विद्यार्थी के संदर्भ में विशेष अध्यापक के सम्पर्क में रहना होता है, ताकि विद्यार्थी पढ़ाए जाने वाले विषय को आत्मसात कर सके न कि उसमें आने वाली समस्याओं से अकेला जूझता रहे। दृष्टिहीन विद्यार्थी को कक्षा में अन्य सामान्य विद्यार्थियों की भांति समान रूप से सम्मिलित होना चाहिए। सर्वप्रथम कक्षा का वातावरण सौहार्दपूर्ण हो, जहॉ किसी भी विद्यार्थी के साथ विकलांगता के कारण भेद न किया जाए। जहाँ तक सम्भव हो सके नियमित अध्यापक द्वारा कक्षा में चलने वाली प्रत्येक क्रिया में विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। उसके बैठने का स्थान इस प्रकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उसे आने–जाने की असुविधा न हो व बाहर का शोर भी उसे प्रभावित न करता हो। नियमित अध्यापक को कक्षा में पढ़ने वाले विकलांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं से परिचित होना चाहिए। उसके प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की भी जानकारी उसे होनी चाहिए। उसके प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की भी जानकारी उसे होनी चाहिए। उसकी उपलब्धि का आकलन कैसा होगा? उसकी मूलभूत समस्याएँ अथवा कठिनाइयाँ क्या हो सकती हैं? ये अनेक प्रश्न नियमित अध्यापक को परेशान कर सकते हैं। उसे विशेश अध्यापक से इन पर चर्चा कर लेनी चाहिए अथवा इन बच्चों से सम्बन्धित साहित्य अथवा सामग्री विशेष अध्यापक से प्राप्त कर पढ़ लेनी चाहिए, जिससे उसके पूर्वाग्रह समाप्त हो जाएं।

नियमित अध्यापक को विकलांग विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरणों की जानकारी के साथ–साथ इन बच्चों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली द्वि–आयामी और त्रि–आयामी स्पर्शीय सामग्री व स्पर्शीय मॉडल आवश्यकतानुसार कक्षा

में उपलब्ध कराने चाहिए, जिनके माध्यम से विकलांग के साथ–साथ दृष्टिवान विद्यार्थी भी लाभान्वित हो सकेगे।

विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेते समय विकलांग विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए नियमित अध्यापक को विशिष्ट अध्यापक से परामर्श लेना चाहिए, ताकि विकलांग विद्यार्थी अर्थपूर्ण क्रिया कर अपने अधिगम को स्थायी बना सके व साथ–साथ सामूहिक क्रिया में अपनी बराबर की भांगीदारी सुनिश्चित कर सके। ये अनुभव उसमें आत्मविश्वास की वृद्धि करेंगे व परिणामस्वरूप उसमें स्वस्थ स्वप्रत्यक्ष का विकास भी होगा।

इस प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी समावेशित शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराकर दृष्टिवान व दृष्टिहीन की दूरी पाटने की दिशा में कृतसंकल्प है। विश्व भर में समवेशी शिक्षा के लिए प्रयास जारी हैं। आदर्श समाज में सभी की भागीदारी होनी आवश्यक है। विकलांगता के आधार पर विभेद करना मानव अधिकारों का हनन हैं, अतः आवश्यकता है कि विद्यालय की समावेशी शिक्षा के आधार पर समावेशित समाज का निर्माण किया जाए, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने मानव अधिकारों का लाभ उठाकर समाज, देश व विश्व निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।

14.11 विशेष विद्यालय (Special School)

विशेष आवश्यकता वाले कई बच्चे ऐसे होते हैं जिन्हें सामान्य स्कूलों में पढ़ाने से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है। मुख्य धारा के स्कूलों की विशिष्ट कक्षाएँ (Special Class) और अतिरिक्त कक्षाएँ भी उन्हें बहुत लाभ नहीं पहुँचा पाती है। ऐसी स्थिति में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के शिक्षण–अधिगम के लिए उन्हें विशेष विद्यालय (Special School) के अलावा कोई वैकल्पिक शैक्षिक उपाय ही नहीं बचता है। विशेष विद्यालय ऐसे विद्यालय हैं जिनमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं (Special Educational Needs) की पूर्ति करने का समर्थ्य होता है। ये विद्यालय खासतौर पर विकलांग बच्चों के लिए ही बने होते है। इनमें विशेष शिक्षण प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियों के अलावा विकलांग बच्चों के शिक्षण–अधिगम की जरूरतों के अनुरूप शैक्षिक संसाधन भी उपलब्ध होते हैं। ये विद्यालय विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चों को वैयक्तिक शिक्षण (Individualized Education) सुविधा मुहैया कराते है। विकलांग बच्चों की सहायता के लिए चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक (Psychologist) मनोचिकित्सक (Psychiatrist) आदि भी स्कूल (शिकागो) इसके उदाहरण है। भारत में भी इस तरह के सैकड़ों स्कूल है।

विशेष विद्यालय में निम्नलिखित सुविधाओं का होना जरूरी होता है।

1. शारीरिक उपचार कक्ष (Physio-therapy Room)।

2. रोगी सुविधायुक्त व्यायामशाला (Gymnasium) ।

3. रोगी कार्यशाला (Patient Workshop)।

4. बाधारहित माहौल (Barrier-free Environment) उदाहरणार्थ रैम्प, एलिवेटर अथवा अन्य सुविधायुक्त इमारत।

5. विशिष्ट वर्ग कक्ष (Special Class Room)।

6. उपयुक्त फर्निचर एवं शिक्षण– अधिगम सामग्रियां।

7. विश्राम कक्ष (Rest Room)।

8. संवेदी कक्ष (Sensory Room)।

9. आवासीय सुविधा के लिए छात्रावास।

10. विशिष्ट पाठ्चर्या (Special Curriculum) और पाठ्यक्रम (Syllabus)।

11. विशिष्ट शिक्षा में विशेष योग्यताधारी शिक्षक।

12. विकलांग मित्रवत् पुस्तकालय (Disabled-friendly Library)

13. सूचना संप्रेषण तकनीक (Information and Communication Technology) सुविधायुक्त शैक्षिक तकनीकी कक्ष (Educational Technological Room)।

14. खेल एवं मनोरंजन के साधन।

15. तरण–ताल (Swimming Pool)।

वर्तमान समय में विशिष्ट विद्यालय की अवधारणा पुरानी पड़ चुकी है। अब विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए समन्वित अथवा समेकित विद्यालय (Integrated School) और समावेशी विद्यालय (Inclusive School) की वकालत की जा रही है ताकि विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चे मुख्यधारा के स्कूलों में सामान्य वर्ग कक्ष में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षण–अधिगम कर सकें। वैसे भी विशिष्ट विद्यालय में दाखिले के बाद विकलांग बच्चे समाज की मुख्यधारा से कटे रहने के फलस्वरूप उनमें हीन भावना ग्रंथि (Inferiority Complex) का विकास होना

लाजिमी है। लिहाजा अब केन्द्र सरकार ने समावेशी शिक्षण नीति (Inclusive Policy) के तहत समावेशी विद्यालय (Inclusive School) खोलने की सहमति प्रदान कर दी है।

14.12 सारांश

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य समाज के सभी वर्ग के विद्यार्थीओं की कमजोरियों, उसके मजबूत पक्षों एवं उसकी क्षमताओं को एक ही में विकास करना है। यह विस्तृत व्यूह रचना का एक भाग है। पाठ्यक्रम के द्वारा समाज का उत्थान किया जा सकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें किसी भी प्रकार के बालकों को रोका नहीं जाता है।

इस इकाई में विशेष शिक्षा एवं एकीकृत शिक्षा के संप्रत्यय पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विशेष के अंतर्गत बच्चों को सामान्य बच्चों से अलग शिक्षा दी जाती है, इनके विद्यालय पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियॉ अलग–अलग होती है। एकीकृत शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पहले विशेष उपकरणों के माध्यम से आधारभूत प्रशिक्षण एवं शिक्षा प्रदान की जाती है, ताकि अक्षम बालक अपने आपकों सामान्य बालकों के साथ समायोजित कर सकें।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा में मंद बुद्वि बालकों की पहचान एवं शिक्षा, दृष्टिबाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा तथा श्रवणवाधित बालकों की पहचान एवं शिक्षा की चर्चा हुई है।

समावेशी शिक्षा की सफलता के लिए आवश्यक है कि कुछ प्रशासनिक उपाय किए जाए। इसकी सफलता के लिए

1. प्रशासनिक अधिकारियों के लिए परिचयात्मक कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए।
2. दृश्य–श्रव्य सामग्री द्वारा विद्यालय के कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों हेतु संवेदीकरण कार्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए।
3. विकलांग बालकों की खोज के लिए संवेदीकरण शिविर का उपयोग किया जाना चाहिए।
4. संसाधन कक्ष एवं संसाधन सामग्री विद्यालय के लिए उपलब्ध कराना चाहिए।
5. विकलांग बच्चों हेतु आकलन दल का नियोजन एवं
6. विकलांग विद्यार्थियो हेतु सह–अभिभावकों, सहपाठियों एवं नियमित शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

14.13 अभ्यास प्रश्न

1. समावेशी शिक्षा को परिभाषित करें।
2. समावेशी शिक्षा, एकीकृत शिक्षा से किस प्रकार भिन्न है, चर्चा करें।
3. मानसिक मंद बालक की पहचान एवं उनकी शिक्षा की चर्चा करें।
4. समावेशी शिक्षा के प्रमुख प्रशासनिक उपायों पर प्रकाश डालें।
5. समावेशी शिक्षा में माता–पिता, सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका का वर्णन करे।
6. दृष्टि बाधित बालक की पहचान एवं उनकी शिक्षा पर प्रकाश डालें।

14.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1974 में
2. 70 से कम
3. 75 से 50 के बीच

14.15 संदर्भ ग्रंथ

1. Fewell, D. and J. Cone (1983) Identification and Placement of Severely Handicapped Children, In M. Snell (Ed.) systematic Instruction of the Moderately and Severely Handicapped (2nd ed.) Columbas, Ohio : Morill.
2. Individual with Disabilities Education Act (IDEA) (1990) 20 USC, Chapter 3, Washington, D.C.
3. Mangal, S.K. (2011), Educating Exceptional Children : An Introduction ot Special Education, PHI, New Delhi.
4. Sanjeev, Kumar (2008) fof'k"V शिक्षा, जानकी प्रकाशन, पटना।
5. जोसेफ, आर०ए० (2003), पुनर्वास के आयाम, समाकलन पब्लिशर्स, वाराणसी।

इकाई 15– सामुदायिक सहभागिता एवं समुदाय आधारित शिक्षा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 सामुदायिक सहभागिता
15.4 समुदाय आधारित शिक्षा
15.5 सारांश
15.6 अभ्यास प्रश्न
15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.8 संदर्भ ग्रंथ

15.1 प्रस्तावना

जब हम शिक्षा को व्यक्ति विशेष या समुदाय के साथ जोड़ते है तो उसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है और संबंधित व्यक्ति एवं समुदाय अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस इकाई में हम समुदाय एवं शिक्षा के बीच के संबंधो पर चर्चा करेगें और यह जानने की कोशिश करेंगे की कैसे दोनो एक दूसरे से संबंधित है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगें।

1. समुदाय के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. समुदायिक सहभागिता के महत्व को जान सकेगें।
3. समुदाय आधारित शिक्षा संबंधी बातों को जान सकेगें।
4. समुदाय आधारित शिक्षा के महत्व को जान सकेगें।

15.3 सामुदायिक सहभागिता

सामुदायिक सहभागिता से तात्पर्य व्यक्तियों के आपसी सहयोग से संबंधित होता है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इस संसार में अकेले जीवित नहीं रह सकता है। समुदाय के बिना जीवन की कल्पना नही की जा सकती है। समुदाय ही व्यक्ति को जीवन यापन के तरीकों को सिखाता है। समुदाय के द्वारा ही व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर किसी न किसी प्रकार से सहायता की अपेक्षा करता है। इसलिए समुदाय में सहभागिता आवश्यक है। इसी सहभागिता की द्वारा ही बालक को हम जीवन जीने की कला अर्थात दैनिक क्रिया कलाप, उचित व्यवहार एवं शिक्षा प्रदान करते है।

15.3.1 सामुदायिक सहभागिता का महत्व :-

सामुदायिक सहभागिता का आज के वर्तमान समाज में महत्वपूर्ण योगदान है। आज हमारे समाज मे कुछ ऐसे बालक भी है, जिन्हे विशेष आवश्यकता की जरूरत पड़ती है, वे सामान्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण करने में अक्षम होते है, इसलिए उन्हें समुदाय के अन्य लोगो से सहायता की आवश्यकता होती है। अतः सामुदायिक सहभागिता का शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

1- विकलांग व्यक्तियों के जीवन या भविष्य के लिए जैसे स्वास्थ्य रोजगार, शिक्षा, आय तथा जीवन संतुष्टि के लिए सहभागिता की आवश्यकता होती है।

2- सामुदायिक सहभागिता की सहायता से विकलांग व्यक्तियों को लम्बे समय तक सहायता पहुँचाई जा सकती है। जैसे-

- ➢ जन या समुदाय परिवहन के माध्यम से इनके टैक्सी के प्रयोग जो की काफी महँगी परिवहन साधन होती है। उसे कम की जा सकती है।
- ➢ शापिंग केन्द्रों को इस प्रकार से डिजाइन किया जाना चाहिए, जहाँ पर जन परिवहन आसानी से पहुँच सके और विकलांग व्यक्ति भी वहाँ से खरीदारी कर सकें।
- ➢ कम दृष्टि वाले दृष्टिबाधितों को अनुस्थिती ज्ञान एवं चलिष्णुता सेवाओं (Orientation & Mobility) को प्रदान किया जाना चाहिए ताकि इनके साथ होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सके एवं अन्य विकलांगता के खतरों को भी टाला जा सकें।

3– विकलांग व्यक्तिओं को रोजगार संबंधी एवं अन्य माध्यमों मे सहायता करनी चाहिए ताकि ये अपनी सहभागिता विभिन्न प्रकार के कार्यो में सुनिश्चित कर सकें। जिससे ये अपनी आर्थिक स्थिती भी सुदृढ़ कर सकते है।

4– समुदायिक सहभागिता केवल विकलांग व्यक्तियों से ही संबंधित नही होता है, बल्कि यह समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के विकास से संबंधित होता है। जिससे पूरे समुदाय का समावेशी व्यवस्था से विकास हो सकें।

5– यह व्यक्तियों के बीच के संबंधो को नई शिक्षा प्रदान करता है। इससे रूढ़िवादिता अर्थात् पुराने विचारों का नाश होता है। यह व्यक्ति के आर्थिक स्थिती या रोजगार को बढ़ावा देता है।

6– इससे सामाजिक पूंजी की वृद्धि होती है। सामाजिक पूंजी सामाजिक मानक, संबंध तथा विश्वास पर आधारित होता है, जो किसी समुह के अंदन या समुह के बीच में आपसी सहभागिता से सबंधित होते है। यह पूरे समुदाय के लिए लाभदायक होता है, जिससे सहकारी व्यवहारों को बढ़ावा, ज्ञान का विसरण एवं नवाचार के माध्यम से व्यक्तिगत कल्याण में वृद्धि होती है।

सामुदायिक सहभागिता के द्वारा वैसे व्यक्ति जो समाज मे पिछड़े हुए या वंचित है, उनके उत्थान के लिए कार्य करती है। इस कार्य में हर समुदाय के लोग सहभाग करते है एवं अपना समुचित योगदान करते है, जिससे हमारा समाज निरन्तर प्रगती के पथ पर अग्रसर रहता है।

15.4 समुदाय आधारित शिक्षा (Community based Education)

यह एक प्रक्रिया के रूप में क्रमबद्ध क्रिया है जो व्यक्तियों में विद्यमान जितनी भी क्षमता है, जो उसके लिए उपयोगी है, जैसे– शैक्षिक, भौतिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और व्यवसायिक उनको पुनः संग्रहित करना। इस प्रक्रिया में शिक्षा के विभिन्न विधियों और कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है। इसकी एक सामान्य रूपरेखा, बनायी जाती है। जिससे कि व्यक्ति विशेष के कार्यो पर अच्छा प्रभाव पड़े और उन्हें संतुष्टि प्राप्त हो। इस प्रक्रिया में सामान्य व्यक्तियों के साथ–साथ पिछड़े, वंचित एंव विकलांग व्यक्तियों को भी षामिल किया जाता है।

वैसे व्यक्ति जो वंचित वर्ग के पिछड़ा वर्ग तथा विकलांग वर्ग से आते है, इन्हें समुदाय के द्वारा विशेष सेवा प्रदान की जाती है। विशेष सेवाओं को मुख्यतः दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. **योगीकरण के रूप मे :–**

इसके अन्तर्गत बंचित वर्ग, पिछड़ा वर्ग तथा विकलांगो की सहायता करना होता है। इसमें व्यक्ति की उस योग्यता का जो कभी उत्पन्न न हुई हो या कम रह गयी हो का धिक्षण–प्रशिक्षण के द्वारा विकास किया जाता है। यह लम्बी अवधि तक चलने वाली प्रक्रिया होती है। इसमें शिक्षा के साथ–साथ चिकित्सा और प्रशिक्षण को भी शामिल किया जाता है।

2. **पुनर्वास के रूप में:–**

पिछड़े वर्ग, वंचित वर्ग, विकलांगता या अन्य कमजोरियों के कारण जिस व्यक्ति ने कार्यक्षमता खो दी है उसकी सहायता करना। व्यक्ति जो विकलांगता की स्थिती में होता है। उसकी मूलभूत क्षमताओं को उसके ज्ञान, अनुभवों तथा उसकी अभिवृतियों के विकास में सहायता की जाती है। उसके अपने समुदाय में ही वातावरण को बढ़ाकर उसे पुनर्वासित किया जाता है। जिसमें शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

समुदाय आधारित शिक्षा एक विशिष्ट प्रक्रिया मानी जाती है। समुदाय आधारित शिक्षा का मुख्य दृष्टिकोण यह है कि शिक्षण एवं प्रशिक्षण तकनीकी को अधिक से अधिक सरल करना और कौशलों को सरल करना। जिससे ग्रामीण स्तर के वंचित वर्ग, पिछड़े वर्ग एंव विकलांग व्यक्तियों एंव उनके परिवारों की आवश्यकताओं की पूर्ति उनके अनुरूप हो सकें समुदाय आधारित कार्यक्षमता में समुदाय में ही उपलब्ध होने वाले संसाधनों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि प्रशिक्षण व्यवस्था सरल बन सके तथा उस पर कम खर्च भी पड़ें।

15.4.1 समुदाय :–

मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज से अलग रहने में उसका कोई अस्तिस्व ही नहीं है। क्योंकि समाज में सभी सदस्य अपनी योग्यताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति एक दूसरे पर निर्भर होते है। समुदाय शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। Com+Munis जिसका शाब्दिक अर्थ होता है Community इसका हिन्दी रूपान्तरण है Com (कॉम) का अर्थ है एक साथ एवं Munis का अर्थ है सेवा करना। अर्थात् इस प्रकार से Community या समुदाय का तात्पर्य है एक साथ मिलकर सेवा करना। लेकिन एक बड़े समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ रहता और कार्य करना असम्भव होता है इसलिए व्यक्ति एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों से ही सम्बन्ध रख पाता है तथा यही उसका वही समुदाय होता है।

समुदाय की परिभाषा

1. बोगार्डस के अनुसार समुदाय एक सामाजिक समूह है जिसमें कुछ अंशो में हम की भावना निहित होती है। और एक निश्चित विशेष क्षेत्र में रहता है।

2. आगबर्न के अनुसार समुदाय सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण संगठन है।

3. डेविस के अनुसार समुदाय सबसे छोटा समूह है जिसमें सामाजिक जीवन के सभी पक्ष आ सकते है।

4. मैकाइबर के अनुसार जहां कहीं किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य इस प्रकार रहते है कि वे यह विशेष हित नहीं बल्कि सामान्य जीवन की मूल दशाओं में भाग लेते हैं तो हम उस समूह को समुदाय कहते है।

15.4.2 समुदाय के आवश्यक तत्व

समुदाय के कुछ प्रमुख घटक भी होते है जो कि समुदाय के निर्माण मे उसकी आवश्यकता एवं समस्या समाधान में सहायक होते है, जो निम्नलिखित है–

1. **निश्चित भौगोलिक क्षेत्र–** समुदाय का अपना एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र निर्धारित होता है जिसमें हम भी भावना विकसित होती है।

2. **मनुष्यों का समूह–** समुदाय मनुष्यों का समूह है क्योकि बिना समूह का समुदाय की कल्पना नहीं की जा सकती है

3. **सामुदायिक भावना–** समुदाय एक ऐसा स्थानीय क्षेत्र माना जाता है कि जिसमें वहां के लोग एक ही परम्परा एवं भाषा का प्रयोग करते है तथा वे उनकी एक समान भावनाएं होती हैं तथा समस्याओं पर संयुक्त रूप से विचार करते है।

4. **समानताएँ–** इस सन्दर्भ में ग्रीन ने कहा कि समुदाय संकीर्ण भौगोलिक दायरे में रहने वाले लोगो का संग्रह है। जो जीवन के एक सामान्य ढंग को अपनाते हैं।

5. **स्थायित्व–** समुदाय के लोग एक स्थायी स्थान पर रहते हैं। इसलिए इनमें स्थायित्व पाया जाता है।

6. **अनिवार्य सदस्यता–** प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय का अनिवार्य सदस्य होता है क्योंकि इसके दायरे में ही वह अपनी समस्या का समाधान निकालता है।

7. **विशेष नाम–** प्रत्येक समुदाय का अपना एक विशेष नाम होता है। जो वहां के व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व से जोड़ता है।

8. **व्यापक लक्ष्य–** समुदाय की विशेषता यह है कि उसका अपना एक व्यापक लक्ष्य होता है जो वहां की समस्या पर आधारित होता है।

9. **आत्मनिर्भरता–** प्रत्येक समुदाय के सदस्य आत्मनिर्भर होते है। समुदाय की लगभग सभी आवश्यकताएं समुदाय के अन्तर्गत ही पूर्ण की जाती हैं वह वाह्मय दृष्टि से आत्मनिर्भर होते हैं तथा आन्तरिक दृष्टि से एक दूसरे पर निर्भर होते है।

15.4.3 समुदाय में कार्य करने का दृष्टिकोण

समुदाय के साथ कार्य करने का अपना एक निश्चित दृष्टिकोण होता है जो समुदाय को सशक्त बनाने का कार्य करता है।

सुधारात्मक दृष्टिकोण– इस दृष्टि के अन्तर्गत समुदाय के समस्याओं का आकलन करके उसके समाधान की योजना बनायी जाती है। जो निम्न बातों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करती है।

अ. प्रत्यक्ष क्रिया– इस आधार पर कार्य को क्रियान्वित करने हेतु अधिकारियों तथा कानून की सहायता ली जाती है।

ब. प्रचार विधि– इस विधि में समस्या जब जटिल हो जाती है उसका निदान कर पाना कठिन होता है तो ऐसे मे समुदाय मे प्रचार हेतू विज्ञापन, भाषण, गोष्ठी, आलेख, फिल्म आदि का सहारा लिया जाता है।

स. समिति संगठन – इस विधि में समूह का जो प्रतिनिधित्व करता है कार्य योजना में सुधार उत्पन्न करता है और समुदाय के सदस्यों से सहायता लेने में अधिक प्रवीण होता है।

2. योजना आमुखीकरण– जब समस्याओं का अधिक सामना करता पड़ता है तो उसे कम करने के लिए योजना बनाई जाती है जिसमें समस्या के प्रवृति को समझने की कोशिश की जाती है तथा उसका निदान ढूंढा जाता है।

3. **आमुखीकरण प्रक्रिया–** इस प्रक्रिया के द्वारा समुदाय को प्रोत्साहित किया जाता है समस्याओं को पहचानने में और समस्याओं के साथ व समस्याओं के समाधान हेतु किस प्रकार से क्रमबद्ध रूप से कार्य किया जाय जिससे अधिक से अधिक लोग सहयोग कर सकते है।

15.4.4 उपसमुदाय अधारित शिक्षा –

समुदाय आधारित शिक्षा संज्ञानातमक क्षमताओं या अधिगम के सामाजिक एवं सांवेगिक पक्षों से परे होते है। जेम्स कार्नर के अनुसार छात्रों मे सांवेगिक एवं सामाजिक विकास उनके माता–पिता, विद्यालय तथा समाज के आपसी सहयोग से होता है। शैक्षिक विषयों में सफलता अकेले प्राप्त नहीं की जा सकती है बल्कि दो या दो से अधिक के बीच संवाद को बढ़ावा देकर ही विद्यार्थियों में सृजनात्मक क्षमता, व्यक्तिगत क्षमताओं को अंतर वैयक्तिक संबंध तथा अंतरवैयक्तिक विकास के द्वारा सुदृढ किया जाता है। समुदाय

आधारित **शिक्षा छात्रो के क्षमताओं** को पहचानने तथा आस–पास के समुदाय की आवश्यकताओं **को पूर्ति करने** में मदद करता है। इसमें विद्यार्थी मूल्यों को प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होते है। जो स्वतंत्रता के साथ अपनी बातों को अभिव्यक्त कर सकते है, उन्हें बढ़ा सकते है तथा वे अपने समुदाय से बाधित समस्याओं को दूर कर सकते है। अगर समुदाय आधारित शिक्षा के इस मॉडल को लम्बे समय तक प्रयोग में लाया जाता है, तो समुदाय इस प्रक्रिया में शामिल हो जाएगा, उसके बाद एक चक्रीय शैक्षिक का निर्माण हो जाएगा, जो निरन्तर चलती रहेगी।

शिक्षक तथा विद्यार्थी समुदाय आधारित शिक्षा में ईंधन का कार्य करते है, जो इसे लगातार उर्जा प्रदान करते है और चलाते रहते है। माता–पिता, सामुदायिक नेता, प्रशासक, विद्यालय बोर्ड के सदस्य तथा आम नागरिक समुदाय आधारित शिक्षा के विकास, उत्पादन, लागू करने तथा मूल्यांकन के अभिन्न अंग होते है। यह अंतर संबंध मानव समुदाय के निर्माण के आवश्यक है। जिसमें पूर्ण रूप से आस्था एवं विश्वास होना चाहिए। यह विद्यालय एवं समुदाय के बीच परस्पर संबंध स्थापित करता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. सामुदायिक सहभागिता से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

2. समुदाय के दो घटकों के नाम बताइये?

....

....

....

15.5 सारांश

इस इकाई में आपने सामुदायिक सहभागिता एंव समुदाय आधारित शिक्षा के बारे में जाना। सामुदायिक सहभागिता मे समुदाय के सदस्यों की भूमिका प्रमुख होती है। इसमें समुदाय के लोग शामिल होते है और समुदाय में वैसे लोग जिन्हे विशेष आवश्यकता की जरूरत होती है, उसे समुदाय के लोग पूरा करते है। सामुदायिक सहभागिता परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित होता है। जिसमें समाज में वंचित लोग पिछड़े लोग तथा विकालांग व्यक्ति लाभान्वित होते है।

समुदाय आधारित शिक्षा संज्ञानातमक क्षमताओं या अधिगम के सामाजिक एवं सांवेगिक पक्षों से परे होते है। जेम्स कार्नर के अनुसार छात्रों मे सांवेगिक एवं सामाजिक विकास उनके माता–पिता, विद्यालय तथा समाज के आपसी सहयोग से होता है। शैक्षिक विषयों में सफलता अकेले प्राप्त नहीं की जा सकती है बल्कि दो या दो से अधिक के बीच संवाद को बढ़ावा देकर ही विद्यार्थियों में सृजनात्मक क्षमता, व्यक्तिगत क्षमताओं को अंतर वैयक्तिक संबंध तथा अंतरवैयक्तिक विकास के द्वारा सुदृढ किया जाता है। समुदाय आधारित शिक्षा छात्रो के क्षमताओं को पहचानने तथा आस–पास के समुदाय की आवश्यकताओं को पूर्ति करने में मदद करता है। इसमें विद्यार्थी मूल्यों को प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होते है। जो स्वतंत्रता के साथ अपनी बातों को अभिव्यक्त कर सकते है, उन्हें बढ़ा सकते है तथा वे अपने समुदाय से बाधित समस्याओं को दूर कर सकते है। अगर समुदाय आधारित शिक्षा के इस मॉडल को लम्बे समय तक प्रयोग में लाया जाता है, तो समुदाय इस प्रक्रिया में शामिल हो जाएगा, उसके बाद एक चक्रीय शैक्षिक का निर्माण हो जाएगा, जो निरन्तर चलती रहेगी।

15.6 अभ्यास प्रश्न

1. सामुदायिक सहभागिता एवं उसके महत्वों की चर्चा करें।
2. समुदाय को परिभाषित कर उसे उद्देश्यों को लिखें।
3. समुदाय आधारित शिक्षा के महत्वों पर चर्चा कर, उसे नोट करें?

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आपसी सहयोग
2. सामान्यताएं एवं स्थायित्व

15.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. जोसेफ, आर०ए० (2003), पुनर्वास के आयाम, समाकलन पब्लिशर्स, वाराणसी।

2- Gardre, H. (1991), The unschooled mind : How children think and how schools should teach. New York : Harper Collins.

3- Oi Neil, J. (1997). Building Schools as communities : A Conversation with James Comer. Educational Leadership.

4- Apple, M.W. & Beane, J.A. (1998). Democratic Schools. Alexandria, VA : Association for supervision and Curriculum Development.